



INDIAN SOCIETY FOR APPLIED BEHAVIOURAL SCIENCES

मानविय प्रक्रिया की पठन सामग्री

version 1.0

Contents

A00 TOC Hindi	2
A01 Bhumika	3
A1 1.1 What is T group	5
A2 1.3 My experience of a T group	14
A3 2.1 Learning in the Moment	22
A4 2.2 Moving from Assumptions to Hypothesis	34
A5 3.2 T group and change	45
A6 3.3 Salient Behavioral change processes	53
A7 3.5 Change Process through T groups	62
A8 3.6 Human Process Lab and Human Empowerment	66
A9 5.1 Process work way to inclusion	73
B1 2.3 Lakshman Rekha Ethical defences for Professionalism	83
B2 2.6 On being a Facilitator	93
B3 4.1_A model of T-group facilitation competencies	98
B4 4.3 Basic literacy for facilitation Process Observation	107
B5 4.4 Reflective Writing Journals logs	112
B6 4.7 T group facilitator an artist at work	118
B7 5.2 Exploring Marginalization and Exclusion	123
B8 7.2 An existential approach to facilitating T groups	134
C1 Kolb's learning Cycle Hindi	138
C2 Thinking and feeling's role in self growth	141
C3 Johari, communication and Self development	145
C4 Conditions for Lab learning	150
C5 What is Process Sensitivity Hindi	152
C6 Feedback	155

क्रम	लेख	लेखक	लेख का स्रोत	अनुवादक	किस स्तर के लिए उपयुक्त	पेज
S1	भूमिका	राजेश्वरी लक्ष्मनन व तेजिन्दर सिंह भोगल				3
S2	विषय सूचि					2
A1	टी ग्रुप क्या है	तेजिन्दर सिंह भोगल व रमेश गलोहडा	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	5
A2	मेरा टी ग्रुप का अनुभव	शक्ति शरण रॉय	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	14
A3	मौके पर सीखना : अभी और यहां का मूल्य	प्रेरणा राणे व श्रीधर क्षीरसागर	लर्निंग क्रुसेबल	भरत त्रिवेदी	BLHP/ALHP	22
A4	मान्यताओं से परिकल्पना की तरफ बढ़ना	ज़ेब वाटारुओका	लर्निंग क्रुसेबल	भरत त्रिवेदी	BLHP/ALHP	34
A5	टी ग्रुप और बदलाव	शरद साकोलकर	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	45
A6	मुख्य व्यवहार को बदलने की प्रक्रियाएं	प्रदीप	लर्निंग क्रुसेबल	रश्मि सक्सेना	BLHP/ALHP	53
A7	टी ग्रुप द्वारा बदलाव की प्रक्रिया	पॉल सिरामनी	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	62
A8	ह्यूमन प्रोसेस लैब और सामाजिक शशक्तिकरण	जिम्मी दाबी	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	66
A9	प्रक्रियात्मक कार्य द्वारा सामाजिक समावेश	जिम्मी दाबी	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	BLHP/ALHP	73
B1	पेशेवर काम की लक्ष्य रेखा	ललिथा अईयर	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	83
B2	सहजकर्ता बनना	राजन्ना	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	93
B3	टी ग्रुप फैसिलिटेशन सक्षमता का एक मॉडल	उमा जैन व गणेश अनंथरमन	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	98
B4	फैसिलिटेशन की मूलभूत क्षमता : प्रक्रिया का अवलोकन	तेजिन्दर सिंह भोगल व रमेश गलोहडा	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	107
B5	लिखित चिंतन : दैनिकी, लॉग, पुस्तक समीक्षा व संज्ञानात्मक नक्शे	तेजिन्दर सिंह भोगल	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	112
B6	टी ग्रुप सहजकर्ता का काम एक कलाकार का काम	वीना पिंटो	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	118
B7	टी ग्रुप में हाशियाकरण व बहिष्कार की प्रक्रिया : एक खोज	उमा जैन	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	123
B8	टी ग्रुप को फैसिलिटेट करने का अस्तित्ववान तरीका	श्रीनाथ	लर्निंग क्रुसेबल	लोकेश मालती प्रकाश	PDP	134
C1	कॉल्ब का सीख चक्र	तेजिन्दर सिंह भोगल			BLHP/ALHP	138
C2	सोच और भावना की स्वविकास में भूमिका	तेजिन्दर सिंह भोगल			BLHP/ALHP	141
C3	जोहरी, संचार व स्व: विकास	तेजिन्दर सिंह भोगल			BLHP/ALHP	145
C4	मानविय प्रक्रिया प्रयोगशाला में सीखने की शर्तें	तेजिन्दर सिंह भोगल			BLHP/ALHP	150
C5	प्रक्रिया संवेदनशीलता क्या है	तेजिन्दर सिंह भोगल			BLHP/ALHP	152
C6	फीडबैक	शक्ति शरण रॉय			BLHP/ALHP	155

भूमिका

बहुत दिनों से आईसैब में यह चर्चा चल रही थी कि हमारे कार्यक्रम का लाभ हमारे देश के विभिन्न इलाकों में और हर स्तर के लोगों के पास पहुँचना चाहिए। परंतु इस सोच का सही रूप में क्रियान्वयन करने के लिए एक बड़ी बाधा सामने आती थी : हमारा सारा सैद्धांतिक सामग्री अंग्रेजी में ही उपलब्ध थे।

इस दूरी को पूरा करने की हमने कई कोशिशें की। आईसैब के कुछ सदस्यों ने अपना मूल्यावान समय निकालकर कुछ सामग्री का अनुवाद हिन्दी में किया। परंतु यह अनुवाद में दो दिक्कतें रहीं। एक तो अनुवादित सामग्री की मात्रा अपेक्षा से बहुत ही कम रही और दूसरा यह हुआ कि कई बार यह अनुवाद की गुणवत्ता पर भी बहुत से सवाल खड़े हो जाते। ऐसे लगता कि जो लिखा गया है वह हिन्दी पढ़ने वाले के लिए भाषा के हिसाब से उपयुक्त नहीं है।

अंततः इस मुश्किली का हल करने के लिए, गणेश अनंथरमन तत्वाधान, आईसैब बोर्ड ने यह निर्णय लिया कि अनुवाद का काम किसी पेशेवर अनुवादक को देना चाहिए, चाहे क्यों ना कुछ पैसा ही खर्च हो जाए।

इस निर्णय को यर्थाथ में उतारने के लिए जवाबदारी ली आईसैब के दो विभागों के डीनों ने : प्रकाशन की राजेश्वरी लक्ष्मनन एवं सामाजिक विकास के तेजिन्दर सिंह भोगल ने।

जवाबदारी भले दो डीनों ने ली हो, पर इसमें भूमिकाएं कई लोगों ने संभाली। सबसे बड़ी भूमिका रही अनुवादित सामग्री का समीक्षा। समीक्षा का काम बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि आईसैब की सामग्री विशिष्ट भी है और कठिन। अनुवादक को दो प्रकार की समझ चाहिए : कैसे अंग्रेजी में लिखे हुए निबंधों को सहज हिन्दी में लिखा जाए, और दूसरा कि बात की मनोवैज्ञानिक विशिष्टता भी पकड़ में आ जाए। जहाँ अच्छे अनुवादक पहला काम तो कर पाते हैं, दूसरे काम के लिए यह ज़रूरी था कि समीक्षा करने वाला हिन्दी लेखन से भली भांति परिचित हो वह आईसैब का भी सदस्य हो।

यह दोनो गुण कुमुद कालिया इस्सर में उपलब्ध हैं और यह हमारी खुशकिस्मती रही की इस काम के लिए कुमुद अपना बेशकीमती समय दे पाई। कुमुद न केवल निबंधों की समीक्षा करती रहीं, कई बार उन्होंने अनुवादकों और लेखकों का हाथ पकड़ कर यह भी बताया कि अच्छी भाषा का कैसे प्रयोग करना चाहिए।

कुमुद के इलावा कई और लोगों कि भूमिका रही। गौरी निगुडकार ने कुछ देर तक कोशिश की आईसैब के सदस्य ही अनुवाद कर के दें : जिससे कुछ लेख प्राप्त हो पाए। रमेश गलोहडा, प्रेरणा राणे व ललिथा अईय्यर ने उन लेखों की प्राथमिकता दी जिन्हें अनुवाद में लेना चाहिए।

तेजिन्दर भोगल ने एकलव्य संस्था की मदद से कार्यकुशल अनुवादक खोज निकाले। इस काम में अंततः दो पेशेवर अनुवादकों से काम लिया गया : लोकेश माल्ती प्रकाश, जिन्होंने 13 लेखों का अनुवाद किया, और भरत त्रिपाठी ने 2 का किया।

वैसे कुछ अनुवाद करने के लिए आईसैब सदस्यों ने भी हाथ जमाए, जिनमें से कुछ लेखों को हमने प्रकाशन के लिए तैयार माना। जिन लोगों ने इस अनुवाद के कारवाँ में कभी न कभी जुड़ने की कोशिश की उनमें से निम्न के नाम तो हमें याद हैं : रश्मी सक्सेना, मनीशा जयरमन, हरीष रायचंदानी व रेनुका तनेजा। इसके अतिरिक्त अमीत मट्टू ने सब लेखों को वेबसाईट पर अपलोड करने की जवाबदारी ली।

लेखों के बारे में

वेबसाइट पर जो लेख अपलोड हुए हैं वह चार प्रकार के हैं।

पहले प्रकार के वह लेख हैं जो आईसैब की कुछ साल पहले प्रकाशित किताब द लर्निंग क्रुसेबल से लिए गए हैं। यहाँ इस किताब में से 16 लेख लिए गए हैं। इनमें से बहुत सारे लेख तो वह हैं जिन्हें बेसिक लैब और अडवांस लैब में भाग लिए लोग पढ़ सकते हैं पर कुछ जैसे भी हैं जिनका खास फायदा पी डी पी कर रहे लोग ले सकते हैं। यह सभी लेख मौलिक रूप में आईसैब सदस्यों ने अंग्रेजी में ही लिखे हैं।

दूसरे प्रकार के लेख वह हैं जो रीडिंग्स फॉर बी एल एच पी में लिखे हुए निबंधों से अनुवादित हैं।

तीसरे प्रकार के वह लेख हैं जो आईसैब के सदस्यों ने लिखे हैं पर जिन्हें पहले किसी किताबी संकलन में नहीं लिया गया है।

चौथे प्रकार के वह लेख हैं जो अनुवादित नहीं हैं परंतु मौलिक रूप से हिंदी में ही लिखे गए हैं।

आखिरी शब्द

यह संकलन के लेख अलग अलग जटिलता या सरलता के स्तर पर हैं। कुछ इतने सरल हैं कि बेसिक लैब किए लोग उन्हें आसानी से पढ़ कर ग्रहण कर सकते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जिनका लाभ शायद पी डी पी (PDP) कर रहे लोग ही पूर्ण रूप से ले पाएंगे। जो भी हो, सभी लेख सभी से पढ़े जा सकते हैं और इनका लाभ अपने अपने तरीके से लिया जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि हम लेखों को किसी ऐसी लक्षमण रेखा के अंदर नहीं डाल सकते जहाँ औरों का आना वर्जित है। फिर भी सहूलियत के लिए हम लेखों का मूलभूत वर्गीकरण कर सकते हैं जिसमें हम संकेत दे सकते हैं कि फलाना लेख शायद फलाना वर्ग के लिए अधिक उपयुक्त है। यह जानकारी हमने विषय सूचि में ही दी है।

और अंत में दो बातें कहनी ज़रूरी है। एक कि जो यहाँ प्रस्तुत किया है यह सामग्री का अंत नहीं। हमारा मानना है कि बहुत सारे लेखों को अभी भी पाठकों को उपलब्ध करवाना ज़रूरी है और हमारा यह भी मानना है कि हिंदी में अनुवाद और हिंदी में मौलिक लेखन का काम चलता ही रहेगा। और समय समय पर हमारी सूचि भी विकसित होती रहेगी। दूसरी बात यह है कि जैसे आईसैब ने हिन्दी में सामग्री तैयार करने की पहल की है वैसे ही हमारा मानना है कि ऐसी सामग्री अन्य भारतीय भाषाओं में भी तैयार होनी शुरू हो जाएगी और आने वाले सालों में आईसैब की वेबसाइट पर उपलब्ध हो जाएगी।

तेजिन्दर सिंह भोगल
डीन, सामाजिक विकास

राजेश्वरी लक्ष्मनन
डीन, प्रकाशन

1.1

टी-ग्रुप क्या है?

(तेजिंदर सिंह भोगल और रमेश गलोहदा)

टी-ग्रुप के अधिकतर प्रतिभागियों के लिए ये एक जीवंत व गहन अनुभव होता है। एक टी-ग्रुप में 7 से 12 प्रतिभागी एक या दो अनुदेशक (facilitator) के साथ शामिल होते हैं। अनिर्देशित होने के कारण शुरुआत में प्रतिभागी थोड़े चिंतित होते हैं और कभी-कभी तो बिल्कुल चुपचाप ही रहते हैं। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है प्रतिभागी कई प्रकार के अपेक्षित व अनपेक्षित व्यवहार करते हैं। धीरे-धीरे एक रूपरेखा उभरती है: विभिन्न किस्म के व्यवहारों से एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों पर गौर करना और समूह में होने वाले शाब्दिक (verbal) व अशाब्दिक (non-verbal) संवादों का अवलोकन करना। ट्रेनिंग के 5-6 दिनों में प्रतिभागी दूसरों के साथ अपने व्यवहार को, बदलते हुए संबंधों के स्वरूप को और खुद समूह के बदलते स्वरूप को समझना शुरू करते हैं।

इस जीवंत अनुभव के बावजूद भी कई लोग पूछ बैठते हैं, “लेकिन ये टी-ग्रुप असल में है क्या?” इस पेपर में इसी सवाल का जवाब देने की कोशिश की गई है।

टी-ग्रुप की परिभाषा

टी-ग्रुप (जिसे अलग-अलग नामों जैसे कि अधिगम समूह, संवेदना प्रशिक्षण, मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला या व्यक्तिगत विकास लैब के नाम से भी जाना जाता है) की कई परिभाषाएं हैं।

शुरुआत इससे की जा सकती है: “टी (ट्रेनिंग या प्रशिक्षण)-ग्रुप प्रशिक्षण देने का एक तरीका है। बिना किसी पूर्व-निर्धारित कार्यसूची के 10 से 20 लोग एक समूह में खुद-बखुद क्या घटित हो सकता है, कैसी समस्याएं उठती हैं और उनका कैसा समाधान किया जाता है इसकी अनुभूति के लिए इकट्ठे होते हैं। इसमें कोई नेता या अध्यापक नहीं होता बल्कि एक प्रशिक्षक होता है जो समूह के सदस्यों को अपने व्यवहार व उससे उपजी प्रतिक्रिया का अवलोकन करने और जिस तरह की प्रतिक्रिया अपेक्षित है उससे तुलना करने में और इस पूरी प्रक्रिया की अवधारणात्मक समझ विकसित करने में मदद करता है।” (आर. सी. ड्राइ, 1964)

एक अन्य विद्वान इसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं: “शिक्षा की तकनीकी में एक नवाचार” और “एक कमोबेश अनगढ़ सा समूह जिसमें लोग सीखने के लिए भाग लेते हैं। जो बात सीखनी है वो इन व्यक्तियों से अलग या टी-ग्रुप में उनके तात्कालिक अनुभव से परे नहीं होती है। एक उत्पादक व व्यवहार्य समूह और एक लघु समाज बनाने के लिए प्रतिभागी जैसे-जैसे जूझते हैं, और उस समाज में सीखने के लिए लोगों को उत्प्रेरित करने और इसमें लोगों का सहयोग करने के लिए जैसे-जैसे वे काम करते हैं उस पूरी प्रक्रिया में सदस्यों के बीच के क्रिया-

कलाप और समूह में उनका अपना जो आचरण होता है वही असली सीखने की चीज है।” (ब्रैडफोर्ड व अन्य, 1964)

इस पद्धति का प्रयोग करने वाले एक अन्य विद्वान ने टी-ग्रुप को परिभाषित करते हुए कहा है, “कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में सीखने की प्रक्रिया में विषय-वस्तु पर जोर देने वाली परंपरागत विधि की तुलना में टी-ग्रुप सीखने की प्रक्रिया पर ही ध्यान देता है, यानी उन तरीकों पर जिनसे कोई ग्रुप किसी समस्या, विषय, व्यक्ति या किसी दूसरी चीज का हल करता है” (सिन्हा, 1986)। सिन्हा के अनुसार, टी-ग्रुप की कार्य-पद्धति साथ ही साथ “बेहतर एकीकरण और अपने जीवन की सामाजिक परिस्थितियों की बेहतर समझ के लिए व्यक्ति की पुनर्शिक्षा में” और “जिस व्यापक सामाजिक संरचना पर व्यक्ति का जीवन निर्भर करता है उसमें बदलाव लाने में सहयोग देती है”।

टी-ग्रुप के बहुआयामी स्वरूप को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं अगर कुछ लोगों ने इसकी बड़ी मुहावरेदार परिभाषा दी है: टी-ग्रुप “हॉकी का एक लक्ष्यहीन खेल है” (भोगल, 2009)। ये बात खासतौर से टी-ग्रुप लैब के शुरुआती दौर के लिए सही बैठती है जब ग्रुप को अपने एजेंडा का कोई आभास नहीं होता और उसकी अपेक्षा होती है कि उसके अनुदेशक ही कोई एजेंडा बनाएं।

एक दूसरी ऐसी ही मुहावरेदार परिभाषा में कहा गया है कि ये “शेर की मांद जैसा है...जहां शेर अपनी आंखें आधी मूंद कर धोखे भरी झपकी ले रहा है”। यहां प्रतिभागियों को ये लगता है कि अनुदेशक यानी “शेर” जानबूझ कर ग्रुप में जो कुछ हो रहा है उसके प्रति अंजान बन रहे हैं। अनुदेशक का शांत व्यवहार प्रतिभागियों में नई खोजों के लिए ऊर्जा पैदा करने की जगह एक तरह की चिंता पैदा करता है।

टी-ग्रुप की शुरुआत के बारे में चर्चा करते हुए कोल्ब (1984; p.10) कहते हैं – “इस तरह ये पाया गया कि सीखने की प्रक्रिया ऐसे माहौल में सबसे बेहतर होती है जहां तात्कालिक वस्तुनिष्ठ अनुभव और विश्लेषणात्मक तटस्थता के बीच एक तरह का द्विधात्मक तनाव और संघर्ष मौजूद हो। प्रशिक्षुओं के तात्कालिक अनुभवों और स्टाफ़ की अवधारणाओं को एक ऐसे खुले वातावरण में साथ लाकर, जहां अलग-अलग नजरियों से मिलने वाली समझ दूसरे नजरियों को चुनौती भी देती है और उत्प्रेरित भी करती है, सीखने का एक जीवंत और रचनात्मक वातावरण मिला।”

टी-ग्रुप के बुनियादी मूल्य

टी-ग्रुप के संस्थापकों ने किसी टी-ग्रुप के संचालन में तीन मूल्यों को सबसे जरूरी माना है:

क) **वैज्ञानिक सोच** जिसमें तीन तत्व शामिल हैं –

- **सभी तथ्यों को जानने की ज़िम्मेदारी** – केवल लोगों के शब्दों का ही नहीं अपितु उनके क्रिया-कलापों व भावनाओं के प्रदर्शन का भी अवलोकन करना। टी-ग्रुप में प्रतिभागी दोनों ही पहलुओं पर गौर करते हैं और उनपर अपनी टिप्पणी भी करते हैं; मसलन, किसी व्यक्ति के चेहरे से दूसरे के लिए नफरत का भाव झलक रहा हो मगर उसी व्यक्ति के लिए उसने बड़े अदब से कुछ अच्छी बात भी कही हो।
- **आंकड़े इकट्ठे करने और उनके इस्तेमाल का वस्तुनिष्ठ तरीका** – यह समझना कि किस तरह आंकड़ों में विकृतियां आती हैं और इससे बचाव के इंतजाम करना। मेरा अनुभव है कि जब किसी व्यक्ति में दूसरे के प्रति कोई पूर्वाग्रह होता है (चाहे वो किसी भी कारण से हो) तब सौहार्दपूर्ण रवैये को भी कटाक्ष की तरह देखा जाता है। अगर समूह में दूसरे लोगों ने भी ऐसा अनुभव किया हो तो उसे समझने के लिए इस संबंध में उपलब्ध आंकड़ों को समूह के समक्ष रखा जाता है।
- **सच्चाई की खोज के लिए दूसरे के साथ सहयोग करना** – अनुदेशक होने का मतलब ये नहीं होता है कि उस व्यक्ति के पास ग्रुप के सभी आंकड़े और विश्लेषण होंगे। अनुदेशक को दूसरों द्वारा पेश किए गए आंकड़ों पर भी उतना ही ध्यान देना होता है।

ख) लोकतंत्र

इस मूल्य को अक्सर ये कहकर खारिज किया जाता है कि ये अव्यवहारिक है या कि ये संगठन व समुदाय में मौजूद शक्ति-संबंधों की यथास्थिति को खतरे में डालता है। परिणामस्वरूप इस तरह की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित प्रतिभागी ग्रुप को और खुद उन्हें प्रभावित करने वाली निर्णय प्रक्रियाओं में अपनी कोई जिम्मेदार भूमिका नहीं देखते हैं। ग्रुप को क्या करना चाहिए इस बारे में अनुदेशक के निर्णय का इंतजार करने की बजाय मिलजुल कर फैसला लेने के लिए प्रेरित करके अनुदेशक इस मूल्य को बढ़ावा देते हैं।

ग) सहयोगी संबंध की महत्वपूर्ण भूमिका

टी-ग्रुप के संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति एक उत्प्रेरक है मगर इसके प्रति जागरूकता और सहज अभिव्यक्ति की सीमाओं के चलते ये भूमिका प्रभावित होती है। इस प्रकार टी-ग्रुप का एक मकसद है इस क्षमता के प्रति ग्रुप के सभी सदस्यों को जागरूक करना और इसके प्रभावी इस्तेमाल में उन्हें सक्षम बनाना (ब्रैडफोर्ड व अन्य, 1964)। इसका मतलब है एक परिवर्तनकामी उत्प्रेरक की तरह लोगों से इस प्रकार मेलजोल करना कि दूसरे व्यक्तियों और पूरे समूह को मदद मिल सके।

टी-ग्रुप में सीखने के उद्देश्य

टी-ग्रुप के प्रतिभागी सीखने के लिए तीन मुख्य बिंदुओं पर ध्यान देते हैं-

- **अपने बारे में सीखना:** खुद के व्यवहार के विशिष्ट स्वरूप को पहचानना। इसका अर्थ है कि हम क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं और दूसरों पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है इन सबके प्रति जागरूकता।
- **दूसरों के बारे में सीखना:** दूसरे क्या कर रहे हैं और उसका स्वयं पर, ग्रुप के दूसरे सदस्यों पर और समूचे ग्रुप पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसको समझना।
- **समूह के बारे में सीखना:** यह समझना कि समूह सिर्फ अपने व्यक्तिगत सदस्यों का समुच्च नहीं बल्कि उससे ज्यादा कुछ है। हर ग्रुप में एक विशिष्ट माहौल होता है, और साथ ही अपने विकास में वो कुछ खास चुनौतियों का सामना भी करता है। कहीं हिचकिचाहट तो कहीं खुलापन, कहीं जबरदस्त टकराव तो कहीं उल्लास, कहीं शांत तो कहीं अतिशय उत्साह- अलग-अलग समूहों के वातावरण में भारी भिन्नता हो सकती है। हो सकता है ग्रुप के सदस्य गुस्से से भरे हों मगर एक दूसरे पर भरोसा रखते हों; या वो बड़े विनम्र हों मगर उतने ही अविश्वासी। जैसे-जैसे ग्रुप विकसित होता है वो कई चुनौतियों का सामना करता है।

एक शुरुआती चुनौती है किसी निर्देश के अभाव की दशा में काम करना। दूसरी चुनौतियां तब आती हैं जब कोई टकराव होता है और लोग एक-दूसरे की सुनना ही नहीं चाहते। कभी-कभी कुछ ऐसी बातें होती हैं जो लोग ज़ाहिर नहीं करना चाहते (जैसे कि अनुदेशक के प्रति गुस्सा) और इससे ग्रुप में कुछ हो ही नहीं पाता। क्या करना है ये फ़ैसला लेना हमेशा एक चुनौती होती है। एक और चुनौती है कि भरोसा कैसे बनाया जाए; टकरावों का उभरना निश्चित है तो उनसे निपटना भी एक चुनौती उपस्थित करती है; सभी सदस्यों को शामिल करना एक अलग चुनौती है, और ऐसी तमाम दूसरी चुनौतियां। कुल मिला कर किसी ग्रुप को समझने का अर्थ है ग्रुप में होने वाले बदलावों के "क्या?", "क्यों?" और "कैसे?" को समझना, इसे समझना कि वो किन चुनौतियों का सामना करता है और किस तरह उनसे निपटता है।

टी-ग्रुप के गुण

यालोम (1995; 488-89) के अनुसार टी-ग्रुप के ये चार तत्व खासतौर से महत्वपूर्ण हैं-

- **फ़्रीडबैक** – किसी प्रक्रिया के परिणाम या उसके प्रभाव की जानकारी होने के बाद जो समायोजन किया जाता है ये उसकी व्याख्या करता है। यहां असल और अपेक्षित परिणाम के बीच का अंतर एक महत्वपूर्ण तत्व है। फ़्रीडबैक टी-समूहों का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है और ये पाया गया कि "तात्कालिक अवलोकन से उपजा हुआ फ़्रीडबैक ही सबसे प्रभावशाली होता है; जब ये संबंधित घटना के यथासंभव निकट हो और जब फ़्रीडबैक पाने वाला समूह के दूसरे सदस्यों की मदद से इसकी वैधता की जांच कर ले और इसके बोध में आई विकृति को दूर कर ले" (यालोम 1995: 489)।

- **शिथिलीकरण (अनफ़्रीज़िंग)** – कर्ट ल्युविन के अनुसार, शिथिलीकरण किसी व्यक्ति में होने वाले बदलाव के तीन चरणों में से एक है। दूसरे अन्य चरण हैं परिवर्तन और सुदृढीकरण। ये किसी व्यक्ति की पुरानी विचार-पद्धति के विसंपुष्टि की प्रक्रिया (process of disconfirming) को बतलाता है। “बदलाव होने से पहले जरूरी है कि बदलाव की प्रेरणा उपस्थित हो। अपने बारे में और दूसरों से अपने संबंधों के बारे में बनाई गई धारणाओं के परीक्षण में व्यक्ति की मदद की जानी चाहिए” (पूर्व उल्लिखित)। प्रशिक्षक एक ऐसा वातावरण बनाने की कोशिश करते हैं जिसमें मूल्यों और मान्यताओं को चुनौती दी जा सके।
- **प्रतिभागी अवलोकन** – “सदस्यों को समूह में भावनात्मक रूप से जुड़ना होता है और साथ ही अपने आप पर व समूह पर वस्तुनिष्ठ दृष्टि भी रखनी होती है” (पूर्व उल्लिखित)। भावनात्मक अनुभव के साथ-साथ विश्लेषणात्मक तटस्थता बनाए रख पाना आसान नहीं होता है, और संभव है कि कई प्रतिभागी इसका प्रतिरोध करें। लेकिन अगर लोगों को सीखना और विकसित होना है तो ये जरूरी है।
- **ज्ञानात्मक उपादान** – वे मॉडल या आवधारणाएं जिन्हें संक्षिप्त व्याख्यानों, पर्चों या फ़िल्म क्लिपों के जरिए पेश किया जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है “जोहारी विन्डो”।

टी-ग्रुप के तीन अन्य गुण जिनका जिक्र यहां किया जाना चाहिए वे हैं –

- अनिर्धारित रूपरेखा व प्रक्रिया
- तात्कालिक आंकड़ों (इसमें व्यवहार व भावनाएं शामिल हैं) पर ध्यान देना
- समय का स्पष्ट निर्धारण लेकिन भूमिकाओं का अनिश्चित होना।

यहां चार टिप्पणियां जोड़ी जानी चाहिए,

- भावनाओं व मनोभावों पर फ़ोकस टी-ग्रुप की खासियत है क्योंकि अन्य प्रशिक्षण पद्धतियों में भावनाओं को दरकिनार कर दिया जाता है।
- कार्यक्रम की रूपरेखा के अस्पष्ट होने के बावजूद, प्रशिक्षक के दिमाग में इसका एक ढीला-ढाला खाका मौजूद होता ही है। चूंकि ये खाका एक प्रक्रिया के रूप में होता है इसलिए प्रशिक्षक को मोटे तौर पर समूह और इसके प्रतिभागियों के विकास और बदलाव को समझने में सहायक होता है।
- टी-ग्रुप का केंद्रबिंदु प्रतिभागियों को ये सीखाने में मदद करने का होता है कि समूह – और उसमें शामिल व्यक्ति – किस तरह विकसित होते हैं और बदलते हैं। हालांकि ये पद्धति तभी प्रभावशाली होती है जब टी-ग्रुप सीखने के लिए जरूरी इन तत्वों को आत्मसात कर उनका प्रयोग कर पाए: प्रतिभागियों द्वारा खुद को खोलना (self-disclosure), फ़ीडबैक लेने और देने में स्पष्टता, आपसी विश्वास, खुलापन, प्रयोगधर्मिता और नई परिपाटियों का अभ्यास।

- अनुदेशक की भूमिका न तो निर्देश देने की होती है और न ही नेतृत्व करने की और वो समूह के एक सदस्य व अनुदेशक के बीच अपनी भूमिका को अदल-बदल सकता/सकती है।

टी-ग्रुप द्वारा इस्तेमाल व अवलोकन की जाने वाली प्रक्रियाएं

टी-ग्रुप का उपयोग विभिन्न किस्म की अंतःवैयक्तिक (intra-personal), अंतर्वैयक्तिक (interpersonal), समूह के स्तर की और सामाजिक प्रक्रियाओं पर ध्यान देने के लिए किया जा सकता है।

ज्यादा महत्वपूर्ण अंतःवैयक्तिक प्रक्रियाओं में से एक हैं मनोवैज्ञानिक प्रतिरक्षा प्रणालियां जिन्हें “पीड़ादायी व असहनीय विचारों या प्रभावों से बचने के लिए” अहं (ईगो) के संघर्ष के रूप में परिभाषित किया गया है (अन्ना फ्रायड, 1936)। इनमें से कई पीड़ादायी विचार हमारे बारे में दूसरे लोगों के वे दृष्टिकोण हैं जो उन विचारों से मेल नहीं खाते जो हम अपने बारे में रखते हैं और संभव है कि ये दृष्टिकोण हम दूसरों के बारे में रखते हों।

अंतर्वैयक्तिक प्रक्रियाओं में जोड़े बनाना, सांठ-गांठ, आकर्षण, नापसंदगी और टकराव शामिल हैं। जब समूह में कोई दो लोग एक-दूसरे का सहयोग व समर्थन करते हैं तो जोड़े बनते हैं; ये एक तरह से दो लोगों के बीच हुआ अलिखित करार है। सांठ-गांठ में दो लोग अंजाने में किसी तीसरे के खिलाफ एकजुट हो जाते हैं।

समूह के स्तर पर कई तरह की प्रक्रियाएं घटती हैं जैसे कि निर्णय लेना और मानकीकरण (norming)। निर्णय लेने की प्रक्रिया कई प्रकार से होती है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति दूसरे की तरफ देखकर सवाल करता है, “क्या हम लोग अपना परिचय दें?” और दूसरा व्यक्ति इससे सहमत हो जाता है। वैसे तो ये फैसला इन दो सदस्यों ने ही लिया है मगर संभव है कि ये समझा जाए कि ये समूह का निर्णय है और इन दो लोगों ने सिर्फ उस पर पर अमल किया है। किसी दूसरी स्थिति में समूह का कोई सदस्य अपने आप अपना परिचय देना शुरू कर देता है और बाकी सदस्य चुपचाप ऐसा करते जाते हैं। ये एकतरफा निर्णय का मामला बन जाता है। कभी-कभार ऐसा भी होता है जब समूह का हर सदस्य अपना मत रख पाता है, और एक लंबी प्रक्रिया के बाद ही निर्णय तक पहुंचा जाता है। ये सर्व-सम्मति की निर्णय-प्रक्रिया है।

मानकीकरण वो प्रक्रिया है जिससे समूह में मानदंड विकसित होते हैं या बदले जाते हैं। संभव है कि एक मानदंड ये बन जाए कि सभी खुल कर अपनी बातें साझा करेंगे या जब तक सभी मौजूद न हों कोई चर्चा शुरू नहीं की जाएगी। मानदंडों को बनाने की प्रक्रिया निर्णय लेने की वो प्रक्रिया है जिससे ये तय किया जाता है कि ग्रुप के सदस्यों को किस तरह का आचरण करना चाहिए।

कुछ अन्य प्रक्रियाओं जैसे कि नेतृत्व या नियंत्रण के लिए संघर्ष, समावेशन और लगाव किसी समूह के जीवनकाल में घटित होने वाले तीन चरण या प्रक्रियाएं माना गया है।

सामाजिक प्रक्रियाएं वे हैं जो व्यापक समाज का भी हिस्सा हैं। टी-ग्रुप में जो प्रक्रियाएं उभरती हैं उनमें जाति, वर्ग, लिंग, उम्र या दूसरे तरह के बहिष्करण या समावेशन शामिल हैं। कभी-कभी किसी प्रतिभागी के योगदान को उसकी भाषा या वेशभूषा के कारण महत्व नहीं मिलता। ये वर्ग के आधार पर बहिष्करण की प्रक्रिया है। ये भी संभव है कि किसी कम गंभीर बात को महत्व मिल जाए। ये समूह में समावेशन की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हो सकता है चाहे इसके लिए सचेत प्रयास न किए जाएं। इस तरह से किसी व्यक्ति को समूह की स्वीकृति मिल जाती है।

यहां ये ध्यान दिया जाना चाहिए कि टी-ग्रुप इन प्रक्रियाओं को खुद नहीं शुरू करता है हालांकि ये संभव है इनमें से कुछ रोजमर्रा के जीवन की बजाय टी-ग्रुप में ज्यादा घटित हों। इस प्रकार ऊपर उल्लिखित सभी प्रक्रियाएं रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाली प्रक्रियाओं की तरह ही हैं। लेकिन इन प्रक्रियाओं को देख पाने की व्यक्ति की क्षमता टी-ग्रुप में निश्चित रूप से बढ़ जाती है (और वो रोजमर्रा के जीवन में भी इन प्रक्रियाओं पर ध्यान देने लगता है!)।

लेकिन रोजमर्रा के जीवन में और लैब में घटित होने वाली प्रक्रियाओं में एक अंतर है; लैब में इन प्रक्रियाओं को चिन्हित कर उन्हें एक विशिष्ट नाम दिया जाता है जबकि आम जीवन में ऐसा नहीं होता है। अगर कोई व्यक्ति अपने विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होता है तो संभव है कि ग्रुप में 'आकर्षण' की प्रक्रिया को चिन्हित किया जाएगा। अगर नेतृत्व के लिए किन्हीं दो लोगों में होड़ चल रही है तो इसे भी ग्रुप में चिन्हित किया जाएगा। किसी प्रक्रिया को चिन्हित करने के पीछे ये उम्मीद होती है कि इससे व्यक्ति इन प्रक्रियाओं की सर्वभौमिकता को समझेगा और फिर 'सच' को छिपाने का प्रयास नहीं करेगा। किसी प्रक्रिया को नाम देने का एक शैक्षणिक महत्व होता है। नाम दे देने से व्यक्ति को ग्रुप के संदर्भ में उसके साथ क्या घटित हो रहा है और ग्रुप में क्या हो रहा है ये समझने में सहायता मिलती है।

टी-ग्रुप में प्रशिक्षक की भूमिका

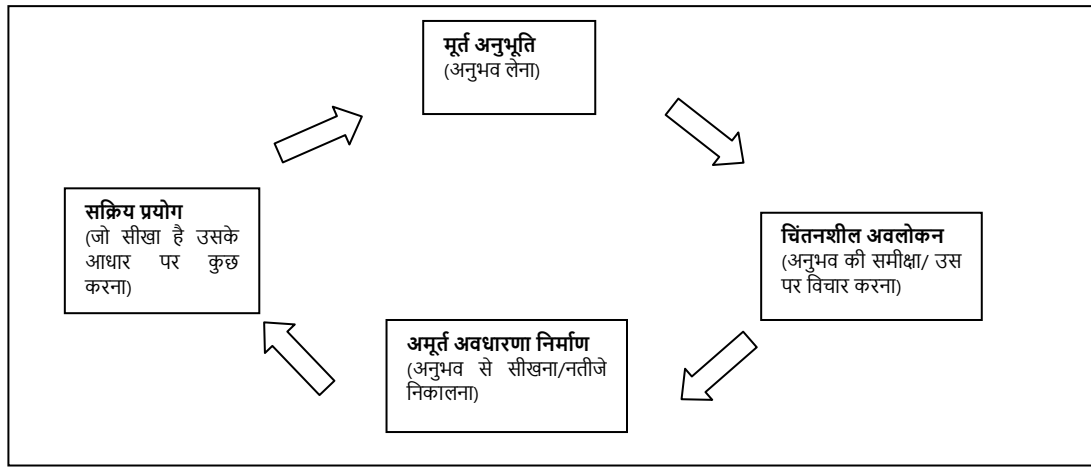
प्रशिक्षक की भूमिका को समझने का एक तरीका ये हो सकता है कि हम ये समझें की उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।

क्या नहीं करना चाहिए में प्रशिक्षक के लिए सबसे जरूरी है कि वह प्रतिभागियों द्वारा सामान्य विषयों पर शुरू की गई चर्चाओं में हिस्सा न ले। उसके दायित्वों में शामिल हैं: अपनी राय जाहिर करना, सामना करना (आंकड़ों में किसी विसंगति या किसी कथन के साथ शरीर के हावभाव के अंतर को उभारना), विश्लेषण करना या सुझाव देना, व्यवहार को दिशा देना (मसलन, किसी भाव का इजहार करते हुए कुछ कहना), और समय व स्पेस की सीमाओं का पालन करना। अनुदेशक का रुख गैर-निर्देशात्मक होता है, वो ये ध्यान रखता है कि सदस्य अन्वेषण और खोज करें और वो बराबरी का नजरिया रखता है।

टी-ग्रुप और अधिगम चक्र

कोल्ब का अधिगम चक्र (कोल्ब, 1984) एक सतत प्रक्रिया है जिसमें चार विशिष्ट चरण हैं-

- मूर्त अनुभूति (Concrete Experiencing)
- चिंतनशील अवलोकन (Reflective Observation)
- अमूर्त अवधारणा निर्माण (Abstract Conceptualisation) और विचारों को समझने के लिए अवधारणाओं का उपयोग
- अवधारणा निर्माण से उपजी परख के आधार पर प्रयोग (Experimentation)



चित्र 1.1.1 कोल्ब का अधिगम चक्र

इन चार बिन्दुओं में से पहले तीन एक के बाद एक उपस्थित होते हैं-

- **मूर्त अनुभूति व चिंतनशील अवलोकन**: लैब में प्रतिभागियों के आपसी क्रियाकलापों से लगातार नए अनुभव उत्पन्न होते हैं। हर आपसी व्यवहार से संबंधित व्यक्ति को कुछ मूर्त अनुभूति होती है – एक ऐसा भाव या विचार जिसे पहचाना जा सकता है।
इस चक्र की शुरुआत **अनुभव** से होती है: उदाहरण के लिए, लैब की शुरुआत में भ्रम का माहौल और एक तरह की चुप्पी होती है क्योंकि अनुदेशक कुछ भी समझाते नहीं हैं। ग्रुप इस परेशानी पर **विचार** कर सकता है और इसका **अवलोकन** कर सकता है कि वे कितने परेशान थे, या कितनी दफ़े वे अनुदेशक की तरफ नजर डालते थे। प्रतिभागी चिंतित इसलिए थे क्योंकि वे एक अन्जान जगह पर थे। संभव है कि वे अनुदेशक से भयभीत हों और उसपर क्रोधित भी हों (यहां “शेर की मांद” वाली परिभाषा को याद किया जा सकता है)।
- **अमूर्त अवधारणा निर्माण**: इस बिन्दु पर अनुदेशक प्रतिभागियों को ये समझाने में मदद कर सकता है कि उनकी चिंता और क्रोध का कारण स्पष्ट है। वे चिंतित और क्रोधित इसलिए थे क्योंकि अनुदेशक की चुप्पी सीखने के उस परंपरागत अनुभव से अलग थी जहां प्रशिक्षक से ये अपेक्षा

होती है कि वह कार्यक्रम की रूपरेखा व लक्ष्यों के विषय में बताएगा व स्पष्ट निर्देश देगा। प्रतिभागियों में चिन्ता इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि उन्हें मालूम ही नहीं था कि करना क्या है; और क्रोध इसलिए कि उनकी अपेक्षाएं पूरी नहीं हुई थी। ये स्पष्टीकरण इस चक्र का तीसरा चरण है: अवधारणा निर्माण का अर्थ ये नहीं है कि सारी अवधारणाएं अनुदेशक ही बनाएं, इसमें प्रतिभागियों को भी शामिल होना होता है।

- **सक्रिय प्रयोग:** जैसे ही प्रतिभागियों में अपनी चिन्ता व गुस्से की समझ बन जाती है तब संभव है कि वे फैसला करें कि अनुदेशक द्वारा फैसले की राह देखने से कुछ नहीं होगा बल्कि उन्हें खुद ही फैसला लेना होगा कि क्या करना है। ये **प्रयोग** का चरण है।

अपने चरित्र के अनुरूप टी-ग्रुप विविध किस्म के अनुभव उपस्थित करता है। व्यक्तियों को और पूरे ग्रुप को इन अनुभवों पर चिंतन करने का अवसर मिलता है। इस चिंतन के जरिए कई अवधारणाएं उभरनी शुरू होती हैं जैसे कि ग्रुप में मौजूद लोगों का व्यक्तित्व, विभिन्न व्यक्तियों के बदलते संबंधों का स्वभाव, टकराव और सहयोग के कारण, या मूल्यों, अनुभूतियों व क्रिया में संबंध। इन अवधारणाओं के आधार पर व्यक्ति व समूह प्रयोग करते हैं और इस तरह नए अनुभव बनते हैं। टी-ग्रुप एक ऐसी जगह बन जाती है जहां एक ही समय में अनेक अधिगम चक्र चल रहे होते हैं जिससे व्यक्ति व ग्रुप विविध विषयों के बारे में सीखते हैं।

1.3

टी-ग्रुप में मेरे अनुभव

शक्ति एस. रॉय

“मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं स्वीमिंग पूल के करीब खड़े कुछ लोगों को देख रहा हूँ। कुछ लोग उसमें कूद गए हैं और तैरना सीखने के लिए जूझ रहे हैं। कुछ लोग बाहर रहकर दूसरों को तैरता हुआ देख सीखना चाहते हैं। ये लोग पूल में कूदे हुए लोगों के लिए तालियां भी बजा रहे हैं और कभी-कभार उन्हें बेहतर तैरने की विधि भी सिखा रहे हैं मगर वो खुद अंदर नहीं जा रहे हैं। कुछ और भी हैं जो इन सबसे उदासीन हैं; उन्हें सीखने में दिलचस्पी नहीं है। मैं सोच रहा हूँ कि वे यहां हैं ही क्यों?”

अगर आपने किसी टी-ग्रुप में हिस्सा लिया है तो समझ ही गए होंगे कि यह किसने कहा होगा।

जी हां! ये हमारी पहली लैब के अनुदेशक (facilitator) थे और उसके बाद मैंने जितनी बार लैब में हिस्सा लिया उनमें से अधिकांश में यह सुना। जिन लैब्स में मैंने अनुदेशक की भूमिका निभाई उनमें मैंने भी इसका उपयोग किया।

आखिर ये “कूद जाने” का मामला है क्या?

चलिए, बिल्कुल शुरु से शुरुआत करते हैं।

मेरे एक बॉस ने *इंडियन सोसाइटी फॉर अप्लाईड बिहेवियरल साइंस* (ISABS) की *बेसिक लैब ऑन ह्युमन प्रॉसेसेज़* (BLHP) में भाग लेने के लिए मेरा नाम आगे किया। उनके इस कदम ने मेरे सामने वह खिड़की खोल दी जिसने मेरी ज़िंदगी बदल दी और मैं इसके लिए हमेशा उनका आभारी रहूंगा।

कार्यक्रम-पूर्व तैयारियां

कार्यक्रम के पहले की गई तैयारियां बेहतर ढंग से सीखने में काफी मददगार साबित होती हैं। इसलिए अपना नामांकन (nomination) पत्र पाकर मैंने ये पूछताछ शुरू कर दी कि वहां क्या हो सकता है, और ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाने के लिए तैयारी कैसे करनी चाहिए। लेकिन मुझे बस इतनी जानकारी मिली कि ये अनुभव कुछ अलग होगा, कि वहां कोई कक्षा (classroom) नहीं होगी और हमें फ़र्श पर बैठना होगा इसलिए बेहतर होगा अगर मैं अपने साथ कुर्ता-पायजामा जैसे कुछ अनौपचारिक व आरामदायक कपड़े ले जाऊं।

“वहां बात किस विषय पर होगी?”

“ये बताना मुश्किल है। आप वहां खुद ही अनुभव करेंगे।”

मेरे कुछ सहकर्मी ISABS के मान्यताप्राप्त अनुदेशक हैं। वे तो मेरे सवालियों को और भी टालते थे। उन्होंने बस इतना कहा, “धीरज रखो और देखो। इसके अनुभव से ही आपको इसका ज्ञान मिलेगा। बस अपना दिमाग खुला रखो।”

उस समय मुझे ये सब बड़ा गोपनीय और कुछ-कुछ साजिश जैसा लगा। मुझे नहीं मालूम कि ये जानबूझकर हुआ या लोग बताना भूल गए, मगर किसी ने ये भी नहीं बताया कि वहां टी-ग्रुप होगा। मुझे ये बाद में पता चला। मगर मुझे ये कहना पड़ेगा कि अगर किसी ने मुझे ये बता भी दिया होता तब भी टी-ग्रुप के बारे में मेरे एमबीए की किताब में जो आधा पेज की जानकारी थी उससे ये पता नहीं चलता कि वहां क्या हो सकता है।

आरंभ – उद्घाटन समुदाय

कार्यक्रम की शुरुआत आसपास उछल-कूद करने या कुछ दूसरी हल्की-फुल्की गतिविधियों से हुई जो कुछ लोगों के लिए तो बड़ी मजेदार थी और कुछ दूसरों के लिए जो इस तरह की गतिविधि में पहली बार भाग ले रहे थे मूर्खतापूर्ण। लेकिन ट्रेनिंग की मेरी पृष्ठभूमि से मैं समझ गया कि ये **शिथिलीकरण प्रक्रिया** (unfreezing process) है, यानी ये एक ‘माइक्रो लैब’ थी।

मुझे पता था कि कर्ट ल्यूविन के सिद्धांत के अनुसार अपनी सामान्य जिन्दगी में हम सब एक जमी-जमाई अवस्था में माने जाते हैं। मतलब ये कि हमारे संचित अनुभवों के आधार पर हमारे व्यवहार का एक विशिष्ट स्वरूप बन जाता है। ये विशिष्ट स्वरूप कुछ खास शक्तियों से बनता है जो हमें एक संतुलित अवस्था में रखती है। इनमें एक तरफ परिवर्तन-समर्थक शक्तियां हैं तो दूसरी तरफ परिवर्तन-रोधक शक्तियां। अपनी जिन्दगी में बदलाव लाने के लिए हमें या तो परिवर्तन-समर्थक शक्तियों को बढ़ाकर या फिर परिवर्तन-रोधक शक्तियों को घटाकर इस संतुलन को पलटना होगा जिससे ये विशिष्ट स्वरूप खंडित हो जाए। माइक्रो लैब हमें जमी हुई अवस्था से एक तरह की अस्थिर अवस्था में आने में मदद करती है ताकि हम सीखने के लिए तैयार हो सकें। ये हमें खुद में बदलाव लाने के लिए उत्प्रेरित करती है। शिथिलीकरण के बाद **बदलाव की प्रक्रिया** आती है जिसमें वांछित और पूर्व-निर्धारित हस्तक्षेप बदलाव को प्रेरित करते हैं। कार्यक्रम का अंत **सुदृढ़ीकरण प्रक्रिया** (refreezing process) से होता है जिसमें प्रतिभागियों में हुए अस्थायी परिवर्तन को स्थिर किया जाता है, यानी नए व्यवहार को उनके जीवन का स्थायी गुण बना दिया जाता है।

चार्ट 1.3.1 (chart to be placed here)

छोटे समूहों में काम करना

उसके बाद हमें दस-दस सदस्यों के अलग-अलग समूहों में बांट दिया गया जिन्हें “छोटा ग्रुप” (small group) कहा जाता था। हर ग्रुप को अलग-अलग कमरे दे दिए गए। काम का ज्यादातर समय हम इन्हीं कमरों में गुजारते थे सिवाय कुछेक मौकों के जिनकी चर्चा मैं बाद में करूंगा।

इस छोटे ग्रुप को कोई पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम नहीं दिया गया, न ही कोई निर्देश, न भूमिका वगैरह। ये बड़ा अजीब था और इसीलिए उन सब ट्रेनिंग कार्यक्रमों से अलग भी जिनमें मैंने अब तक भाग लिया था। हमने शुरुआत एक अजीब से सत्राटे में ये सोचते हुए की कि क्या किया जाए। ऐसे दूसरे कार्यक्रमों से अलग हटकर यहां अनुदेशक चुपचाप बैठे हुए थे, वे कुछ भी नहीं कर रहे थे जबकि हम सब उनके निर्देश का इंतजार कर रहे थे। क्या करना है ये स्पष्ट नहीं था इसलिए हममें से कुछ चुप ही रहें। मगर जो थोड़े ज्यादा “साहसी” या “बातूनी” थे उन्होंने थोड़ी देर के इंतजार के बाद अपने काम, जगह, शौक वगैरह के बारे में सामान्य गप-शप करना शुरू कर दिया। वो अजीब सा सत्राटा टूट गया जिससे मुझे थोड़ी राहत हुई। आखिरकार हम “कुछ” कर रहे थे। जैसे ही हमें लगने लगा कि हम ठीक-ठाक जा रहे हैं, वैसे ही अनुदेशक ने दखल किया और पूछा कि क्या ग्रुप इस कार्यक्रम के उद्देश्यों के बारे में अब तक जो सीखा है उस पर विचार करना चाहेगा। हमें पता चल गया कि कुछ भी नहीं सीखा है यानी हम गलत जा रहे थे। एक बार फिर सत्राटा छा गया जिसके बाद कुछ लोगों ने फिर कुछ कोशिश की और फिर अनुदेशक ने वही सवाल दुहराया कि हमने क्या सीखा है।

धीरे-धीरे हमें समझ आया कि अगर हम उस पल क्या घटित हो रहा है उस पर बातचीत करेंगे तो ज्यादा सीख पाएंगे। बातचीत के दौरान शायद किसी पुराने सदस्य के मुंह से मैंने “यहां-और-अभी होना” (here and now) की अवधारणा के विषय में सुना।

खुद को खोलना

ये कहने में आसान था मगर मैंने बड़ी मुश्किल से जाना कि करने में ये बेहद मुश्किल था। बाहरी चीजों जैसे मौसम, क्रिकेट, ऑफिस, देश-दुनिया आदि के बारे में बात करना बहुत सहज था, क्योंकि इनसे किसी से मन-मुटाव होने की आशंका नहीं रहती। मगर जब भी मैं अपनी असल भावनाओं के बारे में बोलना चाहता था, ऐसा लगता था मानो किसी ने मेरे मुंह पर ताला जड़ दिया हो। कुछ भी बोलने से पहले मैं दस बार सोचता था और अंत में कुछ भी नहीं कह पाता था। जब अपने विचारों और भावनाओं को बताने का दबाव दूसरों से पड़ता था तब मैं ऐसी बातें कहता था जो ज्यादातर या तो कुछ अवधारणाएं होती थी या फिर कुछ सामान्यीकरण। इन पर कुछ इस तरह की प्रतिक्रियाएं मिलती थी कि, “आप खुद को छिपा रहे हैं”, या “हम आपको नहीं समझते”, वगैरह।

जोहारी विन्डो

मैंने एक ट्रेनिंग कार्यक्रम में 'जोहारी विन्डो' के बारे में जो सीखा था उसे याद किया। हमारे भीतर कुछ हिस्से हैं जिनके बारे में हम जानते हैं और कुछ ऐसे हिस्से हैं जिनके बारे में हमें नहीं मालूम। इसी तरह, हमारे कुछ हिस्सों के बारे में दूसरों को पता होता है और कुछ के बारे में नहीं (देखें चार्ट 1.3.2)। हम सबसे ज्यादा सक्रिय और निश्चित उन हिस्सों के बारे में होते हैं जिनके बारे में हमें और दूसरों को पता होता है। इन हिस्सों को बड़ा करने का एक तरीका है अपने बारे में अधिक से अधिक जानकारी दूसरों से साझा करना ताकि वे हमें हमारे बारे में कुछ फ़ीडबैक दे सकें और इस तरह वो हिस्सा जिसके बारे में हमें नहीं पता लगातार छोटा होता जाता है। जैसे-जैसे हमें अधिक फ़ीडबैक मिलता है हम खुद को और सक्षम बनाने के लिए अपने में अधिक से अधिक बदलाव ला सकते हैं।

जोहारी विन्डो पर पहले के एक कार्यक्रम में खुद को खोलने और फ़ीडबैक पर ही सारा जोर था। मैंने उस अवधारणा के बारे में सीखा और यहां तक कि दोनों हिस्सों में अपने स्कोर को भी मैं जानता था, पर वो बस इतना ही था। लेकिन ये जगह तो कुछ अलग थी। यहां कठिनाई ये थी कि मुझे इस पर वहीं लैब में ही कार्यवाही करनी थी। घर जा कर ऐसा करूंगा कह कर यहां बचा नहीं जा सकता था। लेकिन ये पता होते हुए भी कि खुद को खोलना मेरे लिए मददगार होगा, मैं ऐसा कर नहीं पा रहा था। सवाल ये था कि मुझे ऐसा करने से क्या रोक रहा था? खुद का अवलोकन करने पर और अनुदेशक की मदद से मैंने ये समझा कि मैं खुद को खोलने में सहज नहीं महसूस कर पा रहा था; मैं अपने ग्रुप के सदस्यों पर इतना भरोसा नहीं कर पा रहा था कि अपने "असली व्यक्तित्व" को उनके सामने रख पाऊं। यही कारण मुझे अपनी एक झूठी छवि, जिसे "दिखावा" या "मुखौटा" कहा जा रहा था, के पीछे छिपने को मजबूर कर रहा था।

सालों से इस दिखावे के पीछे छिपे होने के कारण ये मेरे लिए एक सुविधाजनक शरणस्थली बन गई थी जिससे निकल पाने में मुझे परेशानी हो रही थी। ग्रुप के ज्यादातर सदस्यों के साथ यही हो रहा था। हम अपने बारे में कुछ कामचलाऊ बातें करने और इधर-उधर की गपशप करने के बीच झूलते रहें।

हालांकि सभी ऐसे नहीं थे। कुछ लोगों ने पहलकदमी की, जोखिम उठाया और खुद को समूह के सामने खोला। इससे उन्हें जो सकारात्मक नतीजे मिले मैं उससे तुरंत प्रभावित हुआ। इस पहलकदमी से सिर्फ वही नहीं बल्कि पूरा समूह आगे बढ़ा। सभी के चेहरे पर खुशी साफ झलक रही थी। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि इसके बाद सभी ने उसी तरह अपनी बातें साझा करना शुरू कर दिया। बाकी लोगों के सामने, जिनमें मैं भी शामिल था, कुछ ऐसी बाधाएं थी जिन्हें पार करने में हमें मुश्किल हो रही थी और हम किनारे पर ही बने रहें जबकि दूसरे आगे बढ़ रहे थे। ऐसे ही एक मौके पर अनुदेशक ने स्विमिंग पूल वाली कहानी बताई जिसकी चर्चा शुरू में की गई है। और वो कितना सही था!

अपनी आत्म-छवि का सवाल

ग्रुप में भरोसे का मुद्दा बार-बार उठता रहा। मुझे ये समझ में आया कि यदि मैं खुद पर भरोसा करूँ तभी मैं औरों पर भी भरोसा कर पाऊँगा। मैं इसे आत्म-छवि के सिद्धांत से जोड़ कर देख सकता था। जब हमारी आत्म-छवि मजबूत होती है तब हम दूसरे क्या सोचते हैं इसकी परवाह किए बिना जोखिम ले सकते हैं। जिस व्यक्ति की आत्म-छवि मजबूत होती है वो खुद के फैसलों पर भरोसा करता है, नई चीजों का प्रयोग करने से नहीं हिचकता (प्रयोगशीलता), असफलताओं को सीखने की कड़ी मानता है, और बेहतर कैसे हों इसके लिए जरूरी आलोचना व फीडबैक के लिए अपने भीतर झांकता है, और आशावादी होता है।

सहयोगी कारक – बिना शर्त स्वीकार करना

सदस्यों द्वारा खुद को खोलने से जो सकारात्मक नतीजे निकलें उसने और दूसरों के सहयोगी रुख ने मुझे कुछ करने का साहस दिया। सबसे ज्यादा तो अनुदेशक की पूरी और बिना शर्त स्वीकृति थी जिसने मुझे अपने खोल से बाहर निकलने की हिम्मत दी। मुझे यहां ये स्वीकार करना चाहिए कि मैं अनुदेशक को एक अधिकारी की तरह देख रहा था और वही करने की कोशिश कर रहा था जो उन्हें स्वीकार हो। लेकिन जितना ज्यादा मैं “सही” होने की कोशिश करता उतना ही मुझे समझ में आता कि ये करने की जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि सही या गलत की परवाह किए बिना सहज रहने की आवश्यकता है। इस पूरी प्रक्रिया में अनुदेशक मेरे प्रति जिस तरह पूर्ण रूप से गैर-आलोचनात्मक बने रहें और मेरी सभी असफलताओं व संघर्षों के बावजूद जिस तरह मुझे अपनाया उसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। बड़ी बारीकी से किसी तरह भी आदेशात्मक या निर्देशात्मक बने बिना अनुदेशक ने हम सभी को गैर-आलोचनात्मक होना और दूसरों को अपनाना सिखाया और सबसे महत्वपूर्ण ये कि हमें खुद को स्वीकार करना सिखाया। जैसे-जैसे हम खुद को और दूसरों को स्वीकार करने लगे वैसे-वैसे हम खुद पर और दूसरों पर भरोसा भी करने लगे। इससे हमें जोखिम उठाने और खुद को ज्यादा खोलने का साहस मिला। लेकिन ये सब अचानक नहीं हुआ बल्कि इसमें समय लगा।

भरोसा बनाकर आगे बढ़ना

शुरु में मैंने कामचलाऊ और तुलनात्मक रूप से कम जोखिम वाले खुलासे किए लेकिन जैसा मुझे डर था न किसी ने उसे अस्वीकार किया न ही मुझसे दूरी बनाई। बल्कि मेरे व्यवहार की सराहना हुई और हमारा जुड़ाव भी गहराया। मुझे ये फीडबैक मिला कि मेरा नया व्यवहार पुरानी बनावटी छवि की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य था। इसने मुझे और भी ज्यादा खुलासे करने का साहस दिया और कदम-दर-कदम भरोसा बढ़ता ही गया। लेकिन लैब में ‘अनुभव-आधारित अधिगम चक्र’ के जरिए ये सीखने में मुझे लगभग तीन दिन लग गए। मैंने पाया कि दूसरे भी खुल रहे हैं जिससे विश्वास और निश्चितता का एक माहौल बन रहा था और हम लोग अब तेजी से आगे बढ़ रहे थे और इसका पूरा आनंद भी उठा रहे थे।

अनुभवों से सीखना

मैंने ये पाया कि अब तक का मेरा ज्यादातर व्यवहार मान्यताओं की एक पूरी शृंखला पर आधारित था कि क्या उचित है और क्या नहीं, दूसरे इसे कैसे देखते हैं, दूसरों की क्या प्रतिक्रिया होगी और अगर प्रतिक्रियाएं मेरी अपेक्षा के अनुरूप नहीं हुईं तो उनका सामना कर पाने की मेरी क्षमता से जुड़ी हुई मान्यताएं। ये सभी मान्यताएं मेरे पुराने संचित अनुभवों, अवलोकनों और जो कुछ मैंने अब तक सीखा था उससे जुड़ी हुई थी। इनमें से कइयों का परीक्षण कभी नहीं हुआ था मगर फिर भी मैं उनसे चिपका हुआ था। ये सब मुझे चीजों को अलग नजरिए से देखने में, अपने अंदर अन्वेषण करने से और जीने के नए तौर-तरीके आजमाने से रोक रहे थे। मैंने व्यवहार बेहतर करने के कई ट्रेनिंग कार्यक्रमों में हिस्सा लिया था और सक्षम व प्रभावी व्यवहार के ढेरों सिद्धांतों और नुस्खों के बारे में सुना था। ये सब मुझे सुनने में बहुत अच्छे लगते थे मगर शायद ही इनमें से किसी को मैंने अपने जीवन में अपनाया था। मेरी धारणाएं मेरे साथ ही रही थीं और वे मुझे अंदर से बदलने से रोकती थीं। लेकिन इस लैब में ये हो रहा था कि मेरे सामने कोरे सिद्धांत की जगह नए अनुभव उभारे जा रहे थे। इनमें से कई अनुभव मेरे पुराने अनुभवों से बिल्कुल अलग थे। इन नए अनुभवों ने मुझे अपनी कुछ मान्यताओं पर विचार करने और उनपर सवाल उठाने के लिए प्रेरित किया। इस तरह मैंने व्यवहार, संवाद, प्रतिक्रिया और जुड़ाव के बारे में नई मान्यताएं बनाईं। इनमें से कई अभी कच्ची थीं, इनका परीक्षण नहीं हुआ था और अप्रमाणित थी और बेशक मैं इन्हें कामचलाऊ ही मान रहा था। लैब ने मुझे एक ऐसी सुरक्षित जगह और सहयोगी वातावरण दिया जहां मैं अपने नए सिद्धांत को आजमा पाया। मुझे ये भरोसा था कि अगर मेरा विचार पूरी तरह गलत या बेहद नुकसानदायक साबित हुआ तो आसमान नहीं टूट पड़ेगा। मैंने प्रयास किए, कुछ सफल हुए और कुछ असफल। चिंतन, अवधारणा निर्माण, प्रयोग और अनुभव का एक नया चक्र शुरू हुआ और मैंने देखा कि मैं धीरे-धीरे अपनी कई मान्यताओं को जिन्हें पहले कभी नहीं आजमाया था जांचने में सक्षम हो रहा था, उनके परिणामों का अवलोकन कर पा रहा था और ये फैसला ले पा रहा था कि उन मान्यताओं को रखना है, बदलना है या पूरी तरह त्याग देना है।

पीड़ा और आनंद

मैंने अनुभव किया कि मेरे मन में कितनी कड़वाहट भरी पड़ी थी और उनसे निपटना बेहद पीड़ादायक था। केवल आंख बंद कर लेने से ये भावनाएं गायब नहीं हो सकती थीं। छोटे-मोटे घाव संक्रमित हो चुके थे और अनेक फोड़ों से बाल्टियों मवाद बह रहा था। इनको बड़े ऑपरेशन की जरूरत थी जिससे मैं डर रहा था। लेकिन ग्रुप ने ये जोखिम उठाने के लिए मेरा साहस बढ़ाया और पूरा सहयोग दिया। मैंने संघर्ष किया, डगमगाया, अटका, गिर पड़ा और यहां तक कि बदलाव की पीड़ा से बचने के लिए पीछे लौटना भी चाहा। लेकिन अपने से ज्यादा अपने ग्रुप के प्रति प्रतिबद्धता के चलते मैं डटा रहा।

एक व्यापक समुदाय

उस 'छोटे ग्रुप के काम' के अलावा ऐसे तीन मौके आए जिनमें सभी प्रतिभागी और अनुदेशक, जिनकी संख्या लगभग 100 रही होगी, एक साथ इकट्ठा हुए। पहला मौका था **उद्घाटन समुदाय** का जिसका जिक्र पहले हो चुका है। तीसरे दिन **मध्य-सप्ताह समुदाय** का आयोजन हुआ।

इसमें हमें अपनी अब तक की यात्रा पर विचार करने को कहा गया जिसमें अस्पष्टता, सीखने, "आउच" और "आहा" के सारे अच्छे और बुरे अनुभव शामिल थे। जब मैंने दूसरों से अपने अनुभव साझा किए तो पाया कि लगभग सभी मेरी ही तरह जूझ रहे हैं। ये जान कर कि मैं इस सफर में अकेला नहीं था मुझे बड़ी राहत मिली। फिर जो गतिविधियां कराई गईं उनसे मुझे अपनी कुंठाओं से उबरने, नया संकल्प बनाने और खुद के लिए नई मंजिलें तय करने में मदद मिली।

कार्यक्रम के अंत में **समापन समुदाय** में एक बार फिर हम सब इकट्ठे हुए। हम सबने जो सीखा था उस पर विचार किया और बाहरी दुनिया में अपने बदले रुख के साथ कैसे आगे बढ़ें इस पर चर्चा की। मेरा अनुमान है कि ये ल्युविन के बदलाव के माडल का सुदृढ़िकरण वाला चरण था जिसकी चर्चा पहले हुई है।

लैब का समापन

जब मैं लैब में आया था, खासकर उस छोटे ग्रुप के पहले हिस्से में जब कुछ भी होता हुआ नहीं जान पड़ता था तब मुझे लगा था कि मैं यहां छः दिन किस तरह रह पाऊंगा। लेकिन अब जब कार्यक्रम के डीन ने "गुडबाय" कहा और ये भी कहा कि हम सब एक दूसरे को 'गुडबाय' करें तो मेरी आवाज भर आई। मैं यहां से जाना नहीं चाहता था। मैं चाहता था कि ये चलता रहे, हमेशा के लिए। ये कितना जबरदस्त अनुभव था और कितना बेशकीमती।

लैब के बाद की जिंदगी

मैंने और मेरे परिवार ने मेरे व्यवहार में महत्वपूर्ण परिवर्तन पाया। इसका असर मेरी पेशेवर जिंदगी में भी दिखा। मुझे पता था कि जो कुछ सीखा था वो अब काम कर रहा था।

मगर लैब में फिर जाने की चाहत कम नहीं हुई और मैं साल-दर-साल वहां जाता रहा। जब भी मैं लैब जाने की इच्छा का जिक्र करता मेरा परिवार मुझे प्रोत्साहित करता।

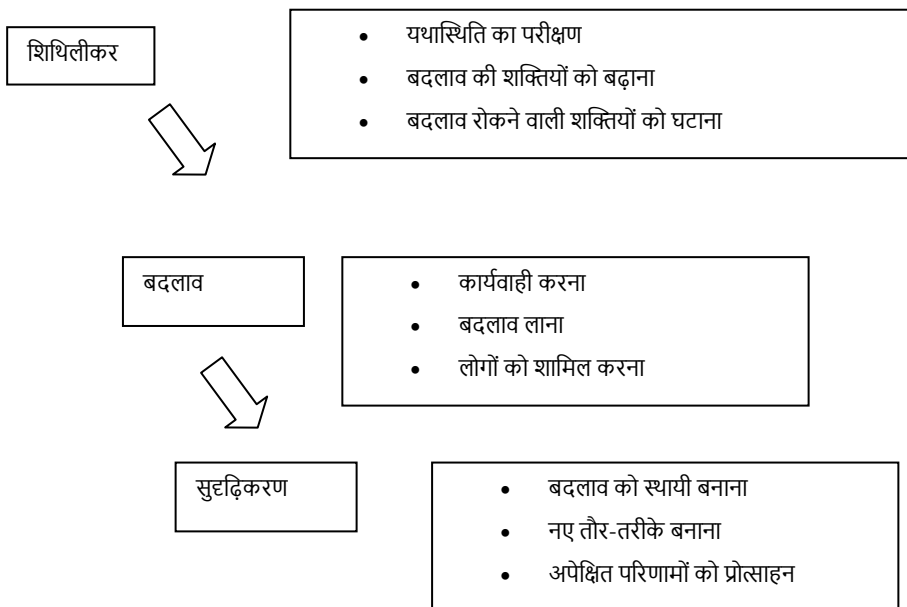
अपनी बात पूरी करने से पहले मैं कहना चाहूंगा कि लैब में पहली बार और उसके बाद अनगिनत बार जाने पर भी जो सीखा उसमें बहुत फर्क नहीं आया। बस जायका बदल जाता है। हर बार लैब में अपने बारे में सीखने के इतने मौके मिलते हैं कि मैंने इसकी चिंता छोड़ दी है कि सीखना कभी खत्म होगा या नहीं। आप शायद पूछें, "मगर क्या किसी अनुदेशक से अपेक्षा नहीं कि जाती कि वो पूरी तरह सुलझा हुआ व्यक्ति हो?" मुझे नहीं

मालूम। मुझे तो ये भी नहीं पता कि कोई कभी पूरी तरह सुलझा हुआ हो सकता है। जहां तक मेरी बात है, मेरा सीखना अब तक जारी है।

^^

चार्ट 1.3.1

कर्ट ल्युविन के बदलाव के माडल का चित्र और फोर्स फ्रील्ड एनालिसिस



वर्तमान दशा	अपेक्षित दशा
बदलाव की ताकतें	रोकने वाली ताकतें
बदलाव की ताकतें 1	रोकने वाली ताकतें 1
बदलाव की ताकतें 2	रोकने वाली ताकतें 2
बदलाव की ताकतें 3	रोकने वाली ताकतें 3

2.1

इस क्षण में सीखना : यहाँ और अभी में होने का मूल्य

प्रेरणा राणे ¹ और श्रीधर क्षीरसागर ²

वह व्यक्ति बाकी सभी मनुष्यों से भाग्यवान है जो हर पल गुजरती जिंदगी के किसी भी क्षण को अतीत की याद करके नहीं खोता - हैनरी डेविड थोरो

मुझे प्रतिभागी के रूप में हुए, टी ग्रुप (T group) के अपने कुछ शुरुआती अनुभव याद आते हैं। मुझे ऐसे अवसर तो ध्यान में नहीं आते जब मैं प्रयोगशाला में अपने अतीत की घटनाओं से जुड़ पाई थी, या कि प्रतिभागी के रूप में किसी भी टी ग्रुप में मैंने अपने अतीत की घटनाओं को सबके सामने व्यक्त किया हो। किसी न किसी प्रकार से, प्रयोगशाला के शुरू होते हुए ही अंतर्वैयक्तिक गतिकी काम करने लगती। मेरे पहले टी ग्रुप में यह तब शुरू हुआ जब समूह के एक सदस्य ने हमें पाखंडी कहा। मैंने उसका विरोध किया और उससे कहा कि वह तथ्यों को सामने रखे। मैं इस बात पर दृढ़ थी कि या तो वह तथ्य सामने रखे या फिर अपनी बात वापस ले। समूह के अधिकांश सदस्यों को यह बात ठीक नहीं लगी। कुछ सदस्यों ने शांतिदूत की भूमिका का निर्वाह करते हुए इस संघर्ष को टालने की कोशिश की। टिप्पणी करने वाले उस सदस्य ने भी प्रयोगशाला से बाहर सुलह करने की कोशिश की लेकिन वह प्रयोगशाला में अपनी कही गई बात को वापस लेने के लिए तैयार नहीं था।¹

पीडीपी की अपनी यात्रा के दौरान, एक अन्य प्रयोगशाला में तो पहले दिन मैं बड़ी देर तक कुछ नहीं बोल पाई थी। मेरे भीतर बहुत घुटन थी। आखिरकार, मैं बोली और मैंने समूह के हर सदस्य के बारे में अपने नजरिये को सबके सामने रखना शुरू किया। मेरे ये नजरिये प्रयोगशाला के दौरान मुझे प्रभावित कर रहे थे, जैसे किसी के प्रति प्रतिस्पर्धात्मक भाव, किसी के सामने अपूर्णता का भाव, या वेशभूषा रूपरंग इत्यादि के कारण किसी की अस्वीकृति। जब मैंने अपनी ये भावनाएं सबसे साझा

¹ इस लेख की पहली लेखिका प्रेरणा राणे के व्यक्तिगत अनुभव

² इस लेख के दूसरे लेखक श्रीधर क्षीरसागर के व्यक्तिगत अनुभव

की, तो अनुदेशिका (Facilitator) ने मुझसे कहा कि मैंने जितनी सहजता व स्वाभाविकता से अपनी भावनाओं को सामने रखा वह उन्हें काफी अच्छा लगा। ये उन दिनों की बात है जब मैं टी ग्रुप पद्धति के बारे में, और 'यहाँ और अभी' होने के महत्व के बारे में नहीं जानती थी।¹

टी ग्रुप पद्धति के प्रशिक्षण की तीन महत्वपूर्ण विशेषताएं होती हैं (ब्लूमबर्ग, गोलेमब्यूस्की, 1973) :

- **सीखने की प्रयोगशाला** : इस प्रशिक्षण में, कार्य 3 स्तरों पर होने वाली मानवीय प्रक्रियाओं पर केन्द्रित होता है : समूह प्रक्रियाएं, अंतर्वैयक्तिक प्रक्रियाएं और आत्म या अंतःवैयक्तिक प्रक्रियाएं। अपने व्यवहार की जाँच-परख करना, पड़ताल करना और उसके साथ प्रयोग करना महत्वपूर्ण होता है। समूह में मनोवैज्ञानिक रूप से 'सुरक्षित' वातावरण के द्वारा सीखने को सुगम बनाया जाता है।
- **सीखने का लक्ष्य "कैसे सीखना?" पर होता है** : टी ग्रुप में सीखना अनुदेशक या प्रशिक्षक जैसे किसी अधिकारी व्यक्ति द्वारा ज्ञान प्रदान करके नहीं होता। यहाँ सीखना एक ऐसे परिवेश में होता है जहाँ प्रत्येक प्रतिभागी को स्वयं ही असली उत्तर खोजना पड़ते हैं। समूह के सदस्य सीखने के लिए स्रोत व्यक्ति बन जाते हैं। प्रत्येक प्रतिभागी की अंतरात्मा का विस्तार होता है : आपको बहुत सारे विकल्प दिखाई देने लगते हैं, आपको अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों में सच्चाई का अनुभव होने लगता है, और आप कौन हैं और आप क्या महसूस करते हैं, इसका बोध बढ़ता जाता है। सीखने का यह तरीका सहयोग-आधारित सत्ता को बढ़ावा देता है।
- **'यहाँ और अभी' में होना** : प्रयोगशाला में सीखना 'यहाँ और अभी' के माध्यम से होता है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें हमारी तात्कालिक भावनाओं, विचारों और प्रतिक्रियाओं पर जोर दिया जाता है। किसी के जीवन में बीते वर्ष क्या हुआ था या फिर इसी समूह में कुछ घण्टों पहले, या कुछ दिन पहले क्या हुआ था, इसे 'वहाँ और तब' कहा जाता है, और टी ग्रुप में सीखने के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। समूह में होने वाली फीडबैक (प्रतिपुष्टि) प्रक्रिया हर प्रतिभागी को दूसरों के साथ

व्यवहार करने के उसके उस चारित्रिक रूप को जानने में मदद करती है जो समूह के सदस्यों को तो स्पष्ट दिखाई देता है लेकिन खुद प्रतिभागी उससे अनभिज्ञ रहता है। यह फीडबैक 'यहाँ और अभी' में देखे गए तथ्यों पर आधारित होता है, और समूह के सदस्यों पर इसका प्रभाव भी 'यहाँ और अभी' में ही पड़ता है।

जब मैंने टी ग्रुप और उसकी बुनियादी बातों को समझना शुरू किया, तो मैंने स्वाभाविक रहने का, सहज रहने का, इस क्षण में अपनी भावनाओं व विचारों के प्रति जागरूक रहने का, और सबसे महत्वपूर्ण बात 'यहाँ और अभी' में होने और काम करने की आंतरिक वास्तविकता को प्रकट करने के लिए जोखिम लेने को तैयार रहने का महत्व जाना। इस आंतरिक वास्तविकता को प्रकट करने में बहुत डर लगता है, खासतौर से जब आपका समूह बड़ी गहन स्थिति में हो। "समूह के सदस्यों का मेरे प्रति क्या रवैया रहेगा?" "क्या समूह के लोग मुझपर टूट पड़ेंगे?" "अभी तक मैंने जो रिश्ते बनाए थे उनका क्या होगा?" "क्या समूह मुझे अलग-थलग कर देगा?" ये सभी और इनसे मिलती-जुलती चिन्ताएं उठने लगती हैं। सदस्य इस बात को प्रकट करने से घबराते हैं कि, समूह में, उस क्षण में, "मैं कौन हूँ?"! टी ग्रुप के शुरूआती चरण में 'यहाँ और अभी' में रहना काफी निराशाजनक और व्यर्थ लगता है।¹

आईएसएबीएस (ISABS) की अपनी यात्रा शुरू करने के बाद से मेरा कुछ ऐसे अनुदेशकों से वास्ता पड़ा है जिन्हें अब मैं विशुद्ध रूप से टी ग्रुप के प्रशिक्षक मानती हूँ, और कुछ अन्य जो मुख्यतः चिकित्सक, ऊर्जा के द्वारा उपचार करने वाले, परामर्शदाता, रूपान्तरण करने वाले जादूगर या इन सबका मिश्रण हैं। और यह सब इस स्पष्ट संज्ञानात्मक बोध के बावजूद कि उपचार करना, व्यक्तिगत परामर्श देना या स्वस्थ बनाना टी ग्रुप के कार्य का हिस्सा नहीं है।

मेरी प्रवृत्ति निर्भरता-विरोधी थी, और कई अवसरों पर मैं अनुदेशकों की योग्यता का आकलन करता। हमारी संस्कृति में, माता-पिता, प्रशिक्षकों या अफसरों जैसे सत्ताधारी व्यक्तियों पर निर्भरता लोगों के व्यक्तित्व पर बहुत गहरा असर डालती है। मैंने इस प्रभाव को अपने टी ग्रुप में भी देख सकता था। कई अनुदेशक प्रतिभागियों की मदद करने, उन्हें रूपान्तरित करने और उनके साथ रहने

की लुभावनी प्रक्रियाओं के शिकार हो गए। इसका नतीजा यह निकला कि समूह के सदस्य अपने घर के संबंधों को सुधारने में लग गए। इस तरह 'यहाँ और अभी' में काम करने का प्राथमिक लक्ष्य खो गया। अनुदेशक के लिए समूह को 'यहाँ और अभी' में लाना, और समूह में किसी व्यक्ति के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्धों पर किए जाने वाले काम को सुगम बनाना मुश्किल हो गया था। मुझे एहसास हुआ कि रोने, विलाप करने, सिसकने, और भाव विरेचन करने का इस परिस्थिति में विशेष अर्थ था। मैंने पाया कि कुछ अनुदेशकों ने इन स्थितियों को अलग ढंग से लिया। वे प्रतिभागियों की भावनात्मक जरूरतों की प्रति संवेदनशील रहते। लेकिन, अगर प्रतिभागी की समस्या 'वहाँ और तब' की होती तो फिर अनुदेशक ऐसी समस्या में नहीं उलझता था या उसकी पड़ताल में नहीं पड़ता था। इससे प्रतिभागी को वापस इस क्षण में, यानी यहाँ और अभी में लौटने में मदद मिलती है।²

'वहाँ और तब' बनाम 'यहाँ और अभी'

प्रशिक्षण का उद्देश्य होता है कि प्रशिक्षु पूर्ण रूप से अधिकृत अनुदेशक के साथ मिलकर काम करते हुए समूह के सदस्यों के कार्यों को सुगम बनाने के कौशलों को विकसित करें। इसका उद्देश्य होता है सहायता करने की विभिन्न शैलियों को अनुभव करना, सदस्यों की समस्याओं को पहचानना सीखना, विभिन्न तरह के हस्तक्षेपों को समझना और उनकी प्रासंगिकता, असर या विफलता को समझना। मेरे प्रशिक्षण के दौरान और उसके बाद भी, मैंने कुछ लोगों को सिर्फ और सिर्फ 'यहाँ और अभी' वाली विधि अपनाते हुए देखा। कुछ अन्य अनुदेशक ऐसे भी थे जो अतीत की घटनाओं की पड़ताल में, और अंतःवैयक्तिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण में भी गए। कुछ प्रयोगशालाओं में समूह का प्रत्येक सदस्य अतीत की कुछ व्यक्तिगत घटनाओं को सब के साथ साझा करता था और सत्र के अंत तक पूरा समूह बहुत भावुक हो जाता था। यह समूह का नियम सा था कि गंभीर कार्य करने का अर्थ था अपने अतीत के किसी गहरे अनुभव को सब के साथ बांटना। मैंने समूह के सदस्यों को अक्सर प्रयोगशाला के बाहर यह कहते सुना है "आज मेरा हो गया!" (जिसका मतलब हुआ कि आज उस सदस्य ने समूह के साथ अपने जीवन की कोई घटना बांटी थी, और उसे बयान करते वक्त वह खूब रोई थी)।¹

मेरे पहले स्वतंत्र सहायता कार्य में, जब समूह ने एक खेल खेलना तय किया तो मैंने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। मेरे लिए, समूह की प्रक्रियाओं के संदर्भ में यहाँ और अभी में बहुत कुछ हो रहा था। निर्भरता-विरोध और विद्रोह के भाव काफी स्पष्ट थे। एक निश्चित अंतराल के बाद इन तथ्यों से उन्हें अवगत कराना समूह के लिए एक प्रभावी हस्तक्षेप बन जाता है। पर कभी-कभी, सीखने के नए तरीके से दिक्कतें आने के कारण, अस्पष्टता की वजह से और एक बंधे-बंधाए ढांचे के न होने के कारण एक लंबा समय बीत जाने के बाद भी समूह विद्रोह करना जारी रख सकता है। कभी-कभी इस प्रक्रिया पर भरोसा करना और धैर्य रखना अनुदेशक को बहुत थका सकता है। लेकिन, मेरा विचार है कि प्रक्रिया पर भरोसा रखना सदस्यों को निर्देश देने से बेहतर है।¹

स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के साथ हुए टी ग्रुप का मेरा जो सबसे हालिया अनुभव था, वहाँ भी समूह आखिरी दिन तक, बीच-बीच में ये खेल खेलता रहा। समूह के चर्चा के विषय घरेलू विषयों से लेकर, फिल्मों, दैनिक धारावाहिकों और डरावनी फिल्मों तक फैले थे, और ये चर्चाएं बहुत लंबे-लंबे समय तक चलती रहीं और 'यहाँ और अभी' के मुद्दों पर असली चर्चाएं बहुत थोड़ी देर के लिए हुईं। इस समूह ने कोई नियम नहीं बनाया था। हालांकि यहाँ बताई गई बातों में बहुत कुछ प्रत्यक्ष रूप से तो 'वहाँ और तब' की लगेंगी, पर ऐसा बहुत कुछ था जो 'यहाँ और अभी' में हो रहा था। विद्यार्थी टी ग्रुप में अपनी मर्जी से नहीं आए थे, यहाँ आना उनके पाठ्यक्रम की अनिवार्यता थी। इसके अलावा, इस प्रशिक्षण के दौरान वे सप्ताह के अंत में अपने परिवार से मिलने भी नहीं जा सकते थे। इस तरह उनके भीतर महाविद्यालय प्रशासन के खिलाफ काफी गुस्सा इकट्ठा था, इसके अलावा प्रशिक्षक/अनुदेशक के खिलाफ भी गुस्सा था जिसने उन्हें 'मार्गदर्शन' देने से मना कर दिया था। प्रशासन का विरोध करने का डर, इस भूमिका में व्यक्तिगत अधिकार न होना और निर्भरता-विरोध की स्थिति में लौट जाना, यह 'यहाँ और अभी' के संदर्भ में समूह की वास्तविकता थी। अनुदेशक के लिए चुनौती

यह थी कि वह ऐसे ढंग से हस्तक्षेप करे कि टी ग्रुप इतना सक्षम हो जाए कि 'यहाँ और अभी' में उनके साथ क्या हो रहा है इसे वे व्यक्त कर सकें और उसपर काम कर सकें¹

मैंने यह भी देखा है कि समूह की 'वहाँ और तब' में जाने की प्रवृत्ति भी होती है। समूह के प्रारंभिक दौर में यह स्थिति लगभग हमेशा ही कोई खेल खेलने और आपस में सामान्य बातें करने से शुरू होती है। समूह के बीच के दौर में, घरेलू संबंधों की बातें करके और उनके व्यक्तिगत घरेलू जीवन की व्यक्तिगत समस्याओं को उजागर करने से यह स्थिति शुरू होती है। ये बातें करते वक्त उनकी आँखों में आँसू भी आ सकते हैं, और नहीं भी। प्रयोगशाला का अंत आते-आते ये बातें इन पहलुओं पर होने लगती हैं कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन में क्या करना चाहेंगे और अपने जीवन में किस तरह 'सौन्दर्य' लाना चाहेंगे²

कुछ विचार

'वहाँ और तब' के बारे में बात करना 'यहाँ और अभी' से बचने का सबसे अच्छा तरीका है। जब कार्य बहुत अहम और जोखिम भरा हो, तो 'वहाँ और तब' व्यक्ति के लिए वह सहारा बन जाता है जो उसे 'यहाँ और अभी' के 'खतरे' में जाने से बचाता है। समूह या उसके कुछ सदस्य 'वहाँ और तब' बनी उनकी मान्यताओं के आधार पर 'यहाँ और अभी' के अनुभवों का सामना करने से बचते हैं। फिर ये मान्यताएं इस क्षण में चीजों को अनुभव करने में समूह के लिए या किसी सदस्य के लिए बाधा बन जाती हैं। क्रोध, दुख, खुशी, लगाव, प्रेम और अन्य मनोभावों को व्यक्त करने की हर व्यक्ति की अलग क्षमता होती है। उदाहरण के लिए, कुछ लोगों के लिए क्रोध की अपेक्षा दुख की अभिव्यक्ति ज्यादा आसान होती है। यदि ऐसे लोग 'यहाँ और अभी' में किसी बात से चिढ़ जाते हैं या उन्हें क्रोध आने लगता है, तो वे इससे बचने के लिए उनके 'वहाँ और तब' के किसी दुखद अनुभव की चर्चा करने लगते हैं और 'यहाँ और अभी' में बनी अपनी नाजुक स्थिति से बच निकलते हैं। समूह या उसके कुछ सदस्य 'यहाँ और अभी' से 'भाग खड़े' होते हैं!

समूह के सदस्य अपने 'वहाँ और तब' के सन्दर्भ में काम करते हैं। उनके भीतर जगने वाले भाव और विचार उम्र, लिंग, वर्ग, जाति, धर्म, नस्ल, रंग या सामाजिक दर्जे के बारे में पहले से बन चुकी उनकी मान्यताओं, रूढ़िवादी धारणाओं, नजरियों और पूर्वाग्रहों से जुड़े रहते हैं। ये सदस्य अपने इन नजरियों के आधार पर कुछ श्रेणियां या वर्गीकरण बना लेते हैं। इस तरह 'यहाँ और अभी' के अनुभव का 'वहाँ और तब' के सन्दर्भ पर गहरा असर पड़ता है। इस समूह में एक आम अनुभव ऐसे सदस्यों का होता है जो स्त्री में माँ को देखते हैं या उससे माँ जैसा होने की अपेक्षा करते हैं, या वे अपनी लिंग-आधारित रूढ़िवादी धारणाओं के आधार पर अनुदेशकों के बीच ही वर्गीकरण बना लेते हैं।

जब सदस्य अपने भीतर की वास्तविकता को परिणाम की चिन्ता किए बिना, सच्चाई से और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करने लगते हैं, तो समूह उनके 'वहाँ और तब' के सन्दर्भ की पड़ताल करने की और उसका सामना करने की, जबरदस्त संभावना बना लेता है, और अपनी धारणाओं में 'नवीनता' लाता है। यह स्वतंत्रता समूह के प्रत्येक सदस्य को वास्तविक 'यहाँ और अभी' में अनुभव करने की संभावना को खोल सकती है।

'यहाँ और अभी' की जटिलता के सन्दर्भ में, यह हमेशा सम्भव है कि अनुदेशकों का कोई हस्तक्षेप समूह को वहाँ और तब में ले जाए। आइए एक उदाहरण देखें: एक महिला प्रतिभागी, एक पुरुष अनुदेशक के साथ अपने अधिकार की समस्या को हल करने के लिए संघर्ष कर रही है। वह उस पुरुष अनुदेशक से भयभीत है, और उसके साथ बातचीत करने में असहज है। प्रयोगशाला के तीसरे दिन, उसने अपने जीवन की एक घटना का जिक्र करती है कि किस तरह बचपन में उसके एक पुरुष शिक्षक ने उसका शारीरिक शोषण किया था। इस घटना को बताते हुए वह फूट-फूटकर रोने लगती है। स्थिति को देखते हुए, एक अनुदेशक यह कहते हुए हस्तक्षेप करता है, "मुझे लगा था कि आपको मुझपर भरोसा था"। इस तरह के हस्तक्षेप समूह के और सदस्यों को भी प्रेरित कर सकते हैं कि वे भी उनकी 'वहाँ और तब' वाली नाजुक घटनाओं को 'यहाँ और अभी' में सबके साथ बाँटें, और ऐसा करके उन्हें अच्छा लग

सकता है, जैसे किसी सदस्य को यह लग सकता है कि आपबीती बताकर, उसने समूह के सदस्यों को एक-दूसरे के करीब लाने में मदद की है। इस प्रकार, यहाँ और अभी में समस्याओं को हल करने के बजाय समूह किसी और चीज पर काम कर सकता है²

मेरी सोच में, ऊपर उल्लिखित स्थिति को एक अलग परिकल्पना के साथ एक अलग नजरिये से भी देखा जा सकता है। यह सम्भव है कि प्रयोगशाला के तीसरे दिन समूह के सदस्य एक दूसरे पर भरोसा करने लगे और उनके बीच एक नाता बनने लगे। बचपन में हुई शारीरिक शोषण की घटनाओं को लड़कियां या लड़के उस उम्र में विरले ही बता पाते हैं। लेकिन ऐसे अनुभव को आप कितना भी भुलाने की कोशिश करें, उसकी कड़वी याद आपको बार-बार सताएगी। सत्ताधारी व्यक्ति (पुरुष शिक्षक) से मिले दुर्व्यवहार के पिछले अनुभव का भी उस घटना को व्यक्त करने से कुछ सम्बन्ध हो सकता है। तो यह भी किया जा सकता है कि सम्बन्धित सदस्य के साथ समानुभूति रखी जाए, और समूह को 'यहाँ और अभी' में उनकी जो भावनाएं हैं उन्हें व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाए, और सदस्यों को इस बात की पड़ताल करने के लिए आमन्त्रित किया जाए 'यहाँ और अभी' में ऐसा क्या था जिसने उस सदस्य को अपने अतीत के अनुभव को सब के साथ बांटने के लिए प्रेरित किया। अनुदेशक की भूमिका में, समूह में क्या हो रहा है इसके बारे में कोई निश्चित राय देने के बजाय, बेहतर होगा कि समूह को अपने भीतर ही पड़ताल करने के लिए प्रेरित किया जाए¹

अनुदेशकों की दुविधाएं

पिछले कुछ सालों में हमारी जो समझ बनी है उसके आधार पर, हमारा यह मानना है कि टी ग्रुप में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे 'वहाँ और तब' कहा जा सके। ऐसी स्थिति में पहुँचने के लिए, यह समझना बहुत जरूरी है कि समूह के सदस्य अपनी रोजमर्रा की जिंदगियों से शारीरिक रूप से दूर हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से, संज्ञानात्मक रूप से, तथा भावनात्मक रूप से यदि समूह के सदस्य अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में वापस जाना चाहें, तो इसका मतलब है कि 'यहाँ और अभी' में उनके साथ ऐसा कुछ हो रहा होगा जिससे उनमें यह चाह उभर

रही है। यह समझना अनुदेशक की सबसे बुनियादी योग्यता है कि 'यहाँ और अभी' में क्या हो रहा है, हालांकि प्रकट रूप से तो समूह 'वहाँ और तब' में है। सतही तौर पर इसे किस तरह देखा जा सकता है कि समूह 'वहाँ और तब' में काम कर रहा है, इसे समझने के लिए आइए हम ऐसी कुछ शास्त्रीय समस्याओं के उदाहरण देखते हैं जिन पर समूह काम करता है।

उदाहरण 1

पृष्ठभूमि: समूह में 11 सदस्य हैं (5 महिलाएं, 6 पुरुष) और 2 अनुदेशक (1 महिला व 1 पुरुष) हैं। दो सदस्य हिन्दी बोलते हैं और ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं। उनके कपड़े भी देहाती ढंग के हैं और बाकी सब लोगों से अलग हैं। हिन्दी बोलने वाले इन दो सदस्यों में से जो महिला सदस्य है वह भिन्न-भिन्न कारणों से समूह का और अलग-अलग सदस्यों का अक्सर विरोध करती है, जबकि जो पुरुष सदस्य है वह बेहद विनम्र है। समूह सोचने के दौर में है, और 'वहाँ और तब' में है। अचानक समूह में हो रही सामान्य चर्चा घर में काम करने वाली बाइयों और उनके अशिष्ट व्यवहार के इर्द-गिर्द घूमने लगती है।

एक संभावना या परिकल्पना यह है कि इस उदाहरण में समूह वर्ग और लिंग वर्गीकरण की समस्या के साथ जूझ रहा है। इस समस्या का 'यहाँ और अभी' में सामना करने के बजाय, समूह इस पर 'वहाँ और तब' में काम करने का सुरक्षित विकल्प चुन लेता है। समूह की चर्चाओं या उसके काम में हस्तक्षेप करने की, तथा समूह का ध्यान सीधे 'यहाँ और अभी' में काम करने पर लगाने की कई संभावनाएं हैं। इनमें से कुछ संभावनाएं इस प्रकार हैं:

हस्तक्षेप 1 : ऐसा प्रतीत होता है कि समूह 'वहाँ और तब' में जाकर 'यहाँ और अभी' में मौजूद समस्याओं पर काम करने में ज्यादा रुचि रखता है। न जाने ऐसा करके यह समूह अपने को किस बात से बचाने की कोशिश कर रहा है।

हस्तक्षेप 2 : ऐसा प्रतीत होता है कि समूह इस मान्यता पर काम कर रहा है कि 'वहाँ और तब' की समस्याओं की चर्चा करने से 'यहाँ और अभी' में मौजूद समस्याएं हल हो जाएंगी।

हस्तक्षेप 3 : जिस काम वाली बाई की इतनी गहराई से चर्चा की जा रही है, न जाने समूह में उसका प्रतिनिधित्व कौन करता है।

हस्तक्षेप 4 : ऐसा प्रतीत होता है कि समूह किसी भय के चलते 'यहाँ और अभी' में लोगों का सामना करने से बच रहा है, और इसलिए 'वहाँ और तब' में जाने के सुरक्षित विकल्प को चुन रहा है।

उदाहरण 2

समूह में 8 पुरुष, 1 महिला, 2 अनुदेशक (1 पुरुष और 1 महिला) हैं।

समूह 'यहाँ और अभी' में सीखने की कोशिश कर रहा है। अचानक से महिला प्रतिभागी अपने घर की कहानी सबको सुनाने लगती है कि दहेज न दे पाने की वजह से किस प्रकार उसके शादी के प्रस्ताव लगातार अस्वीकृत हो रहे थे। वह अपने अकेलेपन और अपने संघर्षों को समूह के सामने रखती है।

एक सम्भावना यह भी है कि अपने समूह की संरचना की वजह से महिला के भीतर अकेलेपन का एक गहरा भाव हो जो उसे 'वहाँ और तब' के अकेलेपन में ले जाता हो। समूह में अकेलेपन की भावना को सबके समक्ष व्यक्त करने के बजाय 'वहाँ और तब' के अकेलेपन को सबके सामने बयां करना उसके लिए आसान है।

एक सम्भावना यह भी है कि उस स्त्री के भीतर कोई अन्तरंग रिश्ता बनाने की तीव्र आकांक्षा हो, और समूह में किसी पुरुष के प्रति उसके मन में आकर्षण या कोमल भावनाएं बन रही हों। यही भावना उसे उसके जीवन की उस वास्तविकता की ओर ले गई जो उसकी शादी में रुकावट डाल रही है।

हमें इन संभावित परिदृश्यों को समूह में शामिल करना जरूरी है ताकि समूह की संरचना के कारण उस महिला को जो संभावित अकेलापन महसूस हो रहा है उसकी पड़ताल की जा सके, और समूह में किसी के प्रति उसकी जो कोमल भावनाएं हैं उनकी भी पड़ताल की जा सके। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो समूह इस मुद्दे से भी भाग खड़ा होगा और दहेज तथा टूटी शादियों के अपने अनुभवों में ही सिमटकर रह जाएगा।

टी-ग्रुप तथा 'यहाँ और अभी'

टी-ग्रुप की पद्धति में विकल्पों को पहचानने और चुनाव करने के तरीके शामिल रहते हैं। अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों में सच्चाई और सत्तात्मक सम्बन्धों की एक सहयोगपूर्ण अवधारणा टी-ग्रुप के सबसे पहले लक्ष्य हैं (ब्लूमबर्ग ए, 1973)। पड़ताल के विषय हैं, अ) "मुझे क्या और क्यों हो रहा है?" ब) "समूह के अन्य सदस्यों को क्या हो रहा होगा और क्यों?" स) "समूह में क्या हो रहा होगा और क्यों?"

समूह अपने हर सदस्य को सीखने का एक स्रोत मानकर सीखता है। इसलिए, इस क्षण स्वयं के साथ, अन्य सदस्यों के साथ, या पूरे समूह के साथ क्या हो रहा है, इससे संवाद स्थापित करना और उसे समूह के सामने सच्चाई व प्रामाणिकता के साथ रखना सीखने की सबसे बुनियादी जरूरत है। यह दोनों स्तरों पर किए जाने की जरूरत है : भावना व अनुभूति के स्तर पर भी तथा विचार के स्तर पर भी।

इसलिए, 'यहाँ और अभी' का तरीका संवेदनशीलता प्रशिक्षण की टी-ग्रुप कार्यविधि में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'यहाँ और अभी' पूरे समूह को उपलब्ध होता है जबकि 'वहाँ और तब' कुछ सदस्यों के व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित रहता है। वह पूरे समूह के लिए वास्तविकता नहीं बन सकता। 'यहाँ और अभी' में उपजे तथ्यों को सीखने के उद्देश्य के लिए बहुत प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है क्योंकि ये तथ्य समूह के लिए अपेक्षाकृत अधिक 'वास्तविक' होते हैं।

टी ग्रुप में ऐसा कुछ भी नहीं होता जिसे 'वहाँ और तब' कहा जाता हो। समूह में जो कुछ भी होता है वह 'यहाँ और अभी' का एक टूटा-फूटा प्रतिबिम्ब होता है। यही अनुदेशक की जिम्मेदारी और चुनौती है कि वह इस तथ्य को समझे और जरूरत के मुताबिक हस्तक्षेप करके समूह को 'यहाँ और अभी' की परिस्थिति में लाए।

2.2

समूहों में, मान्यताओं से हटकर परिकल्पनाओं की ओर बढ़ना जेब ओ वातूरुओचा

आप इसे नियति, संयोग, किस्मत या फिर भाग्य कह सकते हैं मैं इसी तरह टी ग्रुप (T Group) प्रशिक्षण पद्धति और आईएसएबीएस (ISABS) के सम्पर्क में आया था। आईएसएबीएस के दो पेशेवर सदस्यों द्वारा आयोजित (यह बात मुझे बाद में पता चली) कार्यक्रम में भाग लेने के दो हफ्ते बाद उनमें से एक ने मेरा परिचय उस व्यक्ति से कराया जिसने बाद में मुझे बुनियादी प्रयोगशाला में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया।

मानवीय प्रक्रियाओं पर होने वाली बुनियादी प्रयोगशाला (BLHP)

इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में शामिल हुए लोगों में से मैं किसी को नहीं जानता था। पहली सभा के शुरू में जितनी परेशानी और व्याकुलता थी, उसके अंत में यह परेशानी उससे भी ज्यादा बढ़ गई थी। बाद में, मुझे एक छोटे-से समूह के साथ एक कमरे में भेज दिया गया जहाँ हमारे साथ 2 अनुदेशक (Facilitator) भी थे। दोनों अनुदेशक (1 पुरुष, 1 महिला) कमरे के विपरीत छोरों में बैठ गए, और उन्होंने अपनी भाव-मुद्रा ऐसी बनाई जैसे वहाँ सब लोग बस आराम करने, ध्यान लगाने, सोने या सपने देखने के उद्देश्य से एकत्रित हुए थे। मैं बता नहीं सकता कि मुझे उनके रवैये से कितनी चिढ़ हो रही थी! पाँच दिनों में कुछ भी अनोखा नहीं हुआ। मुझे केवल मेरे ऊपर की गई एक नस्लभेदी टिप्पणी की, और एक प्रतिभागी द्वारा पुरुष अनुदेशक का कॉलर पकड़ कर शुल्क वापस माँगने की घटना याद रही।

मानवीय प्रक्रियाओं पर होने वाली उन्नत प्रयोगशाला (ALHP)

मुझे कतई भरोसा नहीं था कि एएलएचपी, बीएलएचपी से कुछ अलग होगी या वहाँ मेरा अनुभव कुछ अलग होगा। एएलएचपी की विवरणिका में बस मुझे एक ही अंतर दिखाई दिया कि एएलएचपी की योग्यता प्राप्त करने के लिए आपको पहले बीएलएचपी में भाग लेना जरूरी था। मुझे बड़ी झुंझलाहट हो रही थी क्योंकि मेरी पत्नी मेरे पीछे पड़ी थी कि मैं एएलएचपी में जाऊँ क्योंकि पहली प्रयोगशाला के बाद से वह मुझसे बात कर पा रही थी। मैं बुनियादी प्रयोगशाला के बाद खुद में आए इन स्पष्ट बदलावों से अवगत नहीं था। मेरा यह मानना था कि दुनिया को देखने का और समझने का मेरा नजरिया ही सही था। फिर भी मुझे मानना

पड़ा कि मेरी पत्नी सही कह रही थी। मैं दूसरों की नहीं सुनता था और दूसरों की भावनाओं को नहीं समझता था। मैं आत्म-केन्द्रित, घमंडी और दंभी था। मुझे अपनी मान्यताओं और दूसरों के मतों पर दोबारा विचार करना पड़ा, प्रमाणों की नए सिरे से पड़ताल करना पड़ी, और इसके लिए मैंने टी ग्रुप पद्धति व प्रक्रिया का सहारा लिया। आज, मैं इस संस्था का एक पेशेवर सदस्य हूँ और जिस प्रक्रिया से मैं चिढ़ता था, आज दूसरों को उसे अपनाने के लिए कहता हूँ। यहाँ मैं उन कुछ महत्वपूर्ण परिस्थितियों की चर्चा करना चाहूँगा जो मेरे साथ बनीं और जिन्होंने मेरे इस रूपान्तरण को सुगम बनाया।

समूहों में मान्यताएं और परिकल्पनाएं

मान्यता का मतलब है कि 'बिना प्रमाण के किसी बात को वास्तविकता मान लेना', जबकि परिकल्पना 'किसी अवलोकन, क्रियाकलाप या वैज्ञानिक समस्या का अस्थायी स्पष्टीकरण होती है जिसकी सत्यता की बाद में और जाँच-पड़ताल की जा सकती है'। 'प्रमाणित होने तक, दोनों ही अनुमान हैं'। पर मान्यता में हमारा ध्यान ऐसे तथ्यों को तलाशने पर रहता है जो उस मान्यता को प्रमाणित कर सकें, और हम जानबूझकर उन तथ्यों को नजरंदाज कर देते हैं जो उस मान्यता को खंडित कर सकते हों। परिकल्पना में हम मान्यताओं को सिद्ध करने वाले और उन्हें खंडित करने वाले, दोनों तरह के तथ्यों की तलाश करते हैं। विल्फ्रेड बायन का कहना था कि समूह, विशिष्ट मानसिक दशाओं - 'बुनियादी-मान्यता मानसिकता' और 'कार्य-समूह मानसिकता' पर आधारित दो बिलकुल विपरीत तरीकों से, एक साथ काम करते हैं। उनका मानना था कि ये मानसिकताएं ही समूह द्वारा उसके उद्देश्यों को हासिल करने की क्षमता को तय करती हैं।

एक समूह, दो मानसिकताएं

टी ग्रुप प्रक्रिया इन दोनों मानसिकताओं पर काम करती है। इस लेख में मैं बुनियादी-मान्यता मानसिकता को मान्यता मानसिकता कहूँगा, और कार्य-समूह मानसिकता को परिकल्पना मानसिकता कहूँगा। मेरा यह तर्क है कि किसी समूह के लिए यह जरूरी है कि कोई भी कार्य पूरा करने के लिए वह बुनियादी-मान्यता मानसिकता से निकलकर परिकल्पना मानसिकता को अपनाए, और यह परिवर्तन तभी सम्भव है जब समूह अपने अस्तित्व से जुड़े यथार्थ के अनुरूप कार्य करता है। दूसरे शब्दों में, 'यहाँ और अभी' में होना हमें वह

उत्तोलक प्रदान करता है जिसके द्वारा हम मान्यता मानसिकता से परिकल्पना मानसिकता में पहुँच सकते हैं। इस लेख में की गई चर्चा को व्यापक रूप से तीन विषयों में बांटा गया है:

समूहों में बुनियादी मान्यताएं

विल्फ्रेड बायन बुनियादी मान्यता (*ba*) शब्द का उपयोग यह दिखाने के लिए करते हैं कि किसी समूह का हिस्सा बनने के लिए बुनियादी रूप से व्यक्ति की मान्यता क्या होती है। जब कार्य समूहों को असहनीय बेचैनी और घबराहट का सामना करना पड़ता है तो वे ऐसी एक या एक से अधिक भावनात्मक दशाओं में घिर जाते हैं, जो किसी बुनियादी मान्यता समूह में पाई जाती हैं। बायन ने तीन अलग-अलग प्रकार की बुनियादी मान्यताएं बताईं: निर्भरता, सामना करना/भाग निकलना और जोड़ी बनाना:

- निर्भरता की बुनियादी मान्यता (*baD*), इस मान्यता का समर्थन करते हुए समूह को एकजुटता प्रदान करती है, कि पोषण, संरक्षण, ज्ञान और जीवन सिर्फ ऐसे नेता की बुद्धिमत्ता से ही मिल सकते हैं जो सर्वशक्तिशाली तथा सर्वज्ञ हो, जैसे कि कोई जादूगर (बायन, 1961)। इस मान्यता में, समूह ऐसे नेता की तलाश करता है जो सर्वशक्तिमान हो, और जो समूह को उसकी व्यग्रता व चिन्ताओं से मुक्त कर देगा। यदि इस करिश्माई नेता का प्रदर्शन ठीक नहीं रहता, तो इस नेता को खरी-खोटी सुनाई जाएगी, और उसकी जगह लेने के लिए किसी और की तलाश की जाएगी। इस तरह, समूह के भीतर नेता की तलाश, आदर्शीकरण, और फिर अवमानना करने का एक चक्र चल पड़ता है।

आईएसएबीएस पद्धति से, तथा बीएलएचपी के मेरे अनुदेशकों से मुझे शुरू में जो नफरत होती थी उसका कारण दरअसल यह मान्यता ही थी। मैं अनुदेशकों पर आश्रित था। समूह ने रक्षात्मक रवैया अपनाया क्योंकि समूह के कार्य करने के इस चरण में सबसे जरूरी लक्ष्य होता है उस एक व्यक्ति - या तो नियुक्त किया गया नेता या फिर कोई और सदस्य जो वह भूमिका निभा रहा हो - से सुरक्षा और संरक्षण प्राप्त करना (बैनेट और हेडन, 1977)। यह मान्यता और भी उलझ गई जब समूह खुद को शिथिलता से निकालने के लिए संघर्ष करने लगा। सदस्यों के खुद का परिचय देने की प्रक्रिया भी तब बाधित हो गई थी जब

अनुदेशक ने ही अपना परिचय देने से मना कर दिया। समूह के सदस्यों ने इस आशा से मूर्खों, अयोग्य व्यक्तियों, और मानसिक रोगियों की तरह व्यवहार किया, कि कोई शक्तिशाली ईश्वर-स्वरूप नेता समूह को उसकी बेबसी और लाचारी से उबार लेगा, और कार्य को पूरा करने की दिशा में उन लोगों को निर्देशित करेगा (बैनेट और हेडन, 1977)। जब मेरी बीएलएचपी का नेता यह भूमिका निभाने में विफल रहा, तो उसके व्यवहार और प्रदर्शन के लिए उसकी खूब खिंचाई की गई।

- सामना करने/पलायन करने की बुनियादी मान्यता (*baF*)। इस मान्यता में समूह यह मानकर चलता है कि उसका बचना दो तरह से सम्भव है, या तो सामना किया जाए (सक्रिय आक्रामकता, बलि का बकरा बनाना, शारीरिक रूप से हमला करना) या कार्य से पलायन किया जाए (प्रयोगशाला से हट जाना, निष्क्रिय रहना, कार्य करने से बचना, सोच-विचार में डूबे रहना)। जो भी व्यक्ति समूह की आक्रामक शक्तियों को एकजुट करने में सफल हो जाता है उसे समूह का नेता बना दिया जाता है। नेतृत्व ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जो कार्य के महत्व को तो कम कर देता है और 'यहाँ और अभी' से समूह को दूर ले जाता है (बैनेट और हेडन, 1977)।

एक प्रतिभागी और मेरे सह-अनुदेशक के बीच बड़ा झगड़ा हो गया। प्रतिभागी ने अपने इशारों से, रुकावटें डालकर और दूसरों के बोलने का विरोध करके समूह के कार्य में विघ्न डाला। अनुदेशक (यानी मुझ) पर अयोग्य होने का ठप्पा लगा दिया गया, और समूह के सदस्य मौन होकर देखते रहे। जितने समय तक हम अनुदेशक चुप रहते, समूह के सदस्य नेता बने इस व्यक्ति की बातें सुनते और वह व्यक्ति खुद के बारे में बताने के अलावा दूसरी तमाम बातें करता। समूह को 'यहाँ और अभी' में लाने के हम अनुदेशकों के प्रयास व्यर्थ गए। प्रक्रिया के दौरान बार-बार 'यहाँ और अभी' में रहने के फायदों का आकलन करने की उनकी दुहाई का भी कोई असर नहीं हुआ। नेता न सिर्फ प्रतिभागियों से उलझता रहा, बल्कि हम अनुदेशकों से भी उलझता रहा क्योंकि हम दोनों समूह को काम करने देने के लिए या तो इस नेता से समूह का बचाव कर रहे थे, या फिर इस नेता पर हमला बोल रहे थे।

- जोड़ी बनाने की बुनियादी मान्यता (*baP*) सदस्यों द्वारा ऐसी किसी अप्रत्यक्ष, रहस्यमयी आशा को एक दूसरे से साझा करने के माध्यम से साथ आने में मदद करती है,

जो इस मान्यता से निकलती है कि कोई दम्पति एक मसीहा, एक नए मार्गदर्शक, नए विचार, नए सिद्धांत या नई विचारधारा को जन्म देंगे (उल्लिखित रचना से)। समूह का रवैया ऐसा रहता है जैसे उन लोगों का बचा रहना इस प्रजनन पर ही निर्भर करता है, यानी, एक करिश्माई ढंग से कोई मसीहा पैदा होगा और वह समूह को बचाएगा और उसके अस्तित्व को बनाए रखने में मदद करेगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समूह दो लोगों को एक जोड़े के रूप में सामने रखता है, इस आशा के साथ के वे इस अजन्मे उद्धारक को पैदा करेंगे (समूह सम्बन्ध शब्दावली 2004)

इस स्थिति को अक्सर टी ग्रुप में भी अनुभव किया जाता है जब कुछ सदस्य खुद को शैक्षणिक, व्यावसायिक, आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि जैसे कारणों की वजह से अपूर्ण पाते हैं। समूह के भीतर कम शिक्षित लोगों का आत्मविश्वास, अपेक्षाकृत ऊंची शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों से कम होता है। गृहणियां, जो व्यक्तिगत चुनौतियों से निपटने के लिए इस कार्यक्रम में शामिल होती हैं, भी यहाँ बहुत मुश्किलों से गुजरती हैं क्योंकि समूह के अधिकांश सदस्य नौकरीपेशा होते हैं। सामाजिक विकास क्षेत्र से आने वाले प्रतिभागी भी, कम से कम प्रयोगशाला के बुनियादी चरण में, कुछ घबराए हुए से लगते हैं। ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों में, वे लोग जो एक दूसरे में एक सी बातें पाते हैं, उनमें आत्मीयता का भाव पैदा हो जाता है और इससे चर्चाओं के लिए कुछ बिन्दु मिल जाते हैं, वे लोग अपने विचारों और अनुभवों को साझा करते हैं, नसीहतें और समाधान बताते हैं। परिणामस्वरूप, समूह के अन्य सदस्य उन्हें सुनते हैं और वे समूह का ध्यान कार्य से हटाकर अपनी ओर कर लेते हैं। अनुदेशक पर गुस्सा निकालना उस स्थिति में कोई अनोखी बात नहीं होती जब वह समूह का ध्यान वहाँ अनजाने में बन रही एक प्रकार की साँठ-गाँठ की तरफ इशारा करने की कोशिश करो। अनुदेशकों से, जो हो रहा होता है, उसके विकल्प देने को कहा जाता है, और कई अवसर ऐसे हुए हैं जब अनुदेशक मौन हो गए, या एक या दो सत्रों के लिए प्रयोगशाला से बाहर चले गए ताकि समूह अपने नए मसीहा को सुनने की अपनी इच्छा को पूरा कर सके।

इन बीए समूहों में बायन, टर्के ने (1974) एक चौथा समूह जोड़ दिया जो था अभिन्नता की बुनियादी मान्यता (baO) - एक ऐसी मानसिक गतिविधि जिसमें 'समूह के सदस्य किसी न प्राप्त हो

सकने वाली, अगम्य ऊँचाई वाली सर्वशक्तिमान सत्ता के साथ सशक्त रूप से एकाकार होने का प्रयास करते हैं, ताकि वे निष्क्रिय प्रतिभागी होने के लिए खुद का समर्पण कर सकें, और इस तरह अस्तित्व को, सभी प्राणियों के कल्याण को, और सृष्टि की अखण्डता को अनुभव कर सकें।'

इन मान्यताओं से मिलती जुलती मान्यताएं समूह में तब देखने को मिलती हैं जब उसके सदस्यों का एक दूसरे के साथ इतना आत्मीय नाता बन जाता है कि वे समूह के साथ पूरी तरह से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, और समूह के साथ उनका यही तादात्म्य उन्हें प्रत्यक्ष के आगे और गहराई में जाने से रोकता है। इसके बाद की भी मान्यताएं हैं लेकिन इस लेख में उनकी पड़ताल नहीं की गई है।

• समूहों में परिकल्पनाओं की पड़ताल

परिकल्पनाओं की मानसिकता (बायन ने मूलतः 'मानसिकता' शब्द का ही उपयोग किया था) वाला समूह तब उभरता है जब समूह यह एहसास करता है कि बुनियादी मान्यताएं उन्हें आगे नहीं बढ़ने दे रही और समूह का कार्य नहीं करने दे रही। यह तब होता है जब समूह के सदस्य एक दूसरे पर भरोसा करने लगते हैं, और अनुदेशक, सदस्यों का ध्यान फिर से समूह में उपस्थित जीवन्त मुद्दों की ओर आकर्षित करने के लिए सहज रूप से हस्तक्षेप करता है। इस समय, समूह के सदस्य खुद से अलग होकर, कार्य पर, समय पर और उस स्थान पर ध्यान लगाते हैं (कार्य समूह मानसिकता)। समूह वैयक्तिक/सामूहिक समस्याओं को उठाता है, उन पर काम करता है और उनका समाधान करता है। इसी को टकमैन ने समूह के जीवन का 'प्रदर्शन चरण' कहा है (टकमैन और जैनसन, 1977)। वे लोग जो टी ग्रुप प्रक्रिया से भलीभांति परिचित हैं, इस बात को मानेंगे कि कई समूह प्रयोगशाला के प्रारंभ में अनिश्चित ढंग से चीजों को टटोलते हैं लेकिन अंत की तरफ बढ़ते हुए वे सही प्रदर्शन करने लगते हैं। पर यह कैसे होता है?

• मान्यताओं को परिकल्पनाओं में बदलना

ये बुनियादी मान्यताएं शुरूआत में समूह को जकड़े रहती हैं, और अपने कई डरों के कारण समूह गुस्से, निराशा, हताशा, मायूसी के आगे नहीं बढ़ पाता। अनुदेशक समूह को 'यहाँ और अभी' में लाने का

प्रयास करते हैं, बुनियादी मान्यताओं को अपनाने और उनके मुताबिक काम करने के लोभ से बचने के लिए, और इस बात को सुनिश्चित करने के लिए काफी संघर्ष करते हैं, कि उनका रवैया निर्देशात्मक न रहे। जब भी समूह इस चर्चा में लग जाता है कि समूह के बाहर क्या हो रहा है, या क्या हुआ है, तो अनुदेशक, समूह के सदस्यों को, किस बारे में बात की जा रही है और वाकई उस वक्त समूह में क्या चल रहा है, इसके बीच कुछ समानता दिखाने के लिए कहता है।

सदस्यों को बीच-बीच में छोटे-छोटे संकेत देते रहना भी ऐसी स्थितियों में बहुत काम आया है जैसे, “अब आप कैसा महसूस कर रहे हैं?” “क्या वह सब अभी यहाँ हो रहा है?” “यहाँ क्या हो रहा है जिसके बारे में बात नहीं की जा रही है?”। इससे वे लोग समूह के बाहर जो समानता ढूँढ रहे हैं उसके सापेक्ष समूह के भीतर ही वे अपनी स्थितियों के बारे में बता पाते हैं।

मेरे विचारों और मतों से अलग विचारों और मतों को सुनने, स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ते जाने से मुझे यह बात समझ में आई कि मेरी मान्यता तो यही थी कि इस संस्थान से मुझे कुछ नहीं मिलने वाला, और मैं बस उन्हीं कारणों की तलाश में था जो मेरी इस मान्यता को सही साबित कर सकते। लेकिन, हर वर्ष जितनी संख्या में लोग आईएसएबीएस के कार्यक्रम में भाग लेते, उसे देखते हुए मुझे लगा कि यह प्रक्रिया वाकई सार्थक साबित हो सकती है। इस परिकल्पना ने मुझे अगले सिद्धांत से परिचय करवाया, जो स्वयं को खोजने की मेरी यात्रा का एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ है।

“अनुभव सबसे अच्छा शिक्षक होता है!” “अतीत से सीखो!” ये कुछ ऐसी बातें हैं जो हमारे माता-पिता और शिक्षकों द्वारा लगातार हमारे कानों में टूँसी जाती हैं। अभी तक मेरा अतीत ही मेरा जीवन था। अतीत से अलग होना मेरे लिए बहुत मुश्किल था। मेरे पास अपने बचपन की, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के दौर की, जीवन के उतार-चढ़ावों की, अपने डरों की, और खुद के प्रति नजरिये से जुड़ी, बहुत सारी घटनाएँ थीं – इन सभी ने मिलकर मेरा वर्तमान व्यक्तित्व बनाया था, लेकिन फिर भी, अनुदेशक ‘यहाँ और अभी’ पर ही जोर देते हैं।

“अतीत में कुछ भी घटित नहीं हुआ, जो भी हुआ वर्तमान में हुआ। भविष्य में भी कभी कुछ नहीं होगा; जो भी होगा वह वर्तमान में होगा। जिसे आप अतीत समझते हैं वह दरअसल अतीत का अवशेष होता है, जो किसी पुराने वर्तमान के मन में संग्रहित रहता है...। जब आप अतीत को याद करते हैं, तो आप स्मृति के इस अवशेष को फिर से जिंदा कर लेते हैं - और ऐसा आप वर्तमान में करते हैं। भविष्य एक काल्पनिक वर्तमान है, मन की कल्पना...।” (एकार्ट टॉले 2008)।

इस लेख में मैं इसी विश्वास को आप तक पहुँचाना चाहता हूँ - अगर टी ग्रुप के सत्रों में ‘यहाँ और अभी’ के सिद्धांत का पालन नहीं किया जाता तो उस कार्यक्रम/प्रयोगशाला की प्रभाविता न के बराबर हो जाती है।

इस अवरोध को पार करने के लिए, यानी बुनियादी मान्यताओं वाले समूह से कार्य समूह बनने के लिए - इस समूह की सीखने की जरूरत को देखते हुए अनुदेशक ‘यहाँ और अभी’ में लोगों द्वारा अपनी भावनाओं को उजागर करने के मानक को विकसित करने के लिए अपने कौशलों का इस्तेमाल करता है। जैसे-जैसे समूह में खुलापन बढ़ता है और लोग ज्यादा जोखिम लेना शुरू करते हैं, तो उनकी मान्यताएं बदलती जाती हैं, और वे परिकल्पना मानसिकता की ओर बढ़ने लगते हैं; समूह अपना काम करना शुरू करता है और अपनी समस्याओं को समूह में ही मिले, नतीजों के मुताबिक निबटाना शुरू करता है न कि अपने पूर्वाग्रह-ग्रसित ऐसे निष्कर्षों के मुताबिक जो समूह में उपलब्ध वास्तविक तथ्यों के साथ काम करने की उसकी मान्यता को मजबूत करते।

मैं इसे पूर्व में बताई गई बुनियादी मान्यताओं के उदाहरणों द्वारा समझाता हूँ, कि किस तरह अनुदेशकों के कौशलों ने इन मान्यताओं को ‘यहाँ और अभी’ की हकीकतों में बदल दिया था जो समूह के लिए बहुत लाभकारी साबित हुआ था।

बुनियादी मान्यताएं समूह को अपने कार्यों में तब तक प्रगति नहीं करने देतीं जब तक वे परिकल्पना में नहीं बदल जातीं। पूर्व में मैंने बीएडी का जो उदाहरण दिया था उसका उन सभी बीएलएचपी प्रयोगशालाओं में उपयोग किया जाता है, जहाँ मैंने काम किया है। अनुदेशकों से इस बात के लिए निरंतर सवाल-

जवाब किए जाते हैं कि वे समूह की मदद करने के लिए कुछ क्यों नहीं कर रहे। लेकिन यह जानते हुए कि समूह का कार्य खुद कर देने से समूह को दरअसल कोई लाभ नहीं होगा, इसलिए समूह को असहायता के दर्द से गुजरने देना उन लोगों के लिए हमेशा ज्यादा उचित साबित हुआ है। इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि समूह कुछ समय के लिए बीएडी को लेकर कार्य करता है, और इस दौरान समूह जो कुछ भी करता है, और जिस तरह भी करता है, अनुदेशक उससे खुद को असंबद्ध रखता है। लेकिन समूह क्या कर रहा है, उसे इस बात का संकेत उस समय अवश्य मिल जाता है जब अनुदेशक उनके साथ शामिल होकर उन्हें ऐसे नजरियों से अवगत कराता है जिनकी वे और पड़ताल कर सकते हैं।

जब कभी भी समूह बीएएफ मानसिकता से कार्य करता है, तो उनकी सफल सहायता हमेशा तभी होती है जब इस बात की पड़ताल की जाए कि समूह के वर्तमान जीवन में ऐसा क्या है जिसे नजरंदाज किया जा रहा है, जिसकी यहाँ चर्चा नहीं की जा रही, जिसे स्वीकार नहीं किया जा रहा, जिसे समझा नहीं जा रहा या जिसका सामना नहीं किया जा रहा। व्यक्तियों ने और समूहों ने कमरे में वापस आकर अपनी चिंताओं को सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया है, लेकिन अनुदेशक इसके बारे में और बात करने के लिए समूह की मदद करता है। यह आमंत्रण समूह को इस बारे में और जागरूक होने में मदद करता है कि दरअसल वहाँ क्या चल रहा है। अनुदेशक उनके सामने परिकल्पनाओं और नजरियों को रखते हैं जिन्हें समूह आगे और गहराई में समझते हैं। पहले दिए गए बीएएफ के उदाहरण में, जब समूह ने समय के नजरिये को समझा, समस्या को समझा और जो फायदे मिलने का दावा किया जा रहा था उन्हें समझा, तो उसने अपनी मान्यताओं और व्यवहार पर सवाल करना शुरू कर दिया। समूह को एहसास होता है कि किसी प्रतिभागी के दावे को प्रमाणित करने के लिए, तथा समूह उस समय तक जो कर रहा था उसे सही साबित करने के लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं था।

एक कार्यक्रम में, जहाँ मैंने अपने एक अन्य साथी के साथ प्रयोगशाला में काम किया था, हमने बीएपी की गहनता को महसूस किया था, क्योंकि प्रयोगशाला के दौरान लोग घंटों मौन रहे थे। बीच-बीच में आने वाले आमंत्रणों के कारण समूह के सदस्य कुछ कहते और फिर चुप हो जाते। पहला दिन तो हमेशा की तरह ही रहा - बीएडी। दूसरे दिन से तो समूह कार्य करने के लिए तैयार ही नहीं था, और ऐसे बर्ताव कर रहा था जैसे कोई नया मसीहा पैदा हो चुका हो।

जब दो ऐसे सदस्यों को आमंत्रण दिया गया, जिनके बारे में यह कहा गया कि वे 'इस प्रक्रिया से पहले भी गुजर चुके हैं', तो हम दोनों ने एक दूसरे को ताका दो अनुभवी (एक दोबारा बीएलएचपी कर रहा था, और दूसरा एएलएचपी करने के बाद दोबारा यहाँ आया था) लोग आधिकारिक प्रयोगशाला के बाद सभी सदस्यों के लिए एक पृथक प्रयोगशाला का आयोजन कर रहे थे। उन्होंने समूह को जो संदेश दिया वह स्पष्ट था: अनुदेशक उनके लिए उनका काम नहीं करने वाले थे और उन्होंने समूह को यह नहीं बताया कि समूह को स्वयं ही यह काम करना पड़ेगा। असल में, समूह को उनके साथ काफी अच्छा महसूस हुआ क्योंकि ये दो ऐसे सदस्य थे जो पहले इस प्रक्रिया से गुजर चुके थे।

समूह ने इन दो सदस्यों में, और ऐसे कुछ अन्य सदस्यों में अपने मसीहा ढूँढ लिए थे, जिन्होंने कहीं और ऐसे ही कार्यक्रमों में भाग लिया था, और अनुदेशकों द्वारा इस मान्यता को विफल बनाने के प्रयासों का कई तरीकों से विरोध किया गया। लेकिन, समूह दरअसल जो कार्य कर रहा था, उसकी जिम्मेदारी लेने के लिए जब वह तैयार हो गया तो उसे संतोष का एहसास हुआ। चीजों का प्रवाह बदला और समूह अपने कार्य में व्यवधान डाले बिना व्यक्तिगत तथा सामूहिक समस्याओं को निपटाने में सफल रहा। मसीहाओं को निराश नहीं होना पड़ा बल्कि वे भी समूह के कार्य में बराबर के प्रतिभागी बन गए। समूह ने नई ऊर्जा व उत्साह के साथ काम किया और अंत में, समूह के सदस्यों ने समूह की उपलब्धियों के लिए व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से संतोष व्यक्त किया।

निष्कर्ष

“अधिक सीखना तब होगा जब विशेषज्ञ प्रशिक्षु-केन्द्रित पद्धति अपनाएंगे, जहाँ अनुदेशक सीखने की प्रक्रिया में प्रशिक्षुओं के अनुभवों और उनके ज्ञान का सही उपयोग करते हैं...।” टी ग्रुप में अनुदेशक, व्यक्ति को और समूह को उनके सीखने के कार्यक्रम तथा उसकी प्रक्रिया को तय करने का मौका देते हैं। यह बात उन्हें बहुत भीतर तक असर करती है जब उन्हें पता चलता है कि वहाँ उन्हें निर्देशित करने के लिए कोई मनोनीत नहीं है। उन्हें बीएडी, बीएफ, बीएपी की बुनियादी मान्यता द्वारा राहत मिलती है...। बुनियादी मान्यता की मानसिकता खुद को कार्य करने से बचाती है, क्योंकि कार्य करने के लिए कार्य-समूह की प्रक्रिया को वास्तविकता से नाता बनाए रखना जरूरी होता है (बायन, 1961:157)। कार्य-

समूह मानसिकता अपने आप को सत्य की कसौटी पर – या वास्तविकता की कसौटी पर – कसती है, भले ही इसका अर्थ मजे-मौज को टालकर दर्द को सहना हो; यह मानसिकता 'समझ हासिल करने की क्षमता को प्राप्त करना आवश्यक बना देती है' (बायन, 1961:161)। कार्य समूह वाली यह मानसिकता पाना तभी सम्भव है जब समूह व अनुदेशक बुनियादी मान्यताओं के बीच-बीच में उठते रहने के बारे में निरंतर सचेत रहते हैं, और इन मानसिकताओं को समूह की मौजूदा वास्तविकता से जोड़ने के, और इन परिस्थितियों में उन्हें परखने के प्रयास करते रहते हैं।

3.2

टी-ग्रुप और परिवर्तन

शरद सकोरकर

टी-ग्रुप में भाग लेना परिवर्तन और विकास के अवसर को गले लगाना है। टी-ग्रुप में प्रतिभागी और अनुदेशक (facilitator) दोनों रूपों में भाग लेकर मुझे बहुत फायदा हुआ। टी-ग्रुप में भाग लेने वाले लोगों, शिक्षकों और शोधकर्ताओं में यह जानने की जिज्ञासा रही है कि किसी टी-ग्रुप में भाग लेने से क्या परिवर्तन आता है और कैसे आता है? अनुभवजन्य शोध में देखा गया है और मेरा ये लेख भी इसकी पुष्टि करता है कि टी-ग्रुप से बदलाव आते हैं। मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभव इसमें साझा किए हैं और ये भी बताया है कि किस तरह मनोभावों को समझने से मुझे अपने भीतर दूरगामी बदलाव लाने में मदद मिली।

शोध साहित्य का अवलोकन

स्मिथ (1980) ने ऐसे सौ से भी ज्यादा अध्ययनों की समीक्षा की जिनमें टी-ग्रुप के प्रतिभागियों पर हुए प्रभावों और इसके नतीजों को समझने की कोशिश की गई थी। इन अध्ययनों में प्रशिक्षण के पूर्व और उसके बाद की स्थितियों को मापदंड बनाया गया। इनमें भाग लेने वालों ने जिन बदलावों का जिक्र किया उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

- दूसरों के प्रति बढ़ी हुई संवेदनशीलता, समतावादी भाव, संवाद का कौशल और नेतृत्व क्षमता
- संवेदना और सुनने की क्षमता में बढ़ोतरी
- ज्यादा सकारात्मक और सक्षम आत्म-छवि का बोध
- बढ़ी हुई स्वायत्तता
- अपने व्यवहार में परिवर्तनशीलता
- ज्यादा सहभागितापूर्ण नेतृत्व
- 'अंतर्व्यक्तिक (inter-personal) मसलों' से उभरे टकरावों के प्रति अधिक स्वीकृति
- दूसरों के प्रति स्वीकार्यता का भाव या नए अनुभवों के प्रति तत्परता
- दूसरों से स्नेह करने व उनके स्नेह को स्वीकारने की क्षमता में बढ़ोतरी
- अपने बारे में अधिक से अधिक प्रकटीकरण
- तात्कालिक व्यक्तिगत दुविधाओं से उबरने की क्षमता

अपनी विस्तृत समीक्षा के अंत में स्मिथ (1980; पृ. 46) ये निष्कर्ष निकालते हैं कि टी-ग्रुप के अनुभव के बाद वास्तव में गौरतलब परिवर्तन आता है।

ISABS के शोध

ISABS द्वारा लगातार किए गए शोधों से भी ये पता चलता है कि ग्रुप अनुभव के बाद बदलाव आता है। ISABS ने "ISABS इम्पैक्ट सर्वे" के तहत जून 2010, जुलाई 2011 और जनवरी 2013 के लैब में भाग लेने वाले प्रतिभागियों पर हुए प्रभाव का अध्ययन किया (देखें पेपर 3.1) और निम्नलिखित क्षेत्रों में हुए महत्वपूर्ण बदलावों को चिन्हित किया:

- अपने व्यवहार की विशिष्टता के प्रति जागरुकता
- दूसरों पर अपने व्यवहार के प्रभाव की बेहतर समझ
- दूसरों के व्यवहार का अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों की बेहतर पहचान
- अधिक प्रभावी अंतर्व्यक्तिक (inter-personal) व्यवहार
- अपनी क्षमताओं और ज्यादा अर्थपूर्ण जीवन की बेहतर समझ
- अंतर्व्यक्तिक (inter-personal) व अंतःव्यक्तिक (intra-personal) स्थितियों में आने वाली दुविधाओं से जूझने के ज्यादा विकल्प
- अन्योन्याश्रित मानव प्रक्रियाओं के प्रति ज्यादा जागरुकता
- संगठन और/या समाज में ज्यादा प्रभावी होने के लिए अपनी छिपी हुई क्षमताओं की खोज
- लोगों को सुनने और प्रभावी हस्तक्षेप की क्षमता में इजाफा और मानव प्रक्रियाओं के प्रति संवेदनशीलता में बढ़ोतरी

ये देखा गया है कि ISABS के शोध में प्रतिभागियों ने जिन बदलावों का जिक्र किया है वे स्मिथ (1980) द्वारा किए गए शोध अध्ययनों से काफी मिलते-जुलते हैं।

समूह में सीखने का ज्ञानात्मक सिद्धांत

ऑटले (1980) अपनी बात की शुरुआत स्मिथ (1980; पृ. 46) के निष्कर्ष से करते हुए कहते हैं कि 'संवेदनशीलता प्रशिक्षण समूहों' में भाग लेने से स्पष्ट और माप-योग्य बदलाव आते हैं मगर कुछ महीनों बाद ये बदलाव काफी धुंधले हो जाते हैं। ऑटले (1980; पृ 88) का सिद्धांत है कि, "कोई ग्रुप नए अनुभव का छोटा मगर महत्वपूर्ण बीज बो सकता है, और उचित देख-रेख से ये बीज विकसित होकर अपने व दूसरों के बारे में अनुभव की नई दिशाएं खोल सकता है"। ऑटले का सिद्धांत अर्थ-निर्माण में 'मानसिक खाके के प्रयोग' के संबंध में बार्टलेट (1932) और पियाजे (1974) के विचारों से प्रेरित है। इसके अलावा उन्होंने होमे (1942) के कार्यों से भी मदद ली है। ये खाका एक ज्ञानात्मक रूपरेखा या अवधारणा है जो सूचना को व्यवस्थित करने व उसकी व्याख्या करने में मदद करती है। बार्टलेट का सिद्धांत बताता है कि दुनिया की हमारी समझ अमूर्त मानसिक संरचनाओं से बनती है। पियाजे के सिद्धांत के अनुसार बच्चों का बौद्धिक विकास ज्ञानात्मक विकास के चरणों जैसा होता है। पियाजे के सिद्धांत में ये खाका ज्ञान की एक श्रेणी भी है और साथ ही उस ज्ञान को हासिल करने की प्रक्रिया भी

(www.about.com)। होर्ने (1942) का कहना है कि बचपन में ही हम जीवन की योजना या दूसरों से संबंध के बारे में कुछ अंतर्निहित सिद्धांत बनाने लगते हैं। ये अंतर्निहित सिद्धांत ही वो खाका या मानसिक मॉडल है जिसके आधार पर हम दूसरों के संबंध में अपने बारे में निष्कर्ष निकालते हैं व उनके अनुरूप कार्य करते हैं।

एक ऐसे कर्मचारी की कल्पना कीजिए जिसका बॉस लगातार अपनी तारीफ़ और गुणगान सुनना चाहता हो और किसी तरह की आलोचना बर्दाश्त न करता हो और अगर वो ये पाए कि कोई कर्मचारी नियमित रूप से उसका सत्कार नहीं कर रहा है तो बॉस उसके खिलाफ़ हो जाता हो। ऐसी स्थिति में कर्मचारी सचेत तौर पर एक ऐसी योजना बनाएगा या बनाएगी जिससे उसका बॉस खुश रहे और उसकी नौकरी भी बची रहे। उसके पास ये विकल्प है कि जैसे ही परिस्थिति बदले वो इस योजना का त्याग कर दे, यानी पुराने बॉस का सामना करने के लिए जो खाका उसने बनाया था उसे छोड़ दे और नए बॉस के अनुरूप नया खाका बनाए। अब एक बच्ची की कल्पना कीजिए जो एक ऐसी माँ का सामना कर रही है जिसकी बच्ची से कुछ ऐसी ही अपेक्षाएं हैं। उस बच्ची की मोटे तौर पर वैसी ही समस्याएं हैं और उसे भी कुछ वैसी ही योजना बनानी पड़ती है; तब वो बच्ची अंजाने में ही वैसी योजना विकसित कर लेगी जो उसका अंतर्निहित सिद्धांत बन जाएगा। ये अंतर्निहित सिद्धांत उस बच्ची के आगामी जीवन के सामाजिक संबंधों में विकसित होता जाएगा। होर्ने के अनुसार बचपन में बने इस तरह के खाके स्वस्थ विकास को बाधित कर सकते हैं। ऑटले (1982; पृ 92) का कहना है कि “अपने जीवन के शुरुआती वर्षों में अपने आसपास के खास लोगों (significant others) से परस्पर क्रियाकलाप की स्वभाविक प्रवृत्ति के अनुरूप हर व्यक्ति कुछ अंतर्निहित सिद्धांत विकसित कर लेता है – सौभाग्य से इन अंतर्निहित सिद्धांतों में आगे जाकर काफी बदलाव लाया जा सकता है”। उनका मत है कि व्यक्तिगत अधिगम और कुछ नहीं बल्कि अपने अंतर्निहित सिद्धांत में विस्तार, सुधार या बदलाव लाना ही है।

मनोभाव कैसे पनपते हैं और सीखने में उनकी क्या भूमिका है

अपने आसपास के जीवन के यथार्थ की व्याख्या हम अंतर्निहित सिद्धांत या मानसिक खाके से करते हैं। अगर हमारे सिद्धांत और बाहर मौजूद साक्ष्यों में मेल होता है तो हम घटनाओं को समझ पाते हैं। लेकिन अगर ये साक्ष्य हमारे सिद्धांत से मेल नहीं खाते तो भावनाएं या मनोभाव पनपते हैं (कलज़ 1978)। ऑटले के अनुसार साक्ष्य और सिद्धांतों में अंतर सिद्धांतों में बदलाव लाने की जरूरत की ओर एक इशारा है। कलज़ के अनुसार भावनाओं का एक खास घटनाक्रम या कालक्रम होता है। ऑटले (पृ. 93) कलज़ द्वारा पेश की गई मिसाल को उद्धृत करते हैं जिसमें एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी पत्नी उसे बताती है कि वो उससे प्यार नहीं करती। अगर वो व्यक्ति अपनी पत्नी के विश्वासघात पर ध्यान देगा तो उसे गुस्सा आएगा; अगर वो उस ‘दूसरे’ आदमी के बारे में सोचेगा तो उसे जलन होगी; अगर अपनी पत्नी से बिछड़ने के बारे में सोचेगा तो दुख महसूस होगा; अगर उसके वापस आने के बारे में सोचेगा तो और बेकरारी होगी; अगर पड़ोसी क्या कहेंगे सोचेगा तो शर्म महसूस होगी, वगैरह।

हम घटनाओं को जो अर्थ देते हैं और बाहरी सच्चाई व अपने अंतर्निहित सिद्धांत में बने अंतर की जिस प्रकार व्याख्या करते हैं उससे ही भावनाएं या मनोभाव बनते हैं। इस प्रकार, अगर हम मनोभावों पर ध्यान दें तो हमें ये समझने में मदद मिलेगी कि हम घटनाओं का क्या अर्थ निकाल रहे हैं। इससे संभव है कि हम अपने अंतर्निहित सिद्धांत को देख पाएं और अगर जरूरी हो तो उस पर पुनर्विचार करें। लेकिन अगर हम इन मनोभावों पर ध्यान नहीं देंगे या उन्हें अस्वीकार करेंगे तो इससे उल्टा होगा। कत्ज़ के उदाहरण में संभव है कि वो आदमी अपने अंतर्निहित सिद्धांत को बदल कर ये मान बैठे कि सभी औरतें केवल दुख ही देती हैं और फ़ैसला करे कि उनसे कोई संबंध नहीं रखेगा; या संभव है कि वो ये फ़ैसला करे कि अगली बार बेहतर जीवनसाथी बनने की कोशिश करेगा आदि (पृ. 93)।

इसके बाद ऑटले बदलाव और मनोभावों के संबंध की पड़ताल करते हैं। आमतौर पर प्रतिभागी ग्रुप में अस्वीकृत होने के डर से अपने बारे में कोई बेहद व्यक्तिगत या गोपनीय बात नहीं करते। जब अपनी आशंका के विरुद्ध ग्रुप से प्रशंसा और स्वीकृति मिलती है तो प्रतिभागी को सुखद आश्चर्य होता है। मनोभावों को स्वीकारने व अपनाने का सकारात्मक असर होता है। हालांकि ये देखा गया है कि हमसे से अधिकतर लोगों में अनेक प्रकार के तीखे मनोभाव होते हैं मगर इन्हें इस तरह महसूस करते हैं जैसे ये हमारे व्यक्तित्व का खास हिस्सा ही हों। इनको बदलने की बजाय हम इनमें बुरी तरह फंसे महसूस करते हैं। ऑटले का मत है कि जिन अंतरों की बात ऊपर की गई है उनसे तभी बदलाव आ सकता है जब ये मनोभाव या संभावित बदलाव भयंकर न हो या किसी बाहरी साधन (जैसे कि दमनकारी अभिभावक) द्वारा या उसके आत्मसात किए गए अंश द्वारा इसपर कोई पाबंदी न लगी हो (पृ. 94)।

लेकिन इस अवस्था में किसी अंतर से उपजे मनोभाव बदलाव कैसे ला सकते हैं? ऑटले के अनुसार जब समूहों में एक-दूसरे की देखभाल करने, ध्यान देने, आज़ादी या सहयोग व भरोसे का माहौल बनता है तब जाकर ऐसे वातावरण का निर्माण होता है जिसमें बिना किसी मूल्यांकन के हर तरह के मनोभाव 'स्वीकृत' होते हैं (उन्हें सही या गलत, अच्छा या बुरा ठहराए बिना)। किसी के सचेत रूप से सोच-समझकर अपना नज़रिया और व्यवहार बदलने के फ़ैसले से ही बदलाव नहीं आता। ऑटले का कहना है कि अगर ऐसा होता तो नए साल पर खाई जाने वाली कसमें वास्तविकता से कहीं ज्यादा सफल होतीं। ज्यादा जरूरी ये है कि हम जो हैं उसे मानें और स्वयं को अपनी भावनाओं और अनुभवों से प्रभावित होने दें और इस प्रभाव को समझें; खुद को अपनी भावनाओं और अनुभवों से प्रभावित होने से रोके नहीं बल्कि ऐसा होने दें।

टी-ग्रुप के अपने अनुभवों के चलते मुझे ये ज्ञानात्मक सिद्धांत बेहद रोचक और कारगर लगता है। व्यक्तिगत अधिगम और बदलाव में भावनाओं की भूमिका मेरे लिए ऑटले के सिद्धांत का बड़ा प्रकटीकरण रहा है।

टी-ग्रुप में मैंने क्या अनुभव किया है?

टी-ग्रुप में हम मनोभावों पर बिल्कुल स्पष्ट ध्यान रखते हैं। इसमें एक उद्देश्य ये होता है कि प्रतिभागियों को उन शुरुआती और शक्तिशाली प्रक्रियाओं, जो ज्यादातर भुला दी गई होती हैं, को पहचानना और जीवन में उनकी भूमिका का विश्लेषण करना सिखाया जाए। मनोभावों के पनपने संबंधी अवधारणा, और जो मौके वह उपलब्ध कराती हैं उन मौकों पर ध्यान देने की जरूरत मुझे बड़ी आकर्षक लगती है।

मैंने उन ज्यादातर प्रक्रियाओं का अवलोकन किया है जिनका वर्णन ऑटले करते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि अपने बारे में जिस बात को बताने में किसी सदस्य को डर होता है कि वो किसी से कमतर या कमजोर दिखेगा, उसे समूह बड़ी गर्मजोशी से अपनाता है। इससे उस सदस्य को अहसास होता है कि उसकी अहमियत है और अपने खुलेपन के लिए उसकी सराहना हुई है। जब मैं ISABS के प्रोफेशनल डेवेलपमेंट प्रोग्राम का हिस्सा था तब दो लैब में मुझे इस प्रक्रिया से व्यक्तिगत फायदा हुआ। लैब में मेरे अंदर ग्रुप के कुछ अन्य सदस्यों की तुलना में एक खास तरह की कमतरी का अहसास बन गया था जिससे तमाम तरह की नकारात्मक भावनाएं मेरे अंदर उभरीं। मैंने हिम्मत दिखाई और उन सदस्यों के प्रति और खुद मेरे बारे में जो कुछ भी मेरे मन में था – ठीक वैसे ही जैसा वो था बिना किसी हेरफेर के सबको बताया। आज पीछे मुड़ के देखूं तो वो मेरी जिंदगी के ऐसे पलों में से था जब मैं बेहद भेद्य था। लेकिन ग्रुप ने मुझे बड़ी गर्मजोशी और संवेदनशीलता से अपनाया और उस पूरी घटना में मेरा साथ दिया। मैं छोटेपन के उस अहसास से बाहर आ सका। मुझे सदस्यों से स्वीकार्यता, अपनापन और प्रेम मिला। अब जब मैं देखता हूं, तो जैसा कि ऑटले का कहना है, उस पल में मेरे अंदर जो भी अहसास उठे थे उन्हें अनुभव करने से मुझे अपने अंदर दूरगामी बदलाव लाने में बड़ी मदद मिली। अगर अपनी छवि बनाए रखने के चक्कर में मैंने अपने सच्चे मनोभावों को नहीं बतलाया होता तो हो सकता है उस कमतरी के अहसास से मैं एक-दो साल और बल्कि संभव है कि आज तक जूझ रहा होता। इससे पहले मुझे पता था कि वो भावना मेरे अंदर है और ये भी अहसास था कि मुझे खुद को 'बदलना' चाहिए मगर ऐसा कर नहीं पाया था।

व्यक्तिगत बदलाव के लिए सिर्फ ज्ञानात्मक समझ ही काफी नहीं होती। जब मैं टी-ग्रुप में अपने और दूसरों के अनुभवों को देखता हूं तो ये बिल्कुल सही मालूम पड़ता है। कई बार मैं सदस्यों को अप्रत्यक्ष रूप से दूसरों के काम और मेहनत से ही काम चलाने की कोशिश करते देखता हूं। वे ये सोच लेते हैं कि लैब से वापस जाकर वो अलग तरीके से व्यवहार करने की करने की कोशिश करेंगे। मैंने भी ऐसा करने की कोशिश की है। लेकिन जब भी मैंने ऐसा किया – बस चीजों को कुछ अलग तरीके से करने की कोशिश – तब निश्चित तौर पर मैं अगले लैब में उन्हीं समस्याओं और नजरिये के साथ वापस लौटा हूं।

टी-ग्रुप की सीख और समझ को आगे ले जाने में सहायक बातें

आत्म-स्वीकृति

क्या मैं खुद को नीचा महसूस किए बिना जैसा मैं हूँ वैसे ही खुद को स्वीकार कर सकता हूँ? क्या मुझे ये भरोसा है कि मेरे अंदर बदलने और विकास की क्षमता है? ये बड़ी धीमी और पीड़ादायी प्रक्रिया है मगर यदि मुझे आगे बढ़ना है तो ये जरूरी और अपरिहार्य है। मैं जैसा हूँ वैसे ही खुद को स्वीकार करने की मेरी कोशिश में नाथानियल ब्रांडेन के विचारों (1994) ने मेरी सचमुच मदद की है –जो कि उनके विचार में बदलाव की तरफ पहला कदम है। यहां खुद को स्वीकार करने का अर्थ निराशात्मक नहीं है, बल्कि ये सकारात्मक भाव से स्वयं को स्वीकारना है।

स्पष्टता

मैंने ये पाया है कि मेरी परख और सीख 'आत्म' (यानी अपने 'मैं' से या उस 'मैं' को संभालने से जुड़ी होती है), या 'अंतरवैयक्तिक' और 'ग्रुप' के स्तर की है (दूसरों से संबंधित जैसे कि अपने और दूसरों, अपने और ग्रुप से या ग्रुप और खुद से जुड़ा हुआ)। मेरे 'प्रतिभागी समीक्षा फॉर्म' में अनुदेशक द्वारा दी गई राय व टिप्पणियां और उनको सही ढंग से समझना मेरे लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अलावा अनुदेशक से संवाद से भी मुझे मदद मिली।

प्राथमिकता

जब भी मैंने एक समय में एक से अधिक उद्देश्य अपने सामने रखे तब या तो मैं उनसे न्याय नहीं कर पाया या पूरी तरह विफल ही हो गया।

सही लक्ष्यों का चुनाव

मेरे अनुभव ने मुझे सिखाया है कि जब मैंने अपने "स्व" से जुड़े लक्ष्यों पर काम किया तो उसका एक प्रवाहपूर्ण सकारात्मक असर मेरे अंतर्वैयक्तिक जीवन पर भी पड़ा। मिसाल के तौर पर, जब मैं लोगों की बात 'सुनने' का अभ्यास करता हूँ तो इससे मुझे खुद को बेहतर सुनने-समझने में मदद मिलती है, अपने निर्णय को एक तरफ रखने में मदद मिलती है, धैर्य रखने में मदद मिलती है और ऐसे ही दूसरे लाभ होते हैं। इन सबसे मुझे अपने अंतर्वैयक्तिक संबंधों में फायदा मिलता है – मैं दूसरों से खुद को जोड़ पाता हूँ। दूसरे शब्दों में ये मेरी जांची-परखी मान्यता है कि जब मैं व्यक्तिगत रूप से ज्यादा प्रभावशाली होता हूँ तो मेरा 'अंतर्वैयक्तिक प्रभाव' भी तेजी से विकसित होता है।

लक्ष्य निर्धारण

एक बार आपने अपने लक्ष्य/लक्ष्यों को तय कर लिया है तो इससे SMART लक्ष्य (specific या निश्चित, Measurable या माप-योग्य, Attainable या हासिल करने योग्य यानी व्यवहारिक, Relevant या प्रासंगिक, Time-bound या समयबद्ध) बनाने में मदद मिलेगी। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए तय किए गए कार्यों को शुरू कर उन्हें समय पर पूरा करने के लिए अनुशासित होना बहुत जरूरी है।

करीबी लोगों से अपने लक्ष्य साझा करना

आत्म-विकास में परिपुष्टि (फीडबैक) की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। अपने लक्ष्यों को अपने करीबी व्यक्तियों से साझा करें और उन्हें किसी विशिष्ट व्यवहार (सकारात्मक या नकारात्मक) पर ईमानदार परिपुष्टि (फ़ीडबैक) देने के लिए कहें तो इससे बहुत मदद मिलेगी। अपनी प्रैक्टिस के दौरान मैंने उन नेतृत्वकर्ताओं को देखा है जिन्होंने अपने साथियों को स्पष्ट बता दिया कि अपने कार्य व नेतृत्व की शैली में किस तरह का बदलाव वो चाहते हैं और इससे उन्हें बड़े उत्साहवर्धक नतीजे मिलें।

पठन-पाठन

टी-ग्रुप व्यक्तियों को

- व्यवहार व प्रतिक्रिया के विस्तृत विश्लेषण का खास मौका देता है
- दूसरे हमें कैसे देखते हैं इसका अवलोकन करने का मौका देता है
- अपने व्यवहार को बदलने का और सकारात्मक सहयोग के लिए तत्पर टी-ग्रुप के साथियों की मदद से उस बदलाव को स्थायी बनाने का असाधारण मौका देता है।

ये सब देखकर मेरा अपना अनुभव मुझे बताता है कि शोध, सिद्धांत, और इसका अभ्यास करने वाले पुराने लोगों के अनुभवों के प्रत्यक्ष ज्ञान से सीखना बहुत जरूरी है। अपने अनुभवों को बेहतर समझने में और उसके आधार पर सामान्यीकरण करने में मुझे पढ़ने से हमेशा मदद मिली है। मैंने अपनी पढ़ाई की योजना को हमेशा उदय पारीख (1991) द्वारा सुझाए वर्गीकरण के आधार पर बनाया है – आत्म (व्यक्ति), भूमिका, अंतर्व्यक्तिक (युग्म), टीम, अंतर-दलीय, और संगठन। इन सभी क्षेत्रों से संबंधित अच्छी किताबें पढ़ने से मुझे वाकई फायदा हुआ है। मैंने खुद पर सवाल उठाने के लिए उदय के वर्गीकरण का इस्तेमाल किया है। इनमें से किसी भी क्षेत्र में मैं कहाँ हूँ? मैं अपने ज्ञान, कौशल और व्यवहार में क्या कमियाँ देखता हूँ? इन कमियों को दूर करने के लिए मैं क्या करना चाहता हूँ – क्या मैं खुद को जांचने, विचारों व अवधारणाओं को आत्मसात करने और प्रयोग व अभ्यास करने के लिए तैयार हूँ?

सीखने की डायरी रखना

डायरी लिखने का अभ्यास मैंने ISABS के संपर्क में आते ही शुरू कर दिया था। ये अब भी जारी है, हालांकि उतनी नियमितता से तो नहीं परंतु सुधार के क्षेत्रों में ये अभ्यास निश्चित तौर पर अभी भी जारी है। इस संबंध में मार्ग्रेट जेम्स-नील (1982) के पेपर “दी लर्निंग जर्नल” में उल्लिखित विचार बड़े उपयोगी लगें (ये ISABS की पठन सामग्री में से एक है)। कुछ साल पहले सेंटर फॉर क्रिएटिव लीडरशिप (CCL; www.ccl.org) से अपने संबंध के दौरान मुझे एक बढ़िया चिंतन यंत्र (reflection tool) मिला। ये मूलतः कनाडा के नियाग्रा इंस्टिट्यूट (www.niagarainstitute.com) ने विकसित किया है लेकिन अब उनकी वेबसाइट पर उपलब्ध नहीं है। लेकिन CCL उनसे अनुमति लेकर इसका उपयोग करता है। ये मूलतः चिंतन-मनन का एक टूल (यंत्र) है जो आपको अपने अनुभवों को जांचने में मदद करता है और साथ ही सीखी हुई चीजों को – जैसे की कोल्ब के अधिगम चक्र में थी – प्रश्नों के एक सेट से सामने रखता है जिनका आपको जवाब देना होता है। इन दोनों चीजों की मदद से मुझे कुछ बेहद महत्वपूर्ण घटनाओं का अवलोकन करने और अपनी सीखी हुई चीजों का खाका खींचने में मदद मिली है। इनमें से कुछ सवाल जिनका मैं इस्तेमाल करता हूँ यहां दिए गए हैं:

- वो घटना क्या थी?
- मेरी प्रतिक्रिया क्या थी? मेरे मन में क्या ख्याल और भावनाएं आ रही थी?
- मेरी प्रतिक्रिया मुझे अपने बारे में क्या बताती है?
- मैंने प्रभावी ढंग से किया या नहीं?
- क्या मुझमें कोई ऐसी प्रवृत्ति दिखाई दे रही है जो मेरे हित में नहीं है?
- इससे मिलती-जुलती स्थितियों और परिस्थितियों में मैं क्या करूंगा?

उपसंहार

यहां मैंने वो बातें सामनी रखी हैं जिनसे मैं प्रभावित हुआ और जिनसे मुझे टी-ग्रुप के अनुभवों का मूल्य समझने में मदद मिली और वे चीजें भी जिन्हें सीखने की संभावना बनी। मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों और ज्ञानात्मक सिद्धांत में जो संबंध देखा है उसका यहां जिक्र किया है। अपने मनोभावों और भावनाओं पर ध्यान देने से मुझे सचमुच बहुत फायदा हुआ है। व्यक्तिगत बदलाव कठिन होता है। कई ऐसे मौके आए जब मैं सब छोड़ देना चाहता था। लेकिन जैसा कि एम. स्कॉट पेक (1993) कहा है, “जागरुकता का रास्ता वन-वे टिकट है – एक बार आप जागरुक हो गए तो वापस नहीं जा सकते और एकमात्र रास्ता आगे बढ़ने का ही है!”

T ग्रुप में स्व के स्तर पर व्यवहार बदलाव की मुख्य प्रक्रियायें

प्रदीप प्रकाश

यह लेख निम्न प्रकार की प्रक्रियाओं की छानबीन करता है :-

- कैसे व्यक्ति दूसरों के द्वारा उनके व्यवहार पर दी गई टिप्पणियों, प्रतिक्रिया का सामना करता है?
- प्रतिक्रिया का सामना करने के तरीकों का स्वयं के व्यवहार में बदलाव पर क्या परिणाम होता है?
- किस प्रकार की प्रौद्योगिकी (processing) व्यवहार में बदलाव लाने में सहायक होती है, व किस प्रकार के बदलाव को रोक देती है
- व्यक्ति के बदलाव की प्रक्रिया को, समूह का वातावरण एवं सदस्यों का व्यवहार किस प्रकार प्रभावित करता है

मानव अध्ययन में, व्यक्तियों, समूह, समुदाय, एवं समाज में व्यवहार एक रोचक विषय है। यह लेख उसी का एक छोटा सा किन्तु महत्वपूर्ण भाग है। इसका आशय T ग्रुप में बदलाव की प्रक्रिया की बारीकियों को समझने की सक्षमता का विकास करना है। (French et al, 1997) यहाँ पर केवल व्यवहार बदलाव (T ग्रुप में) की कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है।

1 T – ग्रुप में व्यक्तिगत व्यवहार परिवर्तन :-

इसमें 10 से 12 लोग अब और यहाँ (here and now) की स्थिति में एक स्थान पर बैठ कर एक दूसरे के व्यवहार का असर जो स्वयं पर व दूसरों पर को साक्षा करते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रतिक्रिया साक्षा करना व्यक्ति के (अमुक) व्यवहार के पक्ष या विपक्ष में बदलाव लाने को प्रेरित करेगा। असंरचित (unstructured) स्थिति के समूह में, इस प्रकार के व्यवहार परिवर्तन में संस्कृति की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है (Johnson 1981)। T ग्रुप में सहजकर्ता ना तो नेता होता है, और ना ही समूह के लिये कोई दिशा निर्देश निश्चित करता है। वह सिर्फ समूह में जब जब अवसर आते हैं, सीखने की प्रक्रिया में सहायक होता है (Bennis et al 1974)। अतः समूह की संस्कृति समूह के सदस्यों एवं सहजकर्ता की साझा ज़िम्मेदारी होती है।

1.1 व्यवहार प्रक्रियायें

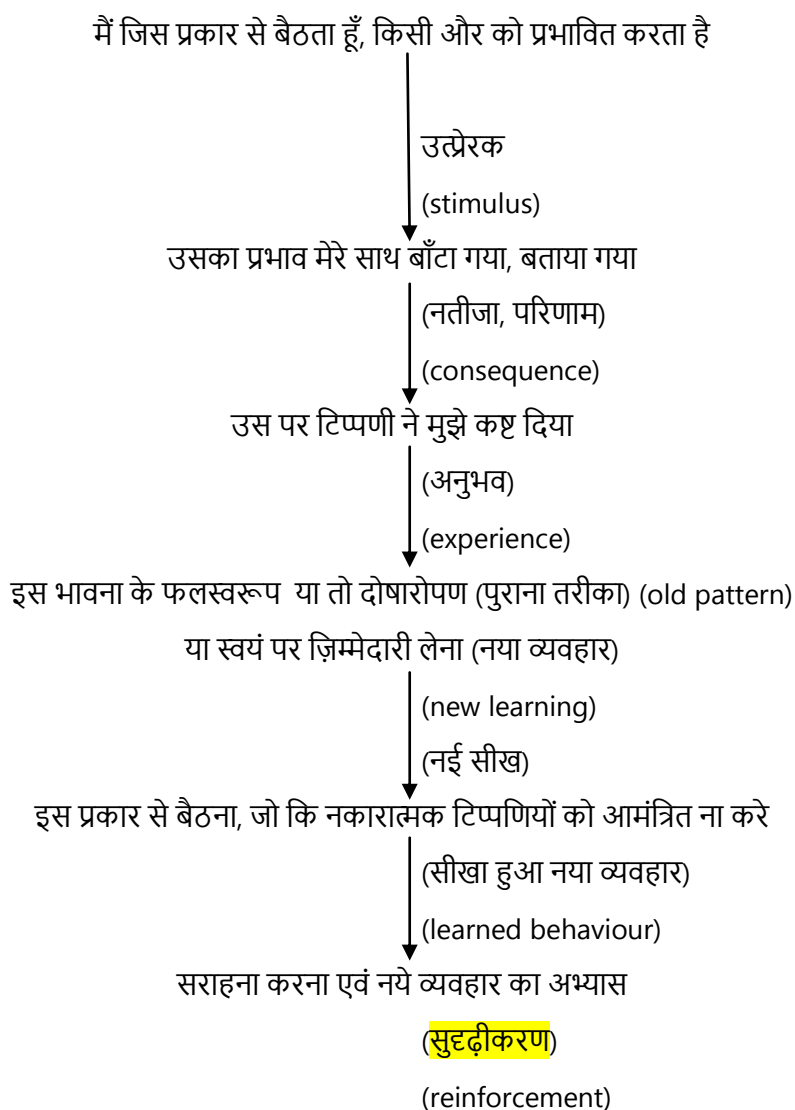
व्यवहार प्रक्रिया की अनेक परिभाषायें हैं। मैं यहाँ स्वयं की बनाई परिभाषा से तात्पर्य रखता हूँ, जो निम्न है:-

व्यवहार प्रक्रिया एक प्रकार की भावनाओं के दूसरी (अन्य) प्रकार की भावनाओं में परिवर्तन की प्रक्रिया है। जैसे कि चोट, आघात (hurt) का परिवर्तन में हो जाना और जिस व्यक्ति ने चोट पहुँचाई है, उसे गुस्से के लिये ज़िम्मेदार ठहराना, और यह, जिस व्यक्ति को ज़िम्मेदार ठहराया गया है, उसमें भावनाओं को जगाता है। और इस प्रकार दोनों के मध्य आपसी व्यवहार की प्रक्रिया की शुरुआत होती है। एक व्यक्ति दूसरे की भावनाओं को जगाता है। इसका तात्पर्य है कि एक प्रकार की भावनाएँ अन्य प्रकार की भावनाओं में परिवर्तित होती रहती हैं, और प्रत्येक परिवर्तन दूसरे व्यक्ति की भावनाओं के बदलाव का कारण बनता है। इस परिवर्तन की शैक्षणिक प्रक्रिया की समझ ही व्यवहार प्रक्रिया की समझ है। इस परिभाषा के अनुसार व्यवहार

प्रक्रिया गतिशील है, स्थिर नहीं है। भावनाएँ बदलती रहती हैं क्योंकि भावनाएँ एक ही अवस्था में लम्बे समय तक नहीं रह सकतीं, अतः बदलाव भावनाओं का आंतरिक स्वभाव ही लगता है। इस प्रक्रिया में, व्यक्ति, भावनाओं के लगातार परिवर्तन के कारण, लगातार मानसिक या अन्य कार्यों में लगा रहता है - यह खत्म ना होने वाले कारण और प्रभाव का चक्र है।

1.2 व्यवहार में बदलाव किस प्रकार भावनाओं में बदलाव से संबंधित है :-

व्यवहार परिवर्तन में एक ही भावना का भिन्न प्रकार से प्रसंस्करण (processing) समाहित है। इसके पीछे की धारणा यह है कि बाहरी व्यवहार, अन्दर महसूस होने वाली भावना की ही अभिव्यक्ति है। एक उदाहरण के द्वारा इसे, इस प्रकार से समझ सकते हैं :- जैसे - समूह में मेरे मज़ाकिया तरीके से बैठने पर हुई नकारात्मक टिप्पणी मुझे कष्ट देती है। फलस्वरूप मैं टिप्पणी करने वाले पर गुस्सा हो जाता हूँ। ध्यान दीजिये - मेरा कष्ट गुस्से में परिवर्तित हो गया। दूसरे तौर पर यदि मैं अपने कष्ट की ज़िम्मेदारी स्वयं पर लेता, तो मुझे कुछ अलग करने की प्रेरणा मिलती। उपरोक्त उदाहरण में निम्न महत्वपूर्ण मुद्दे ध्यान देने योग्य हैं।



व्यवहार में बदलाव के लिये सभी चरण महत्वपूर्ण हैं, परन्तु स्वयं के व्यवहार के परिणाम की ज़िम्मेदारी लेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

2 स्वयं के जीवन में व्यवहार बदलाव का महत्व

T ग्रुप कार्य विधि सदस्यों को सत्र में लगातार प्रतिक्रिया जानने का अवसर प्रदान करती है। जैसे कि जो कुछ भी कहा गया, एवं जिस प्रकार कहा गया, वो आराम **अथवा** परेशानी की भावना को उत्प्रेरित करता है। जब भावना अरुचिकर होती है, तो सहजवृत्ति उससे दूर जाने की होती है। हज़ारों सालों से व्यक्ति ऐसी भावनाओं को अनुभव कर रहे हैं, और उनसे भाग जाने में विशेषज्ञ हो गये हैं। ऐसा लगता है कि यह व्यक्तियों के DNA का ही भाग हो गया है।

पृथ्वी पर आने के बाद से ही लोगों की इस बेचैनी / दर्द से पलायन की क्या क्रिया विधि अपनाई जाती है ?

- आम तौर से दो तरीकों से दो स्तरों पर लोग स्वयं को अरुचिकर भावनाओं से छुटकारा (पलायन) दिलाते हैं। सर्वाधिक इस्तेमाल होने वाली क्रिया विधि में तुरन्त बाद की स्थिति सुविधाजनक (आरामदेह) परन्तु बाद के स्तरों में बहुत दुःखदाई होती है। दूसरे तरीके की क्रिया विधि में उल्टी प्रक्रिया होती है, तुरन्त बाद की स्थिति असुविधाजनक परन्तु बाद की स्थितियाँ आनन्द देने वाली होती हैं।
- पहली विधि जो कि ज़मीनी हक्रीकत बदले बिना पलायन में सहायक होती है, और बेचैनी से छुटकारा दिलाती है, पारीभाषिक / तकनीकी रूप से रक्षात्मक प्रतिक्रिया (defence mechanism) कहलाती है। यह ego की रणनीति के रूप में भी परिभाषित की जाती है जो कि चिन्ता (घबराहट) (anxiety) से बचने के लिये प्रयोग की जाती है। रक्षात्मक प्रक्रिया बचाव हेतु वो विचार है जो कि चेतन मस्तिष्क के लिये मुश्किल भावनाओं और विचारों का सामना करने में सहायक होते हैं (psychology glossary)। इस तरीके में रक्षात्मक प्रक्रिया का प्रयोग करके दुःखदाई भावनाओं से, बिना ज़मीनी हक्रीकत (उत्तरदायी भावनाओं) बदले छुटकारा मिल जाता है। यह अचेतन मन द्वारा संचालित प्रक्रियायें हैं। इनसे समूह के अन्य सदस्य अवगत हो भी सकते हैं और नहीं भी।

रक्षात्मक प्रक्रियायें बहुत प्रकार की होती हैं। जैसे :- सामान्यीकरण (generalisation), युक्तीकरण (rationalisation), नकारना (denial), टालना (postponement), दबाना, दमन करना (suppression), आक्रामक होना (aggression), रक्षात्मक हास्य (defensive humour), त्वरित स्वीकृति (quick acceptance), reaction formation, प्रक्षेपण (projection), विस्थापन (displacement), बौद्धिकीकरण (intellectualisation), प्रतिपगमन (वापसी, regression), ऊर्ध्वपातक (उच्च बनाने की क्रिया, sublimation), चयनात्मक धारण (selective perception), वापसी (withdrawal), समूह में जोड़े बनाना, भागना (flight), और निर्भरता (dependence) (भावनाओं की सूची से, CNVC)।

प्रदीप का कष्ट चक्र (cycle of suffering)

रक्षात्मक प्रक्रिया अस्थाई आराम देती है, परन्तु वास्तव में व्यक्ति को कष्ट चक्र में फँसा देती है। (मेरी अपनी खोज व्यवहार विज्ञान के क्षेत्र में)। यहाँ पर ही व्यक्ति फँस जाता है, जबकि वह दुःखदाई भावनाओं से पीछा छुड़ाने के लिये रक्षात्मक प्रक्रिया का प्रयोग करता है, बिना ज़मीनी हक्रीकत बदले हुये, जो कि इस व्यवहार की उत्प्रेरक है।

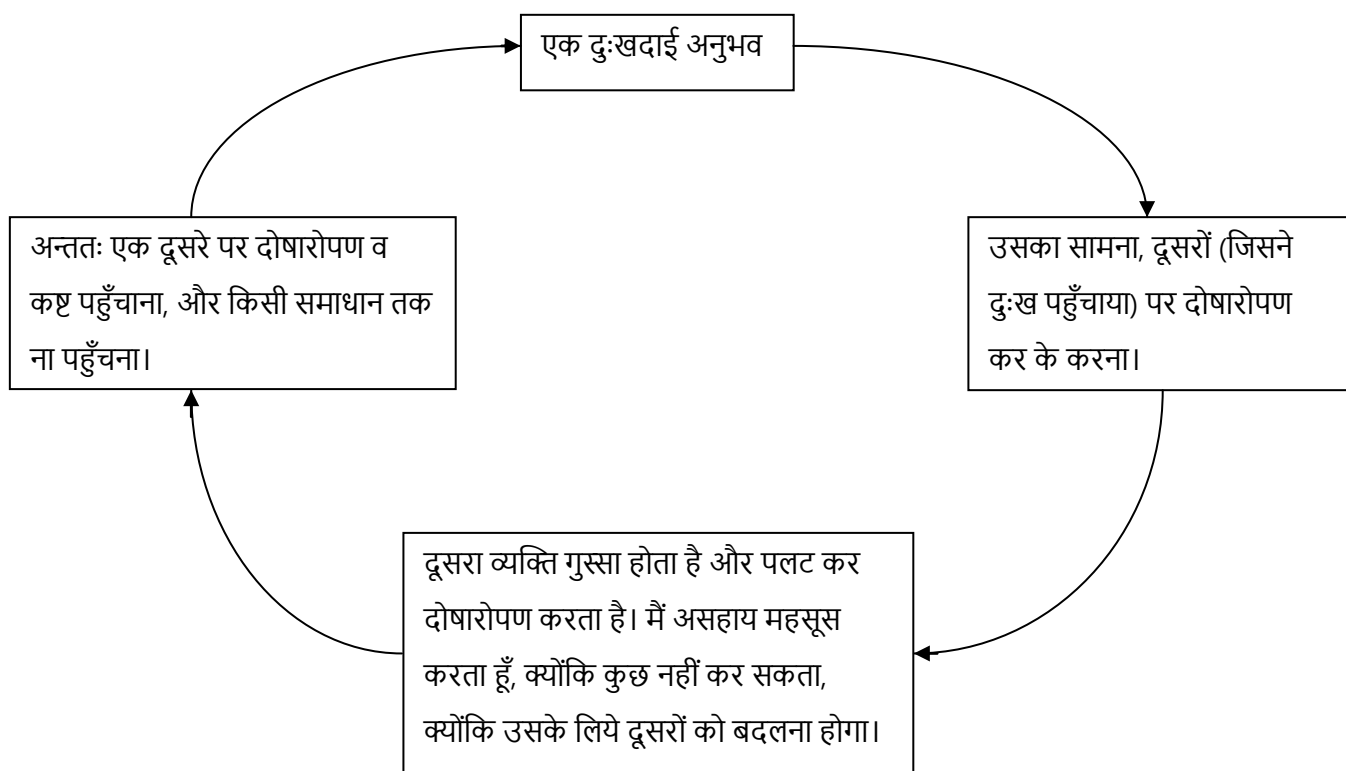
यह प्रक्रिया इस प्रकार से समझी जा सकती है :-

व्यक्ति का समूह में दूसरों से कुछ सुनने के फलस्वरूप दुःखदाई भावनाओं को अनुभव करना।

- तुरन्त रक्षात्मक प्रक्रिया का कष्ट से बचने हेतु अचेतन इस्तेमाल करना और अपनी मनःस्वास्थ्य की पुनर्स्थापना।
- व्यक्ति ने उस उत्प्रेरक को बदलने का कोई प्रयास नहीं किया, जो कि दुःखदाई भावना से संबंधित व्यवहार के लिये जिम्मेदार था। मानना यह था कि वो स्थिति अथवा दूसरे लोग इस व्यवहार के लिये जिम्मेदार हैं।
- पुराने तरीके के व्यवहार को ही करते रहना, क्योंकि उसमें कोई बदलाव नहीं लाया गया, अतः दूसरों पर नकारात्मक असर जारी रहना। यह दुष्चक्र हमेशा जारी रहता है, जब तक बीच में तोड़ा ना जाये।

प्रदीप का कष्ट चक्र

XXX

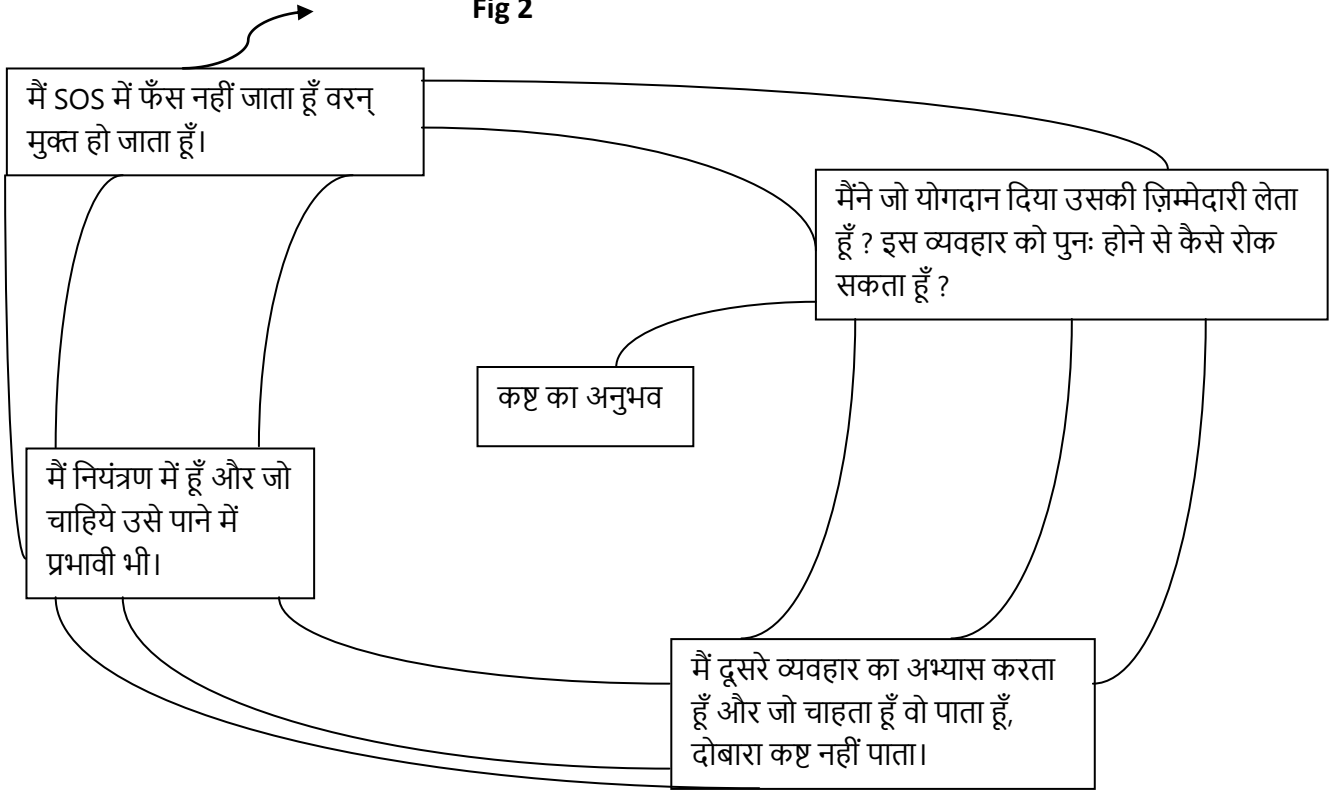


2.2 प्रदीप का मुक्ति सर्पिल (Spiral of liberation)

दूसरे प्रकार की प्रतिक्रिया तब घटित होती है जब दूसरे स्तर पर व्यक्ति कष्टप्रद भावनाओं से भागता नहीं, उनका सामना करता है। अपने दर्द का सामना करता है व अपने कार्य व्यवहार, जिसके कारण अमुक दर्द हुआ, की बिना किसी पर दोषारोपण किये जिम्मेदारी उठाता है। क्योंकि व्यक्ति उपरोक्त प्रतिफल (दर्द) दोबारा नहीं पाना चाहता। ऐसी स्थिति में दर्द स्वयं के व्यवहार को बदलने के लिये उत्प्रेरक ऊर्जा का काम करता है जिससे कि मनचाहा प्रतिफल पाया जा सके। यहाँ पर

रक्षात्मक प्रक्रिया का प्रयोग ना करके व्यक्ति दर्द जनित ऊर्जा का प्रयोग सीखने व स्वयं के विकास हेतु करता है। सौभाग्य से दिलचस्प बात यह है कि ऐसे में दर्द भी खत्म हो जाता है क्योंकि उसकी ऊर्जा सीखने हेतु उत्प्रेरक ऊर्जा में बदल जाती है। भावनाओं की जादुई किमियागिरी यह है कि उस क्षण जब व्यक्ति अपने दर्द की स्वयं ज़िम्मेदारी लेता है तभी से उसकी ऊर्जा विकास एवं सीखने में प्रयोग आने लगती है। ऐसे प्रतिक्रिया देने वाले के बेहतर रिश्ते की ओर कदम बढ़ाती है। यह दोनों पक्षों के लिये जीत वाली स्थिति होती है। यह प्रदीप के मुक्ति के सर्पिल के रूप में प्रस्तुत है। (SOS)

Fig 2



अपनी गलतियों के लिये बाहरी तत्वों, स्थितियों पर दोषारोपण हेतु इतना ताकत भर प्रलोभन क्यों होता है ? चाहे वो अधिकारी हो, माता पिता हों, बच्चा हो, कोई स्थिति हो या कुछ और ? लोग अपनी गलतियों के लिये दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, और विभिन्न कारणों से स्थिति पर नियंत्रण खो बैठते हैं। जिसमें डर भी सम्मिलित है। कुछ लोग ऐसा दूसरों को नियंत्रण में रखने, और उन्हें बुरा दिखाने और महसूस कराने के लिये करते हैं। वे यह भी नहीं स्वीकारना चाहते कि वो अपनी गलतियों के लिये ज़िम्मेदार हैं (Blaming others from www.ask.com)

लेकिन इससे जनित आराम बस थोड़े समय के लिये होता है, क्योंकि स्थितियों और औरों पर दोषारोपण से समस्या का हल नहीं होता है। दोषारोपण सिर्फ एक लोकप्रिय रणनीति है जो व्यक्ति को झूठे तौर पर सशक्त महसूस कराती है और उसे सक्रिय और व्यस्त रखती है, जैसे कि वह कुछ कर रहा हो। परन्तु सत्य यह है कि वह फँस गया है। क्योंकि दोषारोपण से ना तो दूसरे बदलेंगे, और ना स्थितियाँ ही बदलेंगी। इसका मतलब यह है कि वह तब तक परेशानी में रहेगा जब तक की स्थितियाँ और दूसरे लोग नहीं बदल जाते। ऐसे दोषारोपण को छोड़ने के लिये अपने अन्दर डर और बेबसी, शक्तिहीनता, जो कि ज़िम्मेदारी से भागने की बुनियाद हैं, के भाव को स्वीकार करना होगा।

दूसरा बिंदु यह है कि दूसरों को बदलना बहुत कठिन है क्योंकि वो हमारे नियंत्रण में नहीं हैं। लोग बुरा व्यवहार इसलिये नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें उनकी कमियों की जानकारी नहीं है, वरन् बुरा व्यवहार इसलिये करते हैं, क्योंकि वो एक विनाशकारी व्यवहार के ढाँचे में फँस गये हैं, और उससे निकलने में असमर्थ हैं (Brooks 2012)। लोगों को उनकी गलतियों को इस आशा में दिखाना कि मानसिक बदलाव, व्यवहार में बदलाव लायेगा, बेवकूफी है (Sparks D 2013)। लम्बे समय में दोषारोपण बहुत असुविधाजनक हो जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि अधिकतर लोग पूरी ज़िंदगी कष्ट में गुज़ारते हैं और स्वयं को शक्तिहीन बनाते हैं।

2.3 स्वभाव में फँसे रहना या ज़िम्मेदारी हेतु निमंत्रण ? :-

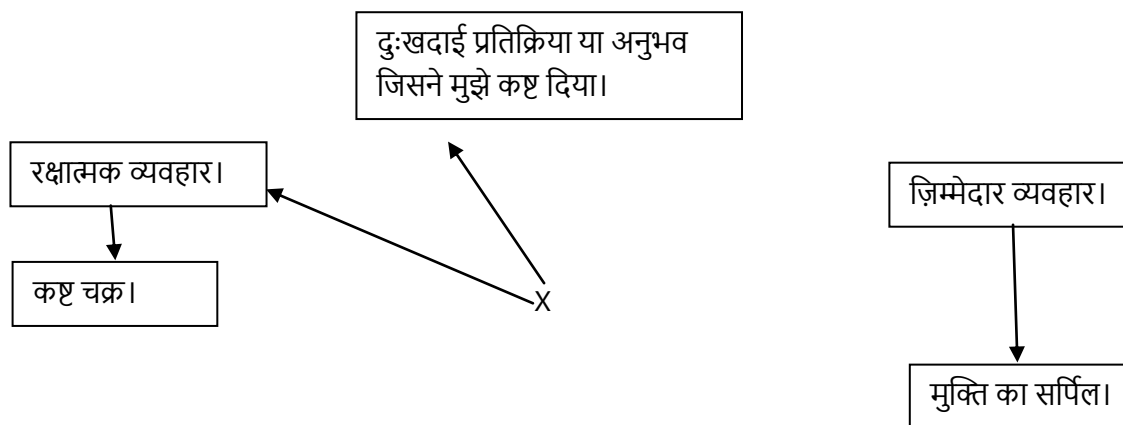
इस "कष्ट के चक्र"में, स्वभाव में फँसे रहना या ज़िम्मेदारी उठाना ?

एक तरफ तो रक्षात्मक प्रक्रिया की तरफ दौड़ जाना सुरक्षित और आसान है, दूसरी तरफ यदि ज़िम्मेदारी उठाते हैं तो कष्ट क्षणिक है और फिर लगातार आराम है। और सब की तरह इसमें भी आप चयन करने के लिये स्वतंत्र हैं।

स्वर्ग और नरक का नाजुक रास्ता उपरोक्त दोनों चक्र जोड़ देते हैं।

3.3.3

नाजुक बिंदु



चित्र में नाजुक बिन्दु X में दर्शाया गया है। ज़िम्मेदार व्यवहार या रक्षात्मक व्यवहार का निर्णय ही निर्धारित करेगा कि आप मुक्ति के सर्पिल की ओर बढ़ेंगे या कष्ट चक्र की ओर। X बिन्दु पर सही निर्णय की क्षमता और कौशल निर्धारित करेगा कि कौन व्यक्ति विकास की राह पर चलेगा और कौन गलतियों को जीवन भर बार बार करता रहेगा। यह कौशल सीखना व्यक्ति, समूह, परिवार, संस्था और देश को बदलने वाला अनुभव साबित हो सकता है।

3. मतभेद की लहर

T ग्रुप में होने वाली एक और दिलचस्प प्रक्रिया मतभेद की लहर है। जब समूह का एक सदस्य रक्षात्मक ढंग से व्यवहार कर रहा हो, रक्षात्मक व्यवहार वाला व्यक्ति एवं प्रतिक्रिया देने वाले व्यक्ति के मध्य अंतर्व्यक्तिक (interpersonal) प्रक्रिया एक खुले लूप की भाँति होती है, क्योंकि प्रतिक्रिया देने वाला महसूस करता है कि रक्षात्मक व्यवहार वाले व्यक्ति ने उसकी प्रतिक्रिया को ठीक प्रकार से नहीं समझा अतः प्रतिक्रिया देने वाला भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया बार बार देता रहता है और दूसरा रक्षात्मक प्रतिक्रिया का प्रयोग कर उससे अपना बचाव करता रहता है। समूह में अन्य सदस्य यह देख रहे होते हैं और कोई अन्य व्यक्ति प्रतिक्रिया देने के लिये प्रेरित हो जाता है और भिन्न प्रकार से उस तक बात पहुँचाने का प्रयास करता है। वह भी उसी प्रकार के खुले लूप को पाता है। फिर कोई और प्रयास करता है और फँसता है

समूह में जब यह प्रक्रिया चलती है, बहुत अधिक ऊर्जा जनित हो जाती है, लेकिन कोई राह नहीं मिलती। यह मतभेद की लहर कहलाती है, जो पहल करने वाले से अन्य सदस्यों तक फैलती है। यह समूहों में घटित होने वाली बहुत ही आम घटना है जो अंतर्व्यक्तिक टकराव (interpersonal conflict) को जन्म देती है। टकराव विभिन्न प्रकार का हो सकता है। मैंने इस घटना को "मतभेद की लहर" का नाम दिया है। जब कभी भी समूह इस मतभेद की लहर में फँसता है, यह निश्चित है कि प्रवक्ता रक्षात्मक mode में है।

4 केवल ज्ञान की समझ बदलाव नहीं लाती

लोग अपने व्यवहार के प्रभाव को केवल ज्ञान की समझ से नहीं बदलते हैं। वरन् उनके व्यवहार से जनित प्रभाव के सुख अथवा दर्द को अनुभव करने की आवश्यकता होती है। यह ही बदलने अथवा ना बदलने का चुनाव कराती है। इसका तात्पर्य है कि व्यवहार संबंधी प्रशिक्षण जो कि अनुभव ना कराता हो, व्यवहार में बदलाव के ठहराव को नहीं ला सकता है।

इससे यह भी स्पष्ट है कि क्यों T ग्रुप में "यहाँ और अभी" "here and now" और भावनाओं को छूना, अनुभव करना सहजकर्ता के केन्द्र में है। यह कौशल है ना कि सिर्फ ज्ञान की समझ। इस कौशल में भावनाओं को अनुभव करना, उन्हें नाम देना, और उन्हें एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित होने की समझ और उससे जनित व्यवहार में बदलाव की समझ सम्मिलित है। अतः प्रक्रिया प्रशिक्षक, मूल रूप से भावनाओं के बदलाव की प्रक्रिया के, और उससे जनित व्यवहार के बदलाव को सब स्तरों पर, स्वयं व दूसरों में अनुभव करने में सक्षम होता है। T ग्रुप प्रशिक्षक को और भी बहुत सारे कौशलों की आवश्यकता होती है।

T ग्रुप में व्यवहार बदलाव के बहुत सारे अवसर आते हैं जब कि कोई :-

- प्रतिक्रिया साक्षा करने पर अपने व्यवहार को देख सकता है।
- "यहाँ और अभी की स्थिति" में भावनाओं को अनुभव करना, नाम देना, और प्रक्रिया जानना (पुराने व नये प्रकार से)।
- अपनी भावनाओं और उससे जनित कार्य और व्यवहार को स्वीकारना और ज़िम्मेदारी लेना।
- हानि रहित परिस्थितियों में अपने नये व्यवहार का प्रयोग करना व उससे बदले हुये प्रभाव को स्वयं व दूसरों पर

देखना।

- समूह के सदस्यों द्वारा बदलाव को स्वीकारने पर आत्म विश्वास बढ़ाना।

5 कैसे समूह का वातावरण और समूह के सदस्यों का व्यवहार व्यक्ति में बदलाव की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

“किस प्रकार का समूह का वातावरण ज़िम्मेदारी लेने के लिये प्रेरित करता है ? या किस प्रकार का समूह का वातावरण व्यक्ति को उसके रक्षात्मक व्यवहार की तरफ उकेलता है ?”

विश्वास का वातावरण जहाँ व्यक्ति जैसा है, वैसा रह सके, यहाँ तक की बहुत गहरी vulnerabilities भी दर्शा सके, वहाँ व्यक्ति मुखौटा लगाने या बनने का प्रयास नहीं करता है। क्या इस प्रकार का वातावरण समूह में बनाना संभव है, जहाँ पर अजनबी 6 दिन अथवा 40 घंटे के लिये मिलते हैं ? मेरे अनुभव के अनुसार समूह बहुत सारे (ups – downs) उतार चढ़ाव से गुज़रता है और कम से कम एक सम्मिलित करना (inclusion), नियंत्रण और स्नेह के चक्र से तो गुज़रता ही है (Schultz 1958)। और यह उन्हें अपेक्षाकृत नम्र लोगों के सामने उनकी vulnerabilities को साक्षा करने में सक्षम करता है।

सम्मिलित करना, नियंत्रण करना, और स्नेह (inclusion, control, affection, IEA) को अनुभव करने का समय बाकी समूह व प्रति व्यक्ति में अलग अलग होता है, अथवा बदलता रहता है। यह प्रति सहजकर्ता भी अलग अलग होता है, जो कि उनके सहज करने के तरीके पर निर्भर करता है। समूह के विकास के दूसरे IEA के चक्र के दौरान, स्नेह वाली अवस्था में समूह के अधिकाधिक सदस्य बहुत कम रक्षात्मक हो जाते हैं और प्रतिक्रिया एवं व्यवहार में बदलाव के लिये तैयार हो जाते हैं।

मेरे अनुभव में यह प्रक्रिया सहजकर्ता विकास वाली प्रयोगशाला (Professional Development Programme PDP) में अधिक तेज़ होती है। जिसमें प्रथम IEA चक्र के बाद बहुत अधिक विश्वास का वातावरण बन जाता है, और उनके व्यवहार व अनुभव में आता परिवर्तन साफ़ दिखाई देता है।

समूह के सदस्यों की समूह में ऐसा वातावरण बनाने की ज़िम्मेदारी होती है, जिसमें की सदस्य कम से कम रक्षात्मक, और प्रतिक्रिया और स्वअभिव्यक्ति के प्रति अधिकाधिक उद्बुन हों। और इसके लिये समूह को गैर-आलोचनात्मक भाषा को सीखना होता है, तथा प्रतिक्रिया और स्वअभिव्यक्ति के लिये प्रेरित होना होता है।

OCTAPACE Openness (खुलापन), Collaboration (सहयोग), Trust (विश्वास), Authenticity (प्रमाणिकता), Pro-activity (समर्थक गतिविधि), Autonomy (स्वायत्तता, अधिकार), Confrontation (सामना करना), एवं Experimentation (प्रयोग) समूह में वातावरण बनाने में सहायक होता है।

यह अनिवार्य है कि जब समूह में ऐसा सुरक्षित वातावरण बनता है, तब व्यक्ति अपनी भावनाओं और व्यवहार को अब और यहाँ (here and now) में स्वीकार कर सकता है।

निष्कर्ष :-

मैं ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि T ग्रुप कार्य विधि, विशेषज्ञ प्रशिक्षकों के होने पर भागीदारों (participants) में बदलाव लाने व जीवन को भरपूर तरीके से जीने का उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती है।

3.5

टी-ग्रुप के जरिए बदलाव की प्रक्रिया

पॉल सिरोमॉनी

टी-ग्रुप में बिना आलोचना या मूल्यांकन के व्यवहार करने से एक ऐसा माहौल निर्मित होता है जो हर व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा खुलने में मदद करता है। इससे ग्रुप में एक-दूसरे के प्रति भरोसा बनता है। अपने व्यक्तित्व को सच्चाई से एक-दूसरे से साझा कर प्रतिभागी मानव स्वभाव में समानता का अनुभव कर पाते हैं। इससे भिन्नताओं का सामना करने और उनकी पड़ताल करने का, और साथ ही एक टीम की तरह काम करने का ज्यादा आत्मविश्वास भी बनता है।

अंतःवैयक्तिक स्तर अपने लिए दूसरों के सरोकार महसूस करते हैं जिसके परिणामस्वरूप पहले के एकाकीपन की बजाय किसी ग्रुप या समुदाय से जुड़े होने का अहसास होता है।

मैं यहां *बेसिक लैब ऑन ह्यूमन प्रोसेस* के अंत में मिले एक लिखित फ्रीडबैक का अंश उद्धृत करूंगा। एक व्यक्ति ने लिखा, “इस लैब ने मुझे अपनी गहरी पड़ताल करने का अवसर दिया जिससे मेरे व्यक्तित्व के अच्छे और बुरे दोनों ही तरह के छिपे हुए पहलू सामने आये और अंत में मुझे अपने और औरों के सौन्दर्य को देखने में मदद मिली। मैंने भावनाओं का सामना करने और मनोभावों के साथ प्रवाहित होने की शक्ति को पाया और महसूस किया।” एक दूसरे व्यक्ति ने लिखा, “वह एक मूल्यवान और समृद्ध करने वाला अनुभव था। मेरे शब्द अब सिर्फ कोरे शब्द नहीं हैं बल्कि वे मेरे हृदय और मेरी भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं। मैंने चीजों को देखने का बिल्कुल नया नज़रिया सीखा।”

टी-ग्रुप के मेरे शुरुआती अनुभव

किसी टी-ग्रुप में भाग लेने का मेरा पहला अनुभव 1965 में हैदराबाद में *स्मॉल इंडस्ट्री एक्सटेंशन ट्रेनिंग (SIET) इन्स्टीट्यूट* में दो हफ्ते के एक लैब का था जिसमें एक सह-अनुदेशक (co-facilitator) के साथ रॉल्फ़ लिन्टन अनुदेशक की भूमिका में थे। मैं 1966 में पढ़ाई के लिए अमेरिका चला गया। बाकी विषयों के अलावा, मैंने न्यू यॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में एक सेमेस्टर में “सामाजिक परिवर्तन का सामाजिक मनोविज्ञान” के एक कोर्स में हिस्सा लिया जिसमें टी-ग्रुप अधिगम भी शामिल था। कोर्स के खत्म होने पर न्यू जर्सी के एक कॉलेज में जाने के लिए अनुदेशकों की एक टीम चुनी गई। फ़ैकल्टी के एक या दो दूसरे सदस्यों के साथ-साथ मुझे भी विद्यार्थियों के एक समूह के अनुदेशक के तौर पर चुना गया। बाद में 1967 के मध्य में मेरा बेथेल, मेन जाना हुआ जहां मैंने ‘कन्सलटेशन स्किल’ पर दो हफ्ते के लैब में हिस्सा लिया। इसमें एक सह-अनुदेशक के साथ रॉबर्ट टानेनबॉम अनुदेशक की भूमिका में थे।

1967 के दूसरे हिस्से में ही भारत लौटने के बाद मैने कॉरपोरेट, सेवा और एन.जी.ओ. क्षेत्रों के लिए टी-ग्रुप आयोजित करना शुरू किया। 1971 में फ्रांसिस मेन्जेस से मुझे पुणे स्थित 'टाटा मैनेजमेंट ट्रेनिंग सेंटर' आने का न्यौता मिला जहां प्रतिभागियों के साथ बातचीत के बाद *इंडियन सोसाइटी फॉर एप्लाइड बिहेवरल साइंस* का गठन करने का निर्णय लिया गया। 1972 में सोसाइटी को औपचारिक तौर पर रजिस्टर कर लिया गया।

शुरुआती वर्षों में, चूंकि टी-ग्रुप की अवधारणा भारत में बिल्कुल नई थी, अपने पेशेवर साथी सदस्यों की तरह मुझे भी केवल कॉरपोरेट क्षेत्र से नहीं बल्कि सेवा और एन.जी.ओ. क्षेत्र में भी बतौर अनुदेशक आमंत्रित किया गया। इस तरह मैं अलग-अलग समूहों जैसे कि 'प्रीस्ट्स ऑफ़ दी ऑर्डर ऑफ़ दी होली क्रॉस', 'रेडेन्टोरिस्ट', और 'मेडिकल मिशन सिस्टर्स' की ननों के बीच अनुदेशक के रूप में जुड़ा। हाल के समय में मैने कोलकाता के 'बिशप कॉलेज' में अध्यापकों के एक समूह के साथ भी बतौर अनुदेशक काम किया।

जब इंग्लैंड में बर्मिंघम स्थित 'सेली ओक कॉलेज' में मुझे अंतरराष्ट्रीय विकास अध्ययन के एक कोर्स में विज़िटिंग फैकल्टी के रूप में आमंत्रित किया गया तो उस दौरान मुझे एक अनूठा अनुभव हुआ। इसमें अफ्रीका, एशिया, यूरोप, अमेरिका और पैसिफ़िक द्वीप समूह समेत लगभग पूरी दुनिया से प्रतिभागी शामिल थे। यहां टी-ग्रुप को एक वैकल्पिक (optional) विषय के रूप में रखा गया और दो सप्ताहांतो में चार दिनों के लिए इसका आयोजन किया गया।

मैं 1970 के दशक में एक बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी में किए गए हस्तक्षेप का अनूठा अनुभव भी यहां बताना चाहूंगा। हमारे वहां पहुंचने के समय कंपनी में कई यूनिट थे, जैसे कि खनन यूनिट, ब्रिकेटिंग फैक्टरी, थर्मल विद्युत स्टेशन, और खाद यूनिट। कंपनी में तीस हजार से ज्यादा लोग कार्यरत थे। अलग-अलग यूनिट, कार्य क्षेत्र और राजनीतिक रुझानों (CITU, AITUC, INTUC और DMK आदि) पर आधारित पचास से भी ज्यादा यूनियन मौजूद थीं। मैने और एलेन बैचेलर ने बैंगलोर की इंडस्ट्रियल टीम सर्विस बतौर काम शुरू किया।

हमारे कार्य में चार टी-ग्रुप शामिल थे – वरिष्ठ मैनेजर्स के लिए (10 से 12 सदस्य), इसी तरह का ग्रुप मध्यम दर्जे के मैनेजर्स के लिए, और ऐसा ही मुख्य यूनियनों के नेताओं के लिए (जो 5-6 दिनों के थोड़े लंबे अंतराल के लिए बैंगलोर में आयोजित किया गया)। टी-ग्रुप के बाद यूनियन के नेता बड़े उत्साहित थे और उन्होंने एलेन और मुझे कप भेंट किया (जो अब भी मेरे पास है) और उस मौके के लिए कविता भी लिखी। उन्होंने प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया और दूसरी समाचार एजेंसियों को पत्र लिख कर "मिलकर काम करने" के अपने फैसले के बारे में बताया (हमें बाद में पता चला कि इसके कारण यूनियन के दूसरे साथियों के साथ बाद में समस्याएं खड़ी हो गईं)। इसके बाद मैनेजमेंट और यूनियन के प्रतिनिधियों के साथ हमने देढ़ दिन का संयुक्त सत्र आयोजित किया जिसमें 'अनुशासन' की समस्या को हल करने का निर्णय लिया गया। असल में पिछली कई समस्याओं का संबंध अनुशासनहीनता और ओवरटाइम से ही था।

बाद में हमने 5 दिन के टी-ग्रुप का आयोजन किया जिसमें एक ही यूनिट से लिए गए डाइरेक्टर, दूसरे प्रबंधकीय व सुपरवाइज़री स्टाफ़, मजदूर और यूनियन प्रतिनिधियों का मिश्रित समूह शामिल था। मुझे याद है इसके अंत में एक मजदूर/यूनियन के सदस्य ने कहा कि उसे लगा था कि यहां सर्कस की तरह शेरों और बाघों के बीच युद्ध जैसा माहौल होगा लेकिन इसके उलट “हम लोग इंसानों की तरह इत्मीनान से बातचीत कर रहे थे और एक दूसरे को समझ रहे थे”।

प्रो. पी. के. मेहता, जिन्हें सरकार ने कंपनी में बदलाव की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए बुलाया था, ने कहा, “वो 1972 के दिसंबर की बात है। भारत सरकार के उद्योग मंत्रालय ने मेरे संस्थान *नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडस्ट्रियल इंजीनियरिंग* को संपर्क किया और किसी ऐसे वरिष्ठ प्रोफेसर को नामांकित करने को कहा जिसने TISS (टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज़) से सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल की हो, और साथ में उद्योग में काम का व ट्रेड यूनियनों का भी अनुभव हो। परिणामस्वरूप मेरा नाम आगे कर दिया गया। मैं मंत्रालय पहुंचा और वहां उद्योग मंत्री श्री मोहन कुमारमंगलम से बातचीत की ताकि पूरे मामले को समझ सकूं और ये भी जान सकूं कि वे वाकई में इसके प्रति गंभीर थे या केवल खानापूती के लिए कार्यक्रम करना था।”

इसके बाद जनवरी में मैं जांच-पड़ताल करने कंपनी में गया ताकि वहां की संगठनात्मक स्थिति, लोगों की तैयारी और पहले आयोजित लैब के प्रभाव को समझ सकूं। उसी दौरान ‘इंडस्ट्रियल टीम सर्विस’ द्वारा किए गए काम के बारे में मिला फ़ीडबैक मेरे हाथ लगा। ‘समस्या पर केन्द्रित’ अपना काम शुरू करने के पहले मैनेजमेंट और यूनियनों के साथ किए गए लैब के परिणामों का अवलोकन किया। मैने पेशेवर टी-ग्रुप अनुदेशक का प्रशिक्षण नहीं लिया था मगर अमेरिका में मैसेचुएट्स के ‘स्लोअन स्कूल’ द्वारा संचालित छः महीने के उच्च स्तरीय कार्यक्रम में मैने हिस्सा लिया था जिसके अंतर्गत 15 दिनों का एक सघन लैब आयोजित किया गया था जिसके अनुदेशक प्रो. मैकग्रेगर थे।

पहले किए गए हस्तक्षेप के बारे में राय थी कि उनमें “वे / हम” का विभाजन नहीं पाया गया था। विभिन्न यूनियनों के बीच सामान्यतः पाया जाने वाला आपसी विरोध और साथ ही मैनेजमेंट व यूनियन के बीच के टकराव भी वहां नहीं दिखे।

यूनियन सभी तथ्यों को समझने और ये सुनने को भी तैयार थे कि किस तरह पुरानी व्यवस्था पूरे उद्योग और साथ-साथ उनके लिए भी नुकसानदायक थी। मेरी नजर में इन दो बातों के कारण मुझे और नेवली लिग्नाइट कॉरपोरेशन दोनों को सभी स्तरों पर एक व्यवस्था बनाने में और यूनियनों व मैनेजमेंट की प्रतिबद्धता निश्चित करने में मदद मिली। ओवरटाइम, जो एक दिन में दस हजार रुपए तक पहुंच गया था, से जुड़ी ढांचागत समस्याओं को सुलझाने की और तथ्यों को समझने और ऐसी नई व्यवस्था बनाने की, जो यूनियन व मैनेजमेंट दोनों को मंजूर हो, राजनीतिक रूप से सही इच्छाशक्ति बनी।”

1970 के दशक के मध्य में मेरे साथी और मैंने एक मैराथन टी-ग्रुप का प्रयोग किया जो सुबह शुरू होकर रात भर चल कर अगले दिन दोपहर के खाने के समय तक जारी रहता था। प्रतिभागियों को अपनी मर्जी से आने-जाने की आज़ादी थी। खाने-पीने और चाय-पानी की व्यवस्था कमरे के बाहर थी। मुझे याद है कि रात के समय कुछ लोग थोड़े-थोड़े देर के लिए सो गए लेकिन जो जगे हुए थे उनके बीच बातचीत जारी रही। लैब खत्म होने पर एक युवा विदेशी छात्र ने कहा हालांकि उसके और बाकी लोगों के बीच नस्ल, रंग और संस्कृति का भेद था और इसके बारे में वो बहुत संकुचित था पर उसे ये समझ आया कि मूलतः हम सब इंसान हैं।

70 के दशक के अंतिम तीन या चार वर्षों में मैं अंतर्वैयक्तिक या समूह-प्रक्रिया अनुदेशन के काम से दूर रहा और इस कारण ISABS के किसी कार्यक्रम में हिस्सा नहीं लिया। 1974 तक मुझमें व्यापक वातावरण के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन की वृहत सामाजिक गतिकी जिसके चलते बड़ी संख्या में लोगों का शोषण होता था के बारे में गहरी समझ बन चुकी थी। इस नजरिए से ऐसा लगता था कि अंतर्वैयक्तिक, अंतःवैयक्तिक और समूह-प्रक्रियाओं के अनुदेशन पर ध्यान देना या उनमें फंसे रहना जीवन के ज्यादा जरूरी और मूलभूत मुद्दों से मुंह चुराना है। वो ऐसा था जैसे रोम जल रहा हो और नीरो मजे में बांसुरी बजा रहा हो! लेकिन बाद में मुझे समझ आया कि मानव संबंधों की जो सूक्ष्म प्रक्रियाएं हैं उनके प्रति संवेदनशीलता रखने का ये मतलब नहीं है कि वृहत प्रक्रियाओं को छिपाया जा रहा है, उनसे बचा जा रहा है, उन्हें अनदेखा किया जा रहा है या कमतर आंका जा रहा है। बल्कि दोनों ही जरूरी हैं और उनका अपना-अपना महत्व है। मुझे यकीन है कि इस तरह की जागरुकता के कारण ही ISABS ने सामुदायिक बदलाव के लिए लैब करने की और सामाजिक विकास धारा को शुरू करने की पहल ली और सांप्रदायिक मुद्दों, *एक्स्टेंशन मोटिवेशन* और हाल ही में 'कम्यूनिटी प्रोसेस फैसिलिटेशन प्रोग्राम' के अनुभव-आधारित कार्यक्रम भी शुरू किए।

3.6

मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति और सामाजिक सशक्तिकरण

जिमी डाभी

बहुत सारे संस्थान, जिनमें बिना लाभ के काम करने वाले (not-for-profit) संस्थान भी शामिल हैं, मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला (ह्यूमन प्रोसेस लैबोरेटरी) प्रशिक्षण से परिचित नहीं हैं। इस आलेख में यह मत रखा गया है कि इसका प्रयोग सामुदायिक विकास और लोगों के सशक्तिकरण के लिए किया जा सकता है। इसमें प्रयोगशाला के शिक्षा पद्धति, आयामों और मूलभूत सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है और साथ ही सामाजिक सशक्तिकरण में इसके प्रभावी उपयोग की चर्चा भी की गई है।

प्रयोगशाला पद्धति – सामाजिक सरोकार में इसकी ऐतिहासिक जड़ें

सामाजिक सशक्तिकरण के लिए प्रयोगशाला प्रशिक्षण पद्धति, जिसे टी-ग्रुप और हाल में डी-ग्रुप (डेवलपमेंट या विकास ग्रुप) [लिंगम व अन्य, 2005] भी कहा गया है, का प्रयोग कोई नई परिघटना नहीं है। इसकी जड़ें सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुई हैं।

यह बताया जाता है कि कार्ल रोजर ने टी-ग्रुप को बीसवीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक आविष्कार कहा है (विकीपीडिया)। सामाजिक मुद्दों से गहरे जुड़े कर्ट ल्यूविन (स्मिथ, 2001) ने यहूदी विरोध से लड़ने, जर्मनी की संस्थाओं के लोकतांत्रिकरण का समर्थन करने और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया था (मैरो, 1969)।

अनुभव – प्रयोगशाला और समुदाय में सीखने का आधार

“यहां अभी (here-and-now) क्या हो रहा है?” और “मैं अभी क्या महसूस कर रहा हूं?” ये महत्वपूर्ण सवाल समूह में, प्रयोगशाला में या दूसरी जगहों पर मैं अपनेआप से पूछता हूं। इतने सालों में मुझे समझ में आया है कि सीखने में अपने और दूसरों के तात्कालिक अनुभव (here-and-now experience) बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

- अनिश्चित पद्धति और सीखने के कार्यक्रम के कारण टी-ग्रुप में तात्कालिकता (here-and-now) पर जोर दिया जाता है जो प्रतिभागी को सीखने के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाता है।
- दूसरे समूह आधारित कार्यक्रमों की तुलना में लैब में सदस्यों को सक्रिय भागीदारी करने के लिए उत्प्रेरित किया जाता है।
- दूसरी पद्धतियों की तुलना में टी-ग्रुप व्यक्ति की भूमिका और उसके व्यक्तिगत गुणों में ज्यादा साम्यता लाता है जिससे किसी भी भूमिका के पीछे छिपने की संभावना कम हो जाती है (वॉरेन बेनिस, 1964)। इस प्रकार लैब की पद्धति समूह और समुदाय दोनों के बीच प्रयोग करने और सीखने के मौके देती है।

कोल्ब (1984) सीखने के चार तरीकों को रेखांकित करते हैं:

- मूर्त अनुभूति (Concrete Experience)
- चिंतनशील अवलोकन (Reflective Observation)
- अमूर्त अवधारणा निर्माण (Abstract Conceptualisation)
- अवधारणा निर्माण से उपजी परख के आधार पर सक्रिय प्रयोग (Active Experimentation)

इससे पता चलता है कि जब कोई व्यक्ति इस चक्र में अनुभव, अवलोकन, विचार और क्रियाकलाप के चरणों से गुजरता है तो उसके सीखने की प्रक्रिया ज्यादा प्रभावशाली और सर्वांगीण होती है।

ISABS के संदर्भ में मैंने देखा है कि कुछ अनुदेशक (facilitator) लंबी व्याख्याओं का सहारा लेते हैं। इस तरह के लंबे हस्तक्षेप प्रतिभागियों में सीखने की प्रक्रिया को बाधित करते हैं क्योंकि इससे उन्हें ग्रुप में मौजूद भ्रम और अव्यवस्था से जूझने का मौका नहीं मिलता। ये बात सामुदायिक विकास प्रक्रियाओं पर भी उतनी ही लागू होती है। जो बात मैं सहयोग, टकराव, शक्ति और विकास पर आधारित कार्यशालाओं व संगोष्ठियों में भी नहीं समझ पाता उसे प्रतिभागी सामुदायिक अंतःक्रिया के दौरान उभरी समस्याओं को हल करने की कोशिश में बड़ी आसानी से समझ लेते हैं।

जब अवधारणा निर्माण किसी समूह में अनुभव किए गए मनोभावों और वास्तविक परिस्थितियों के चिंतन पर आधारित नहीं होता है तब प्रयोग प्रभावित होता है। मेरा अनुभव है कि सीखने की प्रक्रिया बाधित होने से सीखी हुई बात आत्मसात नहीं हो पाती और ग्रुप या समुदाय में बदलाव भी नहीं होते हैं।

व्यक्तिगत और सामाजिक सशक्तिकरण

शक्ति की अवधारणा बड़ी अनिश्चित है और उसे परिभाषित कर पाना भी मुश्किल है (फ़िन्शम व रोहडस, 1992)। इसके बावजूद संगठनों के समाजशास्त्र और सांगठनिक व्यवहार के विद्यार्थियों के लिए ये महत्वपूर्ण विषय रहा है। शक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

- किसी कार्य को करने की क्षमता
- शरीर या मस्तिष्क का गुण (हॉर्नबाई व अन्य, 1963)
- लोगों को प्रभावित करने की क्षमता (बुखानन व ह्यूकिज़न्स्की, 1985)
- किसी खास तरह से काम करने (वेबर, 1970) और परिवर्तन लाने की क्षमता।

इसके बावजूद “शक्ति का संबंध लोगों के रचनात्मक कार्यों और संगठनात्मक परिवर्तन की संभावनाओं से है” (फ़िन्शम व रोहडस, 1992: 424)।

ISABS का अनुभव बताता है कि प्रतिभागी अक्सर साहस, आत्मविश्वास, चिंता, बहिष्करण, संशय और आत्म-सम्मान के मनोभावों का कम या अधिक मात्रा में प्रदर्शन करते हैं। अलग-अलग लोगों के अनुभवों से पता चलता है कि व्यक्तिगत सशक्तिकरण भीतरी शक्ति के अनुभव से उत्पन्न होता है। व्यक्तिगत शक्ति को परिभाषित करते हुए हेरेडेरो कहते हैं कि ये “पूरी तरह अपने जैसा बने रहने की क्षमता है” (1983:20)। मेरा आत्म-बोध, सुरक्षा का भाव, प्रमाणिकता की गहराई और सामंजस्य, ‘शक्ति’ के वे स्रोत हैं जिससे मैं दूसरे व्यक्तियों और परिस्थितियों को प्रभावित कर पाता हूँ (डाभी, 1999)।

इसी प्रकार, ‘सामुदायिक सशक्तिकरण’ वो प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति और समुदाय अपने जीवन पर और अपने जीवन को प्रभावित करने वाले ‘निर्णयों’ पर अपना नियंत्रण या प्रभाव बढ़ाते हैं (मेन्टजेस, 1997)। उत्तरी गुजरात में खंभात की खाड़ी के किनारे के जिलों में विभिन्न समुदायों के बीच काम करते हुए मैंने देखा है कि गरीबी और सामाजिक भेदभाव ‘असुरक्षा’ पैदा करते हैं और ‘समुदाय की आत्म-छवि’ और आत्म-बोध को विकृत कर देते हैं (डाभी, 1999)। हममें से अनेक लोगों ने अवसरों की उपलब्धता, शक्ति संबंधों, सेवाओं के लाभ व उन तक पहुंच के मामलों में लिंग, जन्म, जाति, वर्ग, धर्म आदि के कारण भेदभाव का अनुभव किया है (डी‘मेलो, 2006; डाभी, 2009, 2014)।

निर्भरता और विद्रोह की बजाय बढ़ी हुई परस्पर-निर्भरता को किसी समूह, संगठन व समुदाय के सशक्तिकरण का लक्षण माना जा सकता है (कारखफ़, 1989)। मुझमें और औरों में मुझे इस सशक्तिकरण से ज्यादा मानवीयता और न्यायपूर्णता का अहसास हुआ है।

मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति और सामाजिक सशक्तिकरण

अपने हाल के कम्युनिटी प्रोसेस फ़ैसिलिटेशन प्रोग्राम (Community Process Facilitation Programme – CFPF) के अनुभव के आधार पर मैं ये पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आत्म-परीक्षण, आलोचनात्मक चिंतन, मानवीयकरण, शक्ति संघर्ष और सामूहिकता (teamwork) सामाजिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया का हिस्सा भी हैं और उसका परिणाम भी। ISABS से जुड़े व्यक्ति मेरे इस मत का समर्थन करेंगे कि हम अंतः-अंतर, नेतृत्व, शक्ति संतुलन के बदलावों, संवाद, टकराव, निर्णय प्रक्रिया और दुष्क्रियाशीलताओं (dysfunctionalities) के सामूहिक अवलोकन से और प्रभावी सामूहिक प्रदर्शन के विकास में व्यक्तियों और समूहों का अनुदेशन करते हैं। हमारे अनुदेशन से लोगों को ये समझने में मदद मिली है कि कोई ग्रुप तब अस्तित्व में आता है जब उसमें शामिल लोग ये मानते हैं कि उनकी नियति पूरे ग्रुप की नियति से जुड़ी हुई है (ब्राउन, 1988)।

अनेक सिविल सोसाइटी संगठनों ने मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला (HPL) पद्धति को जाने बिना ही अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रक्रिया पर जोर दिया है। इनमें से कई स्वैच्छिक संगठन भारत में पंचायती राज संस्थाओं को ज्यादा प्रभावी बनाने और लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए काम कर रहे हैं। मैंने अनुभव किया कि अहमदाबाद के

ह्यूमन रिसोर्स डेवेलपमेंट एंड रिसर्च सेंटर और CFPF में विद्यार्थियों के लिए मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति का प्रयोग करते समय जाति, वर्ग और धार्मिक-सांस्कृतिक टकराव और पूर्वाग्रह सामने आए और उनमें से कुछ मुद्दों को हल करने में मदद भी मिली।

शोध और सिद्धांत के आधार पर स्थित मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला और सामाजिक सशक्तिकरण

मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला सिद्धांत और पद्धति क्रियात्मक शोध से निकली है। मानव विकास, अधिकार और सामाजिक समावेशन के स्थापित सिद्धांतों पर आधारित सामाजिक सशक्तिकरण को मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति से बहुत लाभ पहुंचा है। विद्यार्थियों, समुदायों और एन.जी.ओ. कार्यकर्ताओं के मेरे अनुभव ने मानव प्रक्रियाओं के विश्लेषण में भी योगदान दिया है (डाभी, 1999; 2011)।

अनेक लोगों के साथ अनुदेशन करते हुए मुझे पता चला है कि ग्रुप और समुदाय में हमारे अनुदेशन का झुकाव, उसकी 'मान्यताएं' और 'हस्तक्षेप' 'शोध' और सिद्धांतों पर आधारित होता है। ISABS में हम पाते हैं कि कुछ अनुदेशक व्यक्तियों से जुड़ी प्रक्रियाओं और मुद्दों पर ध्यान देते हैं जबकि कुछ ग्रुप पर। संभव है कि विकासवादी विमर्श व्यक्ति में 'सुधार' पर ध्यान दे जो कि पूंजीवाद के भावना के अनुकूल है (व्यक्तिगत उद्यम); ग्रुप पर ज्यादा ध्यान देना साम्यवादी मॉडल को दर्शा सकता है; और दोनों का मिश्रण, जिसमें व्यक्ति और ग्रुप दोनों पर समेकित ध्यान दिया जाता है, समाजवादी मॉडल को दर्शाता है (डाभी व सरकार, 2011)।

टी-ग्रुप में अनुदेशन और सामाजिक सशक्तिकरण विकास के मॉडलों, विकास, मानव व्यवहार और समाज संबंधी मान्यताओं से परस्पर प्रभावित होते हैं। CFPF, जिसका मैं हिस्सा था, में शामिल अवधारणाएं और इनपुट सत्र इसी सिद्धांत पर आधारित हैं।

सशक्तिकरण की प्रक्रिया में अनुदेशक

मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति में अनुदेशकों की भूमिका प्रतिभागियों को इस प्रक्रिया में भाग लेने, उसका अर्थपूर्ण अवलोकन करने, प्रक्रियाओं को समझने और अनुभव से सीखने में मदद करना है। मैंने अनुदेशकों द्वारा किए गए विविध हस्तक्षेपों पर ध्यान दिया है। अनुदेशक के हस्तक्षेप उनके सामाजीकरण, मूल्यों, जीवन दर्शन, पेशेवर रुझान, मानव मस्तिष्क, व्यवहार और अधिगम सिद्धांतों की समझ के जटिल ताने-बाने पर निर्भर करता है (डाभी, 2005, 2008, व 2011)। ISABS से जुड़े व अन्य दूसरे अनुदेशकों से अपनी बातचीत के आधार पर मुझे समझ में आया कि मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति ने सामाजिक सशक्तिकरण में योगदान दिया है, खासतौर पर ऐसे अनुदेशकों के माध्यम से जो समूह प्रक्रियाओं में विश्वास रखते हैं और जिन्हें लोगों पर और उनकी सशक्तिकरण की क्षमता पर भी भरोसा होता है। इस प्रयोगशाला में हिस्सा लेने वाले मेरे अनेक विद्यार्थियों ने लगभग एक दशक के बाद भी इसका जिक्र किया है कि इससे किस तरह सामाजिक सशक्तिकरण के विषय में उनका दृष्टिकोण बदला।

मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला पद्धति, अनुदेशक के साथ ग्रुप का समतलन (levelling) और बिना अपनी व्यक्तिगत शक्ति को खोए सत्ता का सामना करना सिखाती है। मेरे सहयोगियों और एन.जी.ओ. में काम करने वाले जमीनी कार्यकर्ताओं के साथ मेरे अनुभव से मिले प्रमाणों के आधार पर मैं ये दावा कर सकता हूँ कि प्रयोगशाला ग्रुप के भीतर व उसके बाहर की सत्ता का सामना करना सिखा कर सामुदायिक विकास में सहयोग देती है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया में हस्तक्षेपों से जुड़े 'क्यों?', 'कब?', 'क्या?' जैसे सवालों का आलोचनात्मक परीक्षण किया जाता है और ग्रुप में उनसे जुड़े मसलों का हल भी निकाला जाता है। प्रयोगशाला पद्धति ग्रुप में मौजूद विभिन्न किस्म की दुष्क्रियाशीलताओं (dysfunctionalities) से जूझने में भी मदद करती है और साथ ही ग्रुप को अपने उद्देश्य व बेहतरी की तरफ आगे भी बढ़ाती है। मैंने देखा है कि अनुदेशकों की सत्ता और उनके प्रति डर धीरे-धीरे खत्म हो जाता है – या जैसा कि पाउलो फ्रेरे (1970) ने अपनी किताब 'पेडॉगॉजी ऑफ़ दी ऑप्रेस्ड' में चर्चा किया है, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच का विभाजन कम हो जाता है।

यहां एक बात के लिए सावधान करना जरूरी होगा – ये सही है कि प्रयोगशाला पद्धति सामाजिक सशक्तिकरण में मदद करने की क्षमता रखती है। दंभी कहे जाने की आशंका होने पर भी मैं कहूंगा कि ऐसा होगा या नहीं ये ग्रुप के अनुदेशकों, सदस्यों और ग्रुप के वातावरण पर निर्भर करता है। जैसा कि कहीं और चर्चा की गई है (डाभी व सरकार, 2011), अनुदेशन का काम ग्रुप और समाज में विद्यमान विविधता के पर्याप्त ज्ञान पर आधारित होना चाहिए, योग्यता के साथ-साथ उसमें सही नजरिया और मूल्य होना चाहिए जो जन-उन्मुखी हो और जिसमें लोगों, उनकी संस्कृतियों और विविधताओं के प्रति सम्मान, गरिमा और बराबरी का भाव हो।

सामाजिक सशक्तिकरण व प्रयोगशाला – मनोभाव व 'हियर-एंड-नाओ'

हमारे हाथ में जो है वो है वर्तमान, बीता हुआ कल इतिहास है और भविष्य हम जानते ही नहीं। इंसान का स्वभाव है अतीत में डूबे रहना या भविष्य के हवाई किले बनाना। अक्सर ये प्रवृत्तियां सामने खड़े यथार्थ से मुंह चुराने का बहाना होती हैं, चाहे ये किसी समूह में हो या पूरे समुदाय में। 'अभी-और-यहीं' (here-and-now) पर जोर प्रतिभागियों को ग्रुप के उनके अनुभवों और दूसरों के अनुभवों के प्रति जागरूक बनाने में मदद करती है। आस-पास के यथार्थ के बोध और अनुभव (यथा, देखना, सुनना, मान लेना, कल्पना कर लेना) के आधार पर मस्तिष्क मनोभाव उत्पन्न करता है।

प्रक्रिया आधारित काम ग्रुप के 'हियर-एंड-नाओ' के अनुभव पर आधारित होता है। ल्यूविन का प्रयोगशाला में प्रक्रिया आधारित काम व्यापक समाज में अपने आपको जानने का एक माध्यम था (पॉटर)। सामाजिक विकास के क्षेत्र से जुड़े प्रतिभागियों ने अपने अनुभवों में जिक्र किया है कि किस तरह उन्होंने बहिष्करण, समावेशन, शक्ति संघर्ष, संसाधनों के लिए संघर्ष, सहयोग, दृष्टिकोण तय करने आदि जैसी अवधारणाओं का, जिनका सामना वो एक-दूसरे के साथ और समुदाय में बड़ी गहनता से महसूस किया है।

लैब में और समुदाय में हमारे मनोभाव, व्यवहार और हस्तक्षेप यथार्थ के हमारे बोध की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न होते हैं। हमारे मस्तिष्क में – प्रकट या अप्रकट रूप से – विकास की एक सामान्य अवधारणा मौजूद होती है यानी कि ग्रुप या समुदाय कहां है और कहां जा रहा है; और साथ ही इस दिशा के परिणामों का मूल्यांकन रहता है।

एक लैब में किसी प्रतिभागी ने गुस्से में कहा, “ये मुसलमान चींटियों की तरह हैं और इन्हे कुचल देना चाहिए”। ये सुनकर कोई रोने लगा। किसी अन्य लैब में गुस्से और आंसू से भरे एक प्रतिभागी ने कहा, “मुझे ब्राह्मण बिल्कुल नहीं पसंद हैं क्योंकि मैंने उन्हें इज्जत के नाम पर अपनी बेटियों को मारते देखा है”। इस पर किसी ने प्रतिक्रिया जाहिर की, “मैं किसी को भी अपनी सारी जाति के बारे में बुरा-भला बोलते नहीं सुन सकता। मैं हमेशा अपनी जाति के साथ खड़ा हूँ”। ये संवाद बेहद भावुक हो गया था। एक और लैब में ग्रुप ने काफी लंबा समय इस बात पर चर्चा करते हुए बिताया कि क्या उन्हें लैब की शुरुआत प्रार्थना से करनी चाहिए जैसा कि किसी प्रतिभागी का सुझाव था, और अगर हां, तो कौन सी प्रार्थना – हिंदू, मुस्लिम, इसाई, बौद्ध या कोई ‘मिलीजुली प्रार्थना’?

मैंने देखा है कि जाति, धर्म, वर्ग और पितृसत्ता से जुड़ी मान्यताओं पर आधारित गहरे पूर्वाग्रह लैब में उभरते हैं और गुस्से, उत्तेजना, नफरत आदि जैसे मनोभावों में बड़े आवेग के साथ प्रकट किए जाते हैं। प्रयोगशाला पद्धति के ‘हियर-एंड-नाओ’ और ‘मनोभावों’ के सिद्धांत व्यापक समाज के यथार्थ का प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं और इस प्रकार इन मुद्दों को हल करने, वैकल्पिक व्यवहार, दृष्टिकोण और एक नई दुनिया को खोजने में सहयोग करते हैं।

बहुत पहले 1921 में ये कहा गया था कि, “मनोभावों को भी दूसरी मानसिक क्षमताओं की तरह विकसित व नियंत्रित और परिष्कृत व समृद्ध किया जा सकता है। मनोभाव हमारे विचारों से उत्पन्न व संचालित होते हैं और विचार काफी हद तक हमारे नियंत्रण में होते हैं। इस प्रकार हम अपने मनोभावों को चुन कर उन्हें घनीभूत व नियंत्रित कर सकते हैं” (स्लोडेन, 1921; 54)। लैब में ग्रुप और समुदाय के अनुभवों से ये तथ्य आज भी खरा उतरता है।

इन सालों में मैंने पाया है कि लैब-ग्रुप में जो नई चीज अस्तित्व में आती है उससे ग्रुप और समुदाय में नई चेतना आकार लेती है। अपने वातावरण के प्रति जागरुकता मेरे अस्तित्व और अवस्थिति को प्रभावित करती है। कार्ल मार्क्स ने उचित ही कहा था, “मनुष्य का अस्तित्व उसकी चेतना से नहीं निर्धारित होता है, बल्कि इसके उलट, उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है”। इस प्रकार लोगों की सामाजिक स्थिति, वर्ग, हित, जुड़ाव और सामाजीकरण उनकी चेतना को निर्धारित करते हैं और मैंने प्रयोगशाला पद्धति से प्रतिबद्ध समूहों व समुदायों में इन सब पर सवाल उठते हुए देखा है। ये वही धरातल है जहां ग्रुप के संदर्भ में सामाजिक संवेदनशीलता का प्रश्न उठता है – ग्रुप में किसे महत्व मिलता है और किसे नहीं मिलता? ग्रुप या समुदाय के कार्यक्रमों में किसे शामिल किया जाता है और किसे नहीं शामिल किया जाता, और क्यों? ये सामाजिक

सशक्तिकरण की शुरुआत है। लैब और सामुदायिक प्रक्रियाओं का हिस्सा बनकर मैंने खुद के और दूसरों के ज्यादा मानवीय होने का अनुभव किया है।

सामाजिक सशक्तिकरण व मानव प्रक्रिया प्रयोगशाला – शक्ति की प्रमुखता

‘टकराव और विरोध’ लैब या समुदाय में शक्ति के उपयोग या दुरुपयोग के प्रत्यक्ष सूचक हैं। जो लोग समूहों या समुदायों के बीच अनुदेशक का काम करते रहे हैं वे यह जानते हैं कि शक्ति का प्रयोग सशक्तिकरण के लिए भी किया जाता है और/या निशक्त करने के लिए भी। मैंने पाया है कि जिन लोगों ने समानता, समावेशन और न्याय/निष्पक्षता के मूल्यों को आत्मसात कर लिया है वे शक्ति को दूसरों के साथ साझा करने में सहजता अनुभव करते हैं और इसका इस्तेमाल सशक्तिकरण के लिए करते हैं। ये वो लोग हैं जो दूसरों तक पहुंचने के लिए खतरे उठाते हैं और समूहों व समुदायों को ऊंची मंजिलों तक पहुंचने के लिए उत्प्रेरित करते हैं।

कुछेक कृषि सहकारी समूह, यूनियन, स्वैच्छिक संगठन, एन.जी.ओ., गवर्निंग बोर्ड, कार्यकारी समितियां और जनांदोलन ऐसे व्यक्तियों से भरे होते हैं जो अपने हाथ से सत्ता निकलने नहीं देते हैं। यहां तक कि कथित करिश्माई नेता भी जानबूझकर या अन्जाने में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और जन-सत्ता के उभरने को चोट पहुंचाते हैं। प्रयोगशाला पद्धति से ऐसे कुछ समूहों का अनुदेशन करने से मुझे शक्ति के मुद्दे को प्रभावी तरीके से हल करने में मदद मिली है। प्रयोगशाला पद्धति का प्रयोग करके मैंने देखा कि कुछ दलित व आदिवासी समूह और महिला सहकारी समितियों में शक्ति की बेहतर समझ व उपयोग से लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में बढ़ोतरी हुई है।

किसी टी-ग्रुप या समुदाय में शक्ति को तर्क के ऊपर हावी होते देखने वाला मैं अकेला व्यक्ति नहीं हूँ। अनियंत्रित परस्पर विरोधी टकरावों में तर्क ‘शक्ति’ के सामने पूरी तरह या लगभग झुक जाता है क्योंकि ऐसी स्थितियों में सत्ता का नग्न प्रयोग बड़ी सुगमता से किया जाता है (फ़्लाइबज़र्ग, 1998)।

उपसंहार

उपर्युक्त परिचर्चा में ये दिखाने की कोशिश की गई है कि किस तरह प्रयोगशाला पद्धति सामाजिक सशक्तिकरण लाकर सामाजिक समावेशन की तरफ ले जा सकती है।

ये कहा जाता है कि, “जब तक लोग अपने जीवन को निर्धारित करने वाली घटनाओं व प्रक्रियाओं में सार्थक भागीदारी नहीं कर सकते, राष्ट्रीय मानव विकास के रास्ते न तो वांछित होंगे और न ही टिकाऊ” (UNDP, 2013)। मेरा मत है कि प्रयोगशाला पद्धति सदस्यों के बीच शक्ति के बंटवारे और भागीदारी के जरिए समूह के विकास से जुड़ी हुई है, और एक पद्धति के रूप में समूह व समुदाय के सशक्तिकरण में इसके प्रभावी उपयोग को चीन्हने की आवश्यकता है।

5.1

प्रक्रिया कार्य – सामाजिक समावेशन का रास्ता

जिमी डाभी

इस आलेख में यह जांचने की कोशिश की गई है कि प्रक्रिया कार्य सामाजिक समावेशन (social inclusion) को कैसे सहज बना सकता है। इसमें दक्षिण एशिया में सामाजिक भेदभाव के स्वरूप व प्रभाव को संक्षेप में प्रकाश डाला गया है और यह बताने की कोशिश की गई है कि सामाजिक समावेशन लाने में यह पद्धति किस तरह सहयोग कर सकती है।

संवेदनशीलता और मानव व्यवहार

संवेदनशीलता का संबंध हमारे बौद्धिक ज्ञान (intelligence), भावनाओं व व्यवहार से है। हमारा ज्ञान भावनाओं के माध्यम से हमारी उच्च मूल्य व्यवस्था को उत्तेजित करती हैं जिससे करुणा, समानुभूति, न्यायप्रियता, उदारता और विनम्रता के गुण पनपते हैं (मोएल, 2006)। संवेदनशीलता से मेरा अर्थ है दूसरों और पूरे वातावरण की जरूरतों, कठिनाइयों, सरोकारों व अकांक्षाओं को समझ पाने की क्षमता का होना, और अपने व दूसरों के प्रति सम्मानपूर्वक प्रतिक्रिया देना।

सामाजिक समावेशन, भेदभाव और संवेदनशीलता

हमारे सामाजिक दायरे में हमारी संबद्धता की सीमाओं (affiliation boundaries) में आने वाले लोग शामिल होते हैं और ये शारीरिक, मानसिक अथवा पर्यावरणीय उद्दीपकों (environmental stimuli) से प्रभावित होता है। बस्तियों की बदबू मेरे अंदर उल्टी करने जैसी अनुभूति जगाती है; और सड़क पर भीख मांगती छोटी बच्ची मेरे अंदर अपराधबोध, गुस्से और दया का भाव जगाती है। हिंसा व असमाजिक व्यवहार के प्रति अपनी प्रतिक्रिया हम ऐसा करने वालों का वर्गीकरण करके या उन पर 'लेबल' चस्पा करके करते हैं। ये सबकुछ हमारी संवेदनशीलता के चलते होता है, और जैसा कि सेडॉन दलील देते हैं, हमारे न चाहते हुए भी "अच्छे व बुरे के हमारे मूल्य हमें उस तरह की प्रतिक्रिया करने को बाधित करते हैं" (सेडॉन, 2007, पृ. 88)।

लेकिन, जैसा कि मार्टिन लूथर किंग कहते हैं, “आज भी हमसे अपेक्षा की जाती है कि जीवन चक्र की विपत्तियों और पीड़ा में फंसे हुए भिखारियों की सहायता करें। लेकिन एक दिन हमें यह सवाल पूछना ही चाहिए कि जो व्यवस्था भिखारियों को पैदा करती है क्या उसकी पुनर्रचना और नवीकरण नहीं किया जाना चाहिए” (किंग, 1967)। जैसा कि डायनाविकी (Dynawiki) में व्याख्या की गई है, सामाजिक रूप से सचेत व्यक्ति में नस्ल, जेंडर, जातीयता, विकलांगता, वर्ग या यौन पहचान पर ध्यान दिए बिना दूसरों के प्रति समानुभूति की प्रवृत्ति होती है।

समूहों व समुदायों के प्रति सामाजिक भेदभाव

परिवारों, घरों और सार्वजनिक दायरे में जो कुछ घटित होता है उसे “सामाजिक” कहते हैं। आखिरकार, जो निजी है वह राजनीतिक भी है। ऐसे कई प्रकार के भेदभाव हैं जो हमारे ध्यान, चिंतन और सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक कार्यवाही करने की मांग करते हैं।

जेंडर पूर्वाग्रह और सामाजिक बहिष्करण

‘जेंडर’ जैविक विभेद नहीं बल्कि समाज द्वारा बनाया गया है। जेंडर पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग, पुरुष या स्त्री, लड़का या लड़की होने की अवस्था से जुड़ी सामाजिक विशेषताओं और मौकों से जुड़ा हुआ है। समाजशास्त्रियों का यह मत है कि जेंडर स्त्रियों व पुरुषों के बीच जैविक अंतर नहीं बल्कि सामाजिक अनुभव से उत्पन्न अंतर है (क्रैमर, 2001)। ज्यादातर समाजों में जिम्मेदारियों के बंटवारे में, गतिविधियों में, संसाधनों तक पहुंच व उनके नियंत्रण में और साथ ही निर्णय लेने की शक्ति में अंतर व असमानताएं होती हैं। विभिन्न मानव समाजों के बीच के यौन संबंधी आयामों में उतना अंतर नहीं होगा जबकि जेंडर संबंधी आयामों में भारी अंतर हो सकता है (WHO, 2005)। दूसरे शब्दों में: ‘पुरुष’ और ‘स्त्री’ यौन श्रेणियां हैं जबकि ‘पुरुषत्व’ और ‘नारीत्व’ जेंडर श्रेणियां (WHO, 2009)।

जेंडर समानता का मतलब है किसी व्यक्ति के लिंग के आधार पर मौकों, संसाधनों व सुविधाओं के बंटवारे और सेवाओं तक पहुंच में किसी तरह के भेदभाव का न होना (WHO, 2002)। महिलाएं दुनियाभर में काम का 60% हिस्सा करती हैं; वे आय का 10% कमाती हैं और 10% जमीन पर उनका मालिकाना है (एटज़ेन व बाका-ज़िन, 2003:243)। “पचास प्रतिशत से ज्यादा अफ़गानी लड़कियों की 16 साल की आयु से पहले ही जबरन शादी करा दी जाती है, और ऐसी ज्यादातर शादियां रिश्तेदार तय करवाते हैं। भारत की ही तरह, अफ़गानी महिलाएं अक्सर घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं और कुछ परिवार तो कर्ज या झगड़ों के निपटारे

के लिए अपनी कम उम्र की लड़कियों की शादी करा देते हैं (नज़ीबुल्लाह, 2009)। जेंडर गैरबराबरी पुरुषों व महिलाओं के बीच असमान शक्ति संबंधों का परिणाम है और ये महिलाओं के खिलाफ हिंसा की असली वजह है।

धार्मिक भेदभाव और बहिष्करण

धार्मिक भेदभाव किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय द्वारा माने जाने वाले धार्मिक मत पर आधारित होता है। किसी क्षेत्र, प्रांत या देश में किसी खास धर्म को मानने वाले बहुसंख्यक लोग जानबूझकर या अंजाने में दूसरे मत को मानने वाले व्यक्तियों या समुदायों के साथ उनके अलग धर्म और संस्कृति के कारण भेदभाव व बहिष्करण कर सकते हैं। दक्षिण एशियाई देशों में, जहां एक बड़ा बहुसंख्यक वर्ग हिंदू, इस्लाम या बौद्ध धर्म को मानने वाला है, वहां जनसंख्या के एक हिस्से द्वारा अल्पसंख्यक धर्मों से किया जाने वाला भेदभाव सामाजिक विभेद, तनाव, संघर्ष और हिंसा पैदा करता है। कुछ सामाजिक-धार्मिक समूह व संगठन, जिसमें उनसे जुड़ी राजनीतिक पार्टियां शामिल हैं, इस टकराव को हवा देती हैं जिससे नफरत, हत्या, तोड़-फोड़ और सामाजिक विभेद पनपता है (गांगुली व अन्य, 2006)। सत्ताधारी दल अक्सर अपने फायदे के लिए संघर्षरत समूहों से मिली-भगत करते हैं। यह स्थिति भारत, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश, सभी देशों में है।

जातीय व जाति-वर्ण भेदभाव

जातीय (ethnic) समूह ऐसे लोगों का समूह है जिसके सदस्य एक-दूसरे को एक वास्तविक या काल्पनिक मिली-जुली विरासत से जोड़कर देखते हैं और उनकी कुछ सांझी सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं। इस सांझी विरासत का आधार काल्पनिक समान वंशावली, इतिहास, नातेदारी, धर्म, भाषा, सांझे इलाके, राष्ट्रियता या शारीरिक विशेषताएं हो सकती हैं। किसी जातीय समूह के सदस्य समूह की अपनी सदस्यता के प्रति सचेत होते हैं; यही नहीं, दूसरों द्वारा समूह की विशिष्टता की मान्यता जातीय पहचान की एक और विशेषता होती है। दक्षिण एशिया में जाति (caste) व जातीय हिंसा का एक इतिहास रहा है जो अक्सर खूनी संघर्षों में परिणत हुआ हुआ है। भारत और नेपाल ज्यादातर जाति-वर्ण आधारित भेदभाव से ग्रसित हैं, जबकि पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान और श्रीलंका जातीय भेदभाव से।

भारत और नेपाल के कई हिस्सों में जाति व्यवस्था जितनी दमनकारी है उतनी ही मजबूत और 'अस्पृश्य' भी साबित हुई है। अवर्णों / दलितों द्वारा ग्रामीण भारत में परंपरागत सामाजिक सत्ता को चुनौती देने की

किसी भी कोशिश का जवाब आज भी भारी हिंसा, संपत्ति की तोड़-फोड़ और महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा से दिया जाता है (देखें, हक्र, 1991; डाभी, 2009a)। बामियान विश्वविद्यालय के एक छात्र ने एक बार कक्षा में मुझसे कहा था कि अफ़गानिस्तान में जातीयता राष्ट्रीयता से कहीं ज्यादा बड़ी है। कुछ जातीय समूह, मसलन पश्तो, का यह मानना है कि वे शासक हैं और बाकी जातीय समूहों को उनके अधीन रहना चाहिए। ताज़िक और हज़ारा समूह इस प्रभुत्व का विरोध कर सकते हैं और प्रभुत्वशाली समूह को उसकी हद में रखने की वे हर संभव कोशिश करेंगे। इस प्रक्रिया में खूनखराबा और हिंसा होने की संभावना रहती है। जहां तक रोज़गार का सवाल है तो वहां अपने जातीय समूह के प्रति पक्षधरता आम बात है जिससे काफी गुस्सा और दुश्मनी पनपती है (देखें, डाभी, 2009b)।

मानसिक व शारीरिक विकलांगता और हाशियाकरण

‘हैंडिकैप इंटरनेशनल’ द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण में अनुमान लगाया गया कि अफ़गानिस्तान में 2005 में 800,000 विकलांग लोग थे जिसमें से आधे से ज्यादा 19 साल से कम उम्र के थे। विशेषज्ञों का मानना है कि 2005 के बाद बढ़ते संघर्षों व वापस लौट रहे लोगों के चलते इस संख्या में बढ़ोतरी ही हुई होगी। काबुल में हज़रतगुल नाम के एक विकलांग व्यक्ति का कहना है, “हम समाज से अलग-थलग महसूस करते हैं”। डिमानो नाम के अन्य व्यक्ति का कहना है, “हर चीज़ – नौकरियां, शिक्षा आवागमन के साधन, मनोरंजन – हर चीज़ सामान्य शरीर वालों के लिए है ... हम लोगों को सड़क पर भीख मांग कर जिंदा रहने के लिए छोड़ दिया गया है”। विश्व बैंक के अनुसार, दक्षिण एशिया के हर देश में कम-से-कम जनसंख्या का दसवां हिस्सा विकलांगता का शिकार है। अक्सर विकलांग व्यक्ति को परिवार के लिए बोझ और अभिशाप माना जाता है। इसके चलते, ऐसे बच्चे या वयस्क घर में ही रहना पसंद करते हैं या उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया जाता है ताकि परिवार की इज्जत बची रहे और उसे शर्मिंदगी न उठानी पड़े। ये खासतौर से लड़कियों और महिलाओं पर लागू होता है (UNDP, 2013)।

विचारधारा का विश्लेषण – सामाजिक भेदभाव को समझने के लिए एक औजार

विचारधाराएं उन संस्थाओं (सांगठनिक संरचनाओं) के जरिए सामने आती हैं जिनका इस्तेमाल किसी विचारधारा के विमर्श के प्रसार के लिए और उसे लागू करने के लिए किया जाता है। विचारधाराएं हमेशा शक्ति का प्रतीक होती हैं। उनका सबसे बड़ा काम है अन्यायपूर्ण सत्ता और विशेषाधिकारों के इस्तेमाल को वैधता प्रदान करना (फ्रांको व सर्वर, 1989)। विचारधारा दुनिया के प्रति एक नज़रिया बनाती है। यह संभव

है कि जीवन को दिया गया वो अर्थ या वो रोशनी झूठी हो लेकिन वह एक दृष्टि तो बनी ही रहती है। विचारधारा इस काम को तीन अंतर्संबंधित तरीकों से पूरा करती है:

- ये इसकी व्याख्या करती है कि कौन मनुष्य है और कौन नहीं। पितृसत्ता के समर्थक के लिए पुरुष तो इंसान है मगर स्त्री नहीं, स्त्री इंसान के दर्जे से नीचे है।
- ये स्पष्ट तौर पर ये बताती है कि क्या अच्छा व वांछनीय है और क्या खराब व अवांछनीय। पितृसत्ता को मानने वाले के लिए पुरुष को औरतों की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण का व्यवहार तो स्वीकार्य है मगर किसी शुद्र या अवर्ण का नहीं। सवर्ण और अवर्ण के बीच विवाह नैतिक रूप से अच्छा नहीं होता और इसलिए उस पर पाबंदी लगनी चाहिए। यही बात मंदिरों में प्रवेश और सार्वजनिक जगहों के इस्तेमाल पर भी लागू होती है।
- ये उन सीमाओं को निश्चित करती है जिनके भीतर विकास संभव है। ये बताती है कि क्या संभव है और क्या नहीं। इस प्रकार, किसी अवर्ण के लिए धार्मिक अनुष्ठान करवाना और महिला के लिए घर की मर्यादा या इज्जत के खिलाफ जाना संभव नहीं है।

जाति, जेंडर और पितृसत्ता विचारधारा की इस परिभाषा के दायरे में आते हैं और जाने या अंजाने में लोग इससे प्रभावित होते हैं और उसी तरह का व्यवहार करते हैं। भारत में शुद्र, अवर्ण या दलित व मुस्लिम, पाकिस्तान में हिंदू व इसाई, श्रीलंका में तमिल और अफ़गानिस्तान में हज़ारा भेदभाव का सामना करते हैं। मानसिक व शारीरिक रूप से अशक्त और अलग क्षमताओं वाले लोगों को अक्सर असमान्य व इंसान से कमतर समझा जाता है।

सामाजिक भेदभाव का प्रभाव

सामाजिक भेदभाव के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिणाम होते हैं और ये भेदभाव का ऐसा जाल बनाता है जिसमें लोग फंस सकते हैं। गरीबी और सामाजिक भेदभाव असुरक्षा, विकृत आत्म-छवि, आत्मविश्वास की कमी और खुद को दोष देने की प्रवृत्ति पैदा करते हैं।

हमारी भिन्नताओं का सम्मान नहीं किया जाता बल्कि हमारे बारे में निर्णय लिए जाते हैं और हमारा अन्यायपूर्ण मूल्यांकन किया जाता है। लोगों को एक पदानुक्रम में रखा जाता है: पुरुष को महिला से श्रेष्ठ माना जाता है; तथाकथित सवर्णों को (जो जाति व्यवस्था में ऊंचे स्थान पर होते हैं) कथित शुद्रों (जो जाति व्यवस्था में नीचे होते हैं) और अवर्णों (यानी जाति से बाहर समूह) से ऊंचा माना जाता है; बौद्धिक काम को

शारीरिक काम से बेहतर माना जाता है; अंग्रेजी को हिन्दी, दारी, पशु से श्रेष्ठ माना जाता है; पश्चिमीकृत संस्कृतियों को देसी (स्थानीय) अथवा निम्नवर्गीय संस्कृतियों से श्रेष्ठ माना जाता है, आदि। हम लगातार लोगों, उनकी भाषाओं, उनकी संस्कृतियों, उनके व्यवहार, उनके काम पर अपने 'लेबल' चस्पा करते रहते हैं जिसमें गैरबराबरी झलकती है और अपने इस मूल्य निर्णय के आधार पर उनके साथ असमान व्यवहार करते हैं (जैसा कि जिनवाला व डाभी, 2003 बताते हैं)।

प्रक्रिया कार्य और सामाजिक समावेशन

लोगों के समावेशन अथवा/और भेदभाव को दर्शाने वाला सामाजिक व्यवहार तीन मानवीय क्षमताओं को समेटे हुए है:

- ज्ञानात्मक (विश्लेषण, समझ और विश्वास)
- भावनात्मक (किसी के प्रति निष्ठा और प्रतिबद्धता)
- व्यवहारात्मक (मैं जो विश्वास करता हूँ और जीवन में जिसके प्रति अनुराग है उसे व्यवहार में लाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति और दृढ़ता)

प्रक्रिया कार्य अपने और समूह के प्रति जागरूकता से जुड़ा हुआ है और इसमें सामाजिक व्यवहार को असरदार तरीके से प्रभावित करने की क्षमता होती है। लेब के माहौल में ग्रुप जैसे-जैसे अलग-अलग चरणों से गुजरता है उसमें यह सामाजिक भेदभाव का जीवंत अनुभव उपलब्ध करा सकता है। भेदभावमूलक मान्यताओं और प्रवृत्तियों के विश्लेषण और समावेशी व्यवहार के प्रयोगों को घर के सामाजिक माहौल में लाया जा सकता है।

प्रक्रिया कार्य क्या है?

प्रक्रिया कार्य का संबंध उन प्रक्रियाओं से है जो ग्रुप कार्य (group work) व परस्पर-क्रियाओं में घटित होते हैं (गिब, 1975)। मोटे तौर पर इसे 'ग्रुप डाइनेमिक्स' की तरह परिभाषित किया जा सकता है जो किसी खास 'कार्यभार' से अलग होता है जिसमें कोई उस 'प्रक्रिया' को देख सकता है और ग्रुप जब उस कार्यभार को कर रहा होता है तब उन प्रक्रियाओं का अवलोकन कर सकता है। 'संवेदनशीलता प्रशिक्षण' अथवा टी-ग्रुप (जिसे कभी-कभार मानव संबंध प्रशिक्षण समूह या 'एनकाउंटर ग्रुप' भी कहा जाता है) जिसकी शुरुआत कर्ट ल्युविन ने की थी, इस प्रक्रिया कार्य का एक हिस्सा है।

प्रक्रिया कार्य हमारी मदद कैसे करता है?

कोई प्रशिक्षण जिसमें प्रक्रिया कार्य शामिल होता है (जैसे टी-ग्रुप) एक ऐसा प्रशिक्षण होता है जो लोगों को उनके पूर्वाग्रहों के बारे में जागरूक करता है और दूसरों के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाता है (ask.com)। सीखने की इस पद्धति ने नेताओं, प्रबंधकों और दूसरे लोगों को एक ज्यादा मानवीय और लोगों के लिए मददगार व्यवस्था बनाने में सहयोग किया है। इसने लोगों के प्रति गहरा सरोकार और लोगों की जरूरतों व भावनाओं को गंभीरता से लेने वाली व्यवस्थाओं को बनाने की इच्छा को विकसित किया है। इसने लोगों की परस्पर-क्रिया और सहकार्य के लिए ज्यादा मानवीय वातावरण की रचना करने में मदद की है।

हालांकि हमें इस तथ्य के प्रति यथार्थवादी रुख रखना होगा कि प्रक्रिया कार्य एक पद्धति है और इस रूप में ये जरूरी नहीं है कि ये सामाजिक समावेशन को प्रोत्साहित करे। लेकिन इस पद्धति में सामाजिक समावेशन को संभव बनाने की क्षमता है जो ग्रुप का अनुदेशन (facilitation) कर रहे लोगों, खुद ग्रुप के सदस्यों और वहां सीखने का जो माहौल बनाया गया है उसपर निर्भर करती है। मैंने किसी और जगह पर ये दलील दी है कि समावेशी अधिगम के अनुदेशकों से अपेक्षा की जाती है कि उनके पास ग्रुप और व्यापक समाज की विविधता का अच्छा ज्ञान हो। अनुदेशक में योग्यता और सही रवैये व ऐसे मूल्यों के होने की अपेक्षा की जाती है जो जन-केंद्रित हो व लोगों, उनकी संस्कृतियों व उनकी विविधताओं के प्रति सम्मान, गरिमा व बराबरी दिखाएं (डाभी, 2009c)। एक योग्य, प्रतिबद्ध व सामाजिक रूप से संवेदनशील अनुदेशक ग्रुप की उन प्रक्रियाओं व व्यवहारों पर ध्यान देगी जो बहिष्करणकारी व भेदभावमूलक हैं और वो ग्रुप को उन्हें देखने व उनसे सीखने में सहयोग करेगी।

टी-ग्रुप में प्रतिभागी अपने व दूसरों के तात्कालिक अनुभवों पर शोध करके, उनकी खोज करके और उनके बारे में सटीक व खुली जानकारी के आदान-प्रदान से, और साथ ही घटनाओं को समझने की सांझी प्रक्रियाओं से संवाद करके सीखते हैं (पॉटर, 1993)। इसके अलावा, समूहों व व्यक्तियों के लिए ये मुक्तिकामी अधिगम (emancipatory learning) का मौका देता है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें हम खुद को उन शक्तियों से आज़ाद करते हैं जो हमारे विकल्पों व जीवन पर हमारे नियंत्रण को कम करती हैं, ऐसी शक्तियां जिनको हम सामान्य या जिनको अपने नियंत्रण से परे मान कर चलते थे। इस तरह सीखने की प्रक्रिया स्वभाव से निर्माणवादी होती है और ये परिवर्तनकामी मगर कठिन व पीड़ादायी प्रक्रिया हो सकती है (क्रैंटन, 1994)। ग्रुप के सदस्य चाहें तो अपने घर में इसका प्रयोग करके सदस्यों द्वारा भेदभाव व बहिष्करण की प्रवृत्ति दर्शाने वाली भाषा व व्यवहारों का अवलोकन करना सीख सकते हैं।

प्रक्रिया कार्य ग्रुप में 'यहां-और-अभी' (here-and-now) अनुभव पर और ग्रुप व व्यक्तियों के बीच के शक्ति-संबंधों की जागरूकता पर केंद्रित होता है। समावेशन व बहिष्करण, सत्ता और आत्मीयता, एक अव्यवस्थित प्रक्रिया कार्य में साथ काम करके और ग्रुप की देखभाल करके जो अनुभव होता है वह सामाजिक संवेदनशीलता को पनपाने और विकसित करने में सहयोगी होता है। लैब में प्रक्रिया कार्य का ल्यूविन का तरीका व्यापक समाज में खुद के बारे में सीखने का एक जरिया है (पॉटर, 1993)। पूर्वाग्रह, रुढ़बद्ध छवियां, दंभपूर्ण और दबंग व्यवहार प्रक्रिया लैब में देर-सबेर सामने आ ही जाते हैं। ये सदस्यों और अनुदेशक को ग्रुप में सामाजिक समावेशन के नजरिए से ऐसे व्यवहार का परीक्षण करने का मौका देते हैं।

टी-ग्रुप में अनुदेशक के निर्देशन में प्रतिभागियों को साथी प्रतिभागियों के कार्यों व वक्तव्यों की प्रतिक्रिया में उभरे अपने भावनात्मक मनोभावों, जैसे क्रोध, भय, गर्मजोशी या ईर्ष्या को ग्रुप के साथ सांझा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें दूसरों (के प्रति अपने नजरिए व मनोभाव) के अनुभव को सांझा करने पर जोर होता है। इस तरह टी-ग्रुप के प्रतिभागी ये सीखते हैं उनके शब्द और कार्य किस तरह जिन लोगों से वे संवाद कर रहे हैं उनको प्रभावित करते हैं और उनमें भावनात्मक प्रतिक्रिया पैदा करते हैं। क्या उनके हावभाव – भाषा व व्यवहार – दूसरों के प्रति सम्मानपूर्ण, गरिमाय और समावेशी हैं? एक तरह से ये सामाजिक रूप से संवेदनशील बनने की दीक्षा है।

ग्रुप का अव्यवस्थित स्वभाव अनुदेशक के प्रति तनाव, झुंझलाहट और गुस्से का भाव पैदा करता है – जिसमें पूर्वाग्रह, पूर्वमान्यताएं और बहिष्करण की प्रवृत्ति और भी तीव्र हो जाती हैं। अगर कोशिश की जाए तो प्रक्रिया कार्य ग्रुप को इन प्रवृत्तियों और उसमें मौजूद लोगों की विविधता के प्रति सचेत कर सकता है। समय के साथ लैब ग्रुप में जो नवीनता अस्तित्व में आती है उसमें नई चेतना के निर्माण की संभावना होती है। हमारे माहौल के प्रति हमारी चेतना हमारे अस्तित्व और होने की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। कार्ल मार्क्स ने सच ही कहा था: "मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि इसके उलट, उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है"। इस तरह, किसी व्यक्ति की सामाजिक हैसियत, वर्ग, हित, जुड़ाव और समाजीकरण उसकी चेतना को निर्धारित करते हैं। सबसे गहरे या 'मूलतत्व' के स्तर पर प्रक्रिया कार्य उन प्रवृत्तियों से रुबरु होता है जिनसे हम खुद को संचालित होता हुआ तो महसूस कर सकते हैं मगर शब्दों में आसानी से नहीं कह सकते हैं। मानव जीवन का ये इलाका लोगों व घटनाओं के चारों ओर का अनकहा (subtle) वातावरण है, वो वातावरण जिसे एक चलायमान शक्ति की तरह हम महसूस तो कर सकते हैं मगर जो अब तक स्पष्ट रूप से सामने नहीं आया है। ग्रुप में सामाजिक भेदभाव

और समावेशन को इसी स्तर पर सामना किया जा सकता है – यानी किसे मूल्यवान माना जाता है और ग्रुप में शामिल किया जाता है और किसे नहीं और क्यों?

प्रक्रिया कार्य जीवन के समस्याग्रस्त या पीड़ादायी अनुभव किए जाने वाले हिस्सों पर काम के नए तरीके प्रस्तुत करता है। अगर शारीरिक लक्षण, संबंधों की समस्याएं, सामूहिक टकराव व सामाजिक तनाव को जिज्ञासा व सम्मान के नजरिए से देखा जाए तो ऐसी नई सूचनाएं मिल सकती हैं जो व्यक्तिगत व सामूहिक विकास के लिए अहम होती हैं। प्रक्रिया कार्य में व्यक्ति खुद को और हर दूसरे व्यक्ति को ज्यादा गहराई से समझ पाता है जो सामान्य सामाजिक व प्रचलित संबंधों में संभव नहीं है। वह दूसरे सदस्यों और खुद अपने ही आंतरिक 'स्व' को गहराई से पहचान पाती है जो आमतौर पर उसके मुखौटे के पीछे छिपा रहता है। इसके चलते वो ग्रुप में और इसके बाद रोजमर्रा के जीवन में खुद को दूसरों से बेहतर ढंग से जोड़ पाती है (रोजर्स, 1970)। इस प्रकार प्रक्रिया कार्य में समूह में सामाजिक समावेशन को प्रोत्साहित करने की क्षमता है जिससे आंतरिक बदलाव (मत संरचना और भावनात्मक अभिव्यक्ति) का और ग्रुप के 'यहां-और-अभी' के माहौल में एक मानवीय वातावरण बनाने की दिशा में कार्य (व्यवहारजनित अभिव्यक्तियां) करने का अवसर मिलता है।

टी-ग्रुप में सीखने का एक संवर्धित 'परिणाम' यह है कि अनुदेशक समेत ग्रुप के सभी सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे बड़े पैमाने पर आत्म-स्वीकृति व दूसरों की स्वीकृति न सिर्फ दिखाएं बल्कि वास्तव में ऐसा करें, कि वे ऐसे व्यक्ति बने जो विविधता को मूल्यवान मानते हों और सामाजिक संवेदनशीलता, सामाजिक न्याय और समावेशन के लिए काम करते रहना जारी रखें। व्यक्तिगत शक्ति का उपयोग या दुरुपयोग सशक्तिकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ा सकता है या उसमें बाधा खड़ी कर सकता है। प्रक्रिया कार्य लोगों को शक्ति के इस्तेमाल पर चिंतन करने में और शक्ति के जरिए प्रभुत्व बनाने की बजाय सशक्तिकरण के प्रयोग करने में सहयोग कर सकता है। आखिरकार सामाजिक संवेदनशीलता सभी लोगों के सशक्तिकरण के लिए काम करने की इच्छा का कार्य है, खासतौर पर उनके सशक्तिकरण का जो हाशिए पर हैं, चाहे ग्रुप में या व्यापक समाज में।

निर्भरता और परस्पर-निर्भरता, शक्ति और प्रेम (लॉवने, 2003) व सत्ता और आत्मीयता को समूह के जीवन की केंद्रीय समस्याएं माना जाता है (वॉरेन, 1964)। ग्रुप इन समस्याओं का प्रभावी समाधान कर सकता है जिससे टीम निर्माण और प्रभावशीलता का निर्माण हो सकता है, या ये समस्याएं ग्रुप को दुष्क्रियाशील (dysfunctional) बना सकती हैं। दूसरे शब्दों में, इन समस्याओं से जूझते हुए समूह अपनी जरूरतों व

सदस्यों की चिंताओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील हो सकता है और इस तरह समाज में सामाजिक समावेशन पर चिंतन कर सकता है।

सामाजिक समावेशन के लिए साहस की जरूरत होती है। भय संबंधपरक (relational) होता है ("मुझे क्या होगा और मैं किसे अपना मानता हूँ?")। ये असुरक्षा पैदा करता है और हमें रक्षात्मक बना देता है। भय और असुरक्षा लोगों को दूसरों के साथ भेदभाव और बहिष्करण करने की तरफ धकेल सकते हैं। दूसरों का भय अक्सर सामाजिक बहिष्करण को जन्म देता है। टी-ग्रुप के प्रक्रिया कार्य में रक्षात्मक व्यवहार अक्सर ग्रुप की समीक्षात्मक दृष्टि के केंद्र में होता है और इससे व्यक्ति को दूसरों के प्रति अपने भय को खत्म करने का मौका मिलता है जिससे दूसरे व्यक्तियों की स्वीकार्यता उनकी पूरी विविधता तथा विभिन्नता के साथ पनपती है।

शुरुआती चर्चा में ऐसे अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं जो दिखाते हैं कि प्रक्रिया कार्य में भेदभाव को दूर करने की और साथ ही सामाजिक समावेशन संभव बनाने के लिए सकारात्मक प्रतिक्रिया की संभावना व शक्ति होती है।

2.3

लक्ष्मण रेखा – पेशेवर दक्षता का नैतिक बचाव

ललिता अय्यर

जब संपादकीय टीम को पता चला कि इस जरूरी विषय के लिए स्वेच्छा से योगदान देने वाला कोई नहीं है तब मेरे मन में इसके लिए प्रयास करने का प्रलोभन आया – या कहें तो ऐसी जगह 'घुसने' की इच्छा हुई जहां बुद्धिमान लोग पांव भी नहीं रखना चाहते थे। मैं चिंतित हूँ कि कहीं आचार नीति (ethics) पर लिखने से मुझपर स्वयं को 'औरों से श्रेष्ठ' समझने का ठप्पा न लग जाए। मुझे पता है कि हममें से ज्यादातर लोग (जिसमें मैं खुद भी शामिल हूँ) अंजाने में ही इन नियमों का उल्लंघन कर सकते हैं। ISABS की आचार नीति 'लक्ष्मण रेखा' के मिथक की याद दिलाती है – वो रेखा जिसे भगवान राम के भाई लक्ष्मण ने सीता की सुरक्षा के लिए खींचा था - जिसे रामायण की नायिका सीता ने पार किया और उसके अनर्थकारी परिणाम हुए। मैंने ये सीखा है कि आचरण नीति का संबंध किसी आदर्श स्थिति को पाने से कहीं ज्यादा वहां पहुंचने का प्रयास करने से है। यहां सीखने वाली बात असल में ये है कि कैसे अपने आचरण में खुलापन बनाए रखें और किसी नाजुक क्षण में आचार नीति की अनदेखी की संभावनाओं को माने व स्वीकार करें।

ISABS में आचार नीति से मेरा संबंध पिछले कुछ सालों से बदलता रहा है। 'प्रोफेशनल डेवेलपमेंट प्रोग्राम' (PDP) में काम करते हुए मैं 'मूल्य स्पष्टीकरण' (value clarification) पर काम करने की तरफ आकर्षित हुई थी, जैसे कि "मेरे अपने मूल्य क्या हैं?", "मैं किस तरह अपने मूल्यों के व्यवहार में बेहतरी ला सकती हूँ?"। मुझे ये जानने में थोड़ा समय और परिश्रम लगा कि अपने व्यक्तिगत मूल्यों की बजाय दूसरों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने में मुझे ज्यादा संतुष्टि मिलती है। ISABS की 'कार्यक्रम आचार समिति' (event ethics committee) के कुछेक अनुभवों और इसी तरह की दूसरी जिम्मेदार भूमिकाएं निभाने के मौकों से मुझे हमारे काम में सन्निहित मूल्यों पर खरा उतरने में आचार नीति के महत्व के बारे में पता चला। आज मैं इसे सिर्फ पेशेवर सम्मान के किसी अमूर्त विचार की तरह नहीं बल्कि एक ऐसे मार्गदर्शक की तरह देखती हूँ जो मेरे भले के लिए भी उतना ही जरूरी है जितना ग्राहक के हित की सुरक्षा के लिए। मैं इस पेपर में आचार नीति के खाके के साथ-साथ उस प्रक्रिया का भी जिक्र करूंगी जिससे मेरे भीतर इसके प्रति गहरा सम्मान विकसित हुआ। इसमें मैंने अपने पेशेवर साथियों से हुई बातचीत से मिली अनेक सूचनाओं और अंतरदृष्टि का उपयोग किया है।

ISABS आचरण संहिता

संस्थान में मूल्य-आधारित व्यवहार को बढ़ावा देने के एक सक्रिय प्रयास के रूप में अचार नीति 1994 के आसपास तैयार की गई थी। इसकी प्रस्तावना इसके 'जीवंत' स्वरूप और सतत संवाद की आवश्यकता पर जोर डालती है। ये कोई कानूनी या निर्णयात्मक संहिता नहीं है जो किसी आरोपी को दंड देती हो या बरी करती हो। ये

नेशनल ट्रेनिंग लैबोरेट्रीज़ (NTL) की आचार नीति के खाके से मिलती-जुलती है हालांकि हमारी अपनी विशिष्ट जरूरतों के अनुसार इसमें कुछ परिवर्तन किए गए हैं। जब इस पर काम शुरू हुआ था तब ISABS के अध्यक्ष प्रो. उदय पारिख थे और जब इसे अंगीकार किया गया तब डॉ. उमा जैन इसकी अध्यक्ष थी। सन् 1994 में इसके पहले प्रारूप को बनाने के लिए सुश्री रोज़मेरी विश्वनाथ, श्री यावर बेग, प्रो. के. के. मेहता और श्री गणेश चल्ला ने मिलकर काम किया। NTL की आचार नीति और वहां इसके व्यवहार के बारे में अपनी जानकारी साझा कर डॉ. एनी लिटविन ने समिति की मदद की।

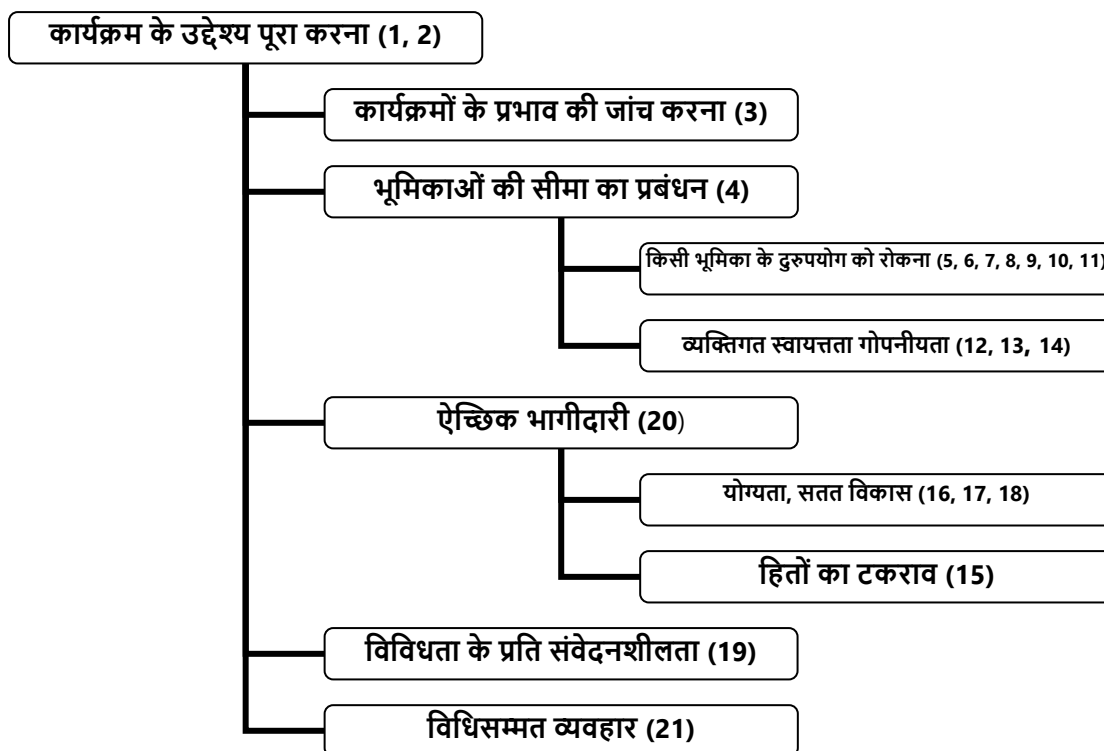
हालांकि संस्थान में कोई औपचारिक शिकायत या किसी तरह की नाटकीय घटना नहीं हुई थी मगर पेशेवर सीमाओं के प्रभावी प्रबंधन को लेकर कुछ चिंताएं थी जिसके चलते इस नीति की जरूरत महसूस की गई। जिस समिति ने इसके लिए काम किया उसमें वरिष्ठ और युवा पेशेवर सदस्य शामिल थे। इसे बड़ी सहजता से स्वीकार कर लिया गया और बिना किसी समस्या के व्यवहार में भी लाया गया। हालांकि संभव है कि उस चरण में अगर संस्थान में इस पर बहस होती तो और लाभ मिलता। संहिता के पहले भाग में प्रभावी अनुदेशन (facilitation) की महत्वपूर्ण 'सीमाओं' (boundaries) का वर्णन है। 'कार्य सीमा' (task boundary) इसका केंद्रीय भाग है और इसे शुरुआत में रखा गया है (A, B)। दूसरे भागों में उन आयामों की रूपरेखा है जिनका किसी कार्य को पूरा करने के लिए सख्ती से अभ्यास किया जाना चाहिए, जैसे कि 'भूमिका की सीमा' (role boundary - C), 'संवेदनशीलता सीमा' (sentient boundary - D, E), और दूसरे सामान्य आयाम (F, G, H, I, J) जो किसी पेशे के लिए प्रासंगिक होते हैं। इन आयामों के प्रति जागरुकता से कार्य, भूमिका और संबंधों की सीमाओं का प्रबंधन कर पाना आसान हो जाता है। अगर केवल बिंदुओं की संख्या पर ही ध्यान दें तो सबसे महत्वपूर्ण है 'संवेदनशीलता सीमा' को संभालना। संवेदनशीलता के प्रशिक्षण में अपने मनोभावों के प्रति जागरुकता और लैब का अनुदेशन करते समय उन्हें संभालने पर दिया गया जोर इस तत्व के महत्व को इंगित करने वाला दूसरा सूचक है (देखें चित्र 2.3.1)।

आचार नीति का व्यवहार

आचार नीति का संबंध व्यक्ति और उसके अंतःकरण से है। इस अत्यंत व्यक्तिगत आयाम को संवेदनशीलता से संभालने के लिए कोई संस्थान किस तरह की व्यवस्था करेगा? ISABS में ये उद्देश्य रहा है कि किसी तरह की निगरानी या दंडात्मक तरीकों को अपनाए बगैर आचार नीति को व्यवहार में उतारा जाए। हर कार्यक्रम में एक आचार समिति (ethics committee) गठित की जाती है और प्रतिभागियों को आचार नीति की प्रति उपलब्ध कराई जाती है। 'कार्यक्रम आचार समिति' के सदस्यों (जो आमतौर पर दो अनुदेशक - एक महिला व एक पुरुष होते हैं) का परिचय शुरुआत के 'सामुदायिक सत्र' में कराया जाता है। ये समिति प्रतिभागियों या पेशेवर सदस्यों द्वारा उठाए किसी मसले को हल करने के लिए हस्तक्षेप करती है। समिति फैकल्टी के समक्ष कार्यक्रम के दौरान उठाए गए मुद्दों और उन पर की गई कार्यवाहियों का ब्यौरा एक रपट द्वारा पेश करती है। ऐसा कोई मुद्दा जिसे ये समिति हल नहीं कर पाती है उसे 'स्थायी आचार समिति' (Standing Committee on Ethics) के सामने प्रस्तुत

किया जाता है ताकि उस मामले में और संवाद हो सके और व्यवहार में सुधार के लिए संस्थानिक प्रक्रियाओं को सुदृढ़ किया जा सके। ज्यादातर मसलों का संतोषजनक निपटारा हमारे काम की 'तात्कालिकता' (here-and-now) की भावना के अनुरूप कार्यक्रम के दौरान ही हो जाता है। ये अपनेआप में एक अनूठी प्रक्रिया है जो किसी मसले को हल करने के लिए त्वरित प्रतिक्रिया करती है। ये मसले से प्रभावित हर व्यक्ति की पारदर्शिता और गरिमा को भी बनाए रखती है।

Fig 2.3.1 ISABS आचरण संहिता – विषयों का जाल



(ब्रैकेट में दिए नंबर आचरण संहिता के प्रावधानों के हैं)

स्थायी आचार समिति

शुरुआती दौर में 'कार्यक्रम आचार समिति' को नैतिक आचरण के व्यवहार के लिए पर्याप्त माना गया। लेकिन जब कुछ मुद्दे बार-बार उठें तब इससे आगे जाने की जरूरत महसूस की गई। हालांकि किसी परिस्थिति से कैसे निपटा गया इस पर चर्चाएं होती थीं मगर 'याद रखने' यानी औपचारिक रेकार्ड रखने की व्यवस्था संस्थान में नहीं थी। एक ऐसी व्यवस्था में, जहां पूरा परिदृश्य सामने न हो व व्यवस्थागत बदलाव नहीं उभर रहे हों, वहां इस तरह की चर्चाएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक आते-आते बेहद विकृत हो सकती हैं और इनसे व्यक्तियों को नुकसान पहुंच सकता है। इसी तरह किसी एक व्यक्ति द्वारा बार-बार की जाने वाली गड़बड़ियों की अनदेखी भी हो सकती है क्योंकि उनको एक प्रवृत्ति का हिस्सा न मानकर आलग-अलग करके देखा जाता है।

अंततः एक 'स्थायी आचार समिति' (Standing Committee on Ethics) का गठन करने के लिए 1994 में तय की गई आचार नीति को 2006 के आसपास संशोधित किया गया। ये समिति व्यवस्थागत निहितार्थों पर नजर रखती है और आचार नीति के नियमों के पालन में बेहतरी लाने के लिए आगे बढ़ कर अपने सुझाव देती है। एक और महत्वपूर्ण बदलाव करते हुए ये नियम बनाया गया कि अगर कोई भी सदस्य किसी तरह का अनुचित व्यवहार होते देखता है तो ऐसी घटना की रपट आचार समिति में दर्ज कराना उसकी जिम्मेदारी होगी। रपट दर्ज करने और कुछ खास स्थितियों में कार्यवाही करने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए 2009 में कुछ और संशोधन किए गए।

आचार नीति सीखने की जगहें

आचार नीति के जरिए पेशेवर उत्कृष्टता लाने के लिए उसे आत्मसात करना होता है जिसके अनेक मौके उपलब्ध होते हैं। कई सदस्य आचार नीति और उसके पीछे की भावना की गहरी समझ विकसित करने के लिए 'कार्यक्रम आचार समिति' में शामिल होते हैं। इसी प्रकार इंटरन और दूसरे सदस्य भी लैब में बतौर अनुदेशक (facilitator) साथ काम करके आचार नीति के व्यवहार के बारे में सीखते हैं। खुद करके सीखने का तरीका किसी भूमिका में अपने आपको समझने का असल सारतत्व है। इस तरह के अभ्यास से आचार नीति पढ़ी, समझी और आत्मसात की जाती है।

'पेशेवर उत्कृष्टता के लिए डीन' (Dean, Professional Excellence) पद के सृजन के बाद जागरुकता बढ़ाने के लिए विशिष्ट प्रयास हुए हैं। आचार नीति पर केंद्रित सत्र अब राष्ट्रीय कार्यक्रमों और 'सतत पेशेवर शिक्षा' (continuing professional education) के अभिन्न भाग हैं। ये अपेक्षा की जाती है कि हर पेशेवर सदस्य कम-से-कम हर दो साल में एक बार आचार नीति पर केंद्रित सत्र का हिस्सा बने। इससे आचार नीति की ज्ञानात्मक व अवधारणात्मक समझ विकसित करने का मौका मिलता है। इसकी परीक्षा के मौके बिना किसी घोषणा के कभी कार्यक्रम के दौरान तो कभी कार्यक्रम के बाहर उपस्थित हो सकते हैं और पेशेवर सदस्यों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे आचार नीति के प्रावधानों व उसकी भावना पर खरे उतरेंगे।

व्यवहार में उपस्थित दुविधाएं

अगर किसी पेशेवर सदस्य या किसी प्रतिभागी द्वारा किसी पेशेवर सदस्य के बारे में कोई रपट दर्ज कराई जाती है तो 'कार्यक्रम आचार समिति' के सदस्य पूरी मर्यादा व गोपनीयता बरतते हुए मामले में शामिल व्यक्तियों के साथ संवाद और पड़ताल करते हैं। ज्यादातर मामलों का सभी व्यक्तियों की नजर में संतोषजनक समाधान हो जाता है। अगर किसी पेशेवर सदस्य के किसी खास आचरण पर सवाल उठा है तो उन्हें सलाह दी जाती है कि भविष्य में वैसा आचरण करने से बचें।

कभी-कभार 'कार्यक्रम आचार समिति' को ऐसे दो पेशेवर सदस्यों के बीच के मतभेद सुलझाने के लिए बुलाया जाता है जो किसी लैब में सह-प्रशिक्षक हैं लेकिन मतभेदों के चलते साथ काम करने व 'अधिगम उद्देश्यों' तक पहुंच पाने में असमर्थ हैं। ऐसा तब होता है जब सह-प्रशिक्षक क्लिनिकनिंग या रोज़ाना के डी-ब्रीफ सत्रों (daily de-brief session) में अपने सहकर्मियों के सहयोग के बावजूद अपने बीच के मतभेद नहीं सुलझा पाते हैं। किसी प्रतिभागी या पेशेवर सदस्य द्वारा अशोभनीय आचरण या यौन अशिष्टाचार जैसे दूसरे मसले भी सामने आते हैं। कभी-कभार ये बात भी सामने आती है कि कोई पेशेवर सदस्य ISABS के कार्यक्रमों, संसाधनों या उसके नेटवर्क का इस्तेमाल अपने किसी निजी प्रशिक्षण कार्यक्रम या कंसल्टेंसी सेवा के प्रचार के लिए कर रहा है।

2011 में जसमीत कौर, शंकर सुब्रमन्यन आर. और मैने चिंतन-मनन को बढ़ावा देने के लिए जो रूपरेखा बनाई थी उसमें व्यवहार में सामने आने वाली कुछ दुविधाओं का वर्णन है। आमतौर पर जब अनुदेशक अपनी भूमिका को चुनौतीपूर्ण बनाने के लिए ऐसी भावनात्मक जरूरतों को पूरा करने की कोशिश करते हैं जिनका पहले परीक्षण नहीं किया हो तब वे कुछ इस तरह का व्यवहार करते हैं जिसका वर्णन नीचे है:

- परामर्शदाता (mentor) और अनुदेशक की भूमिका की शक्ति का व्यक्तिगत लाभ के लिए दुरुपयोग करना,
- लैब में उठने वाली किसी मनोभावना को जाहिर न करना, और
- लैब के भीतर या उसके बाहर प्रतिभागियों से नजदीकी लाने के प्रयासों को बढ़ावा देना।

कभी-कभार योग्यता या सख्त परिश्रम (rigour) के अभाव के चलते भी दुविधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, निम्नांकित कार्य मूलतः योग्यता के मुद्दे को दर्शाते हैं मगर इनसे नैतिक द्वन्द्व भी पैदा हो सकता है:

- प्रतिभागियों द्वारा साझा की गई किसी घरेलू परिस्थिति के आधार पर हस्तक्षेप करना
- प्रतिभागियों व सह-अनुदेशक पर पड़ रहे अपने व्यवहार के दुष्क्रियाशील प्रभाव (dysfunctional impact) के प्रति जागरूक न रह पाना
- उन प्रक्रियाओं को चीन्हने में असफलता जिसके चलते ग्रुप का 'अधिगम कार्यक्रम' बाधित हो रहा हो और अचेतन रूप से उन प्रक्रियाओं में हिस्सेदारी लेना।

इन मुद्दों में सही या गलत होने जैसा कोई सरल जवाब नहीं है और हो सकता है कि कई घटनाओं पर किसी का ध्यान ही न जाए और उनकी कोई शिकायत दर्ज ही न हो। ये सूची यहां सदस्यों और प्रतिभागियों के लिए इसलिए दी गई है कि वे संभावित कठिनाइयों के प्रति सजग रहें।

आचार नीति की संस्थानिक केंद्रीयता

हालांकि ग्रुप के सदस्यों को कार्यक्रम के पहले ही दिन आचार नीति और कार्यक्रम के उद्देश्य के बारे में सामग्री दे दी जाती है लेकिन संभवतः जब वे लैब में आए तो वह लैब में होने वाले घटनाक्रम से अनभिज्ञ हों। जब ग्रुप 'तात्कालिकता' (here-and-now) में काम करता है जिसमें मनोभाव खुल कर सामने आते हैं तो कार्यक्रम का उद्देश्य पूरा होता है। इसमें बेसिक और दूसरे लैब के अलग-अलग उद्देश्य पर्याप्त तौर पर पूरे होते हैं, चाहे वो किसी खास विषय पर हों या पेशेवर विकास के लिए। अब लैब में दो अनुदेशक (facilitator) होते हैं। हस्तक्षेप के सिद्धांतों की मिलीजुली समझ उन्हें किसी भी कार्य पर ध्यान केंद्रित किए रखने के लिए विविध प्रकार के हस्तक्षेप करने में मदद करती है। उनके बीच मतभेद उभरने की संभावना पैदा हो जाती है जब लैब में गतिविधियां 'प्रक्रिया की सीमाओं' (process boundaries) के बाहर जाने लगें। इस तरह के मतभेद संस्थान के लिए ऐसे अवशेष छोड़ जाते हैं जो किसी खास क्षण में पूरे समुदाय को ध्रुवीकृत कर सकते हैं। आचरण नीति में कार्यक्रम के उद्देश्यों को हासिल करने और सीमाओं का सम्मान करने पर जोर पूरी व्यवस्था को पटरी पर रखने और मतभेदों को हल करने में मदद करता है।

कोई भी पेशेवर संस्थान आचार नीति का निर्माण मुख्य रूप से अपने उपयोक्ताओं की सुरक्षा के लिए करता है और ISABS की आचरण नीति इसका अपवाद नहीं है। व्यक्तिगत व भावनात्मक सीमाओं का सम्मान करने की जो विशिष्ट हिदायत पेशेवरों को दी गई है उसकी जरूरत हमारे काम के स्वरूप के चलते उभरी है। चूंकि प्रतिभागी भावनात्मक तौर पर संवेदनशील स्थिति में होते हैं इसलिए भावनात्मक सीमाओं, गोपनीयता व स्वायत्तता बनाए रखने के लिए संस्थागत सुरक्षा उपाय जरूरी हो जाते हैं।

आचार संबंधी नवीन चिंताएं

आचार नीति को पढ़कर दिमाग में पेशेवर सदस्यों की ऐसी छवि बनती है जैसे कि वे "भेड़ की खाल में भेड़िया हों जो बेखबर प्रतिभागियों को अपने चंगुल में फंसाने की फिराक में तैयार बैठे हुए हैं" – इस तरह की कुछ टिप्पणियां भी सामने आयी हैं। अनौपचारिक बातचीत में पेशेवर सदस्य और प्रतिभागी कहते हैं कि ये नीति मुख्य रूप से पुरुष अनुदेशकों को महिला प्रतिभागियों के अत्यधिक करीब जाने से रोकने के लिए है। लेकिन तथ्य इस बात का समर्थन नहीं करते हैं। किसी पुरुष या महिला पेशेवर सदस्य द्वारा किसी प्रतिभागी के साथ अमर्यादित व्यवहार की रपट या शिकायत तुलनात्मक रूप से बहुत ही कम हैं। संभव है कि आचार नीति की मौजूदगी ही पेशेवर सदस्यों को उनकी सीमाओं की याद दिलाने के लिए पर्याप्त है। कभी-कभार दो प्रतिभागियों के बीच किसी बात की रपट दर्ज कराई जाती है। ये आचार संहिता से जुड़ा मसला नहीं है और आमतौर पर 'कार्यक्रम संचालक' इस तरह की घटनाओं का निपटारा कर देते हैं।

जब अनुदेशकों को अनुदेशन की प्रक्रिया में दिखाई जा रही योग्यता को लेकर शिकायत होती है तब कार्यक्रम के उद्देश्यों को हासिल करने को लेकर चिंताएं उभरती हैं। अपने सहयोगियों के साथ ऐसे मामलों की पड़ताल करने का एक मौका रोजाना के चिकित्सकीय ग्रुप (daily clinicing group) में उपलब्ध होता है। लैब के बाद

होने वाले चिकित्सकीय सत्र तब बड़े उपयोगी साबित होते हैं जब लैब के साथी (partner) अपने मतभेदों को प्रकट करते हैं और उनके सहयोगी उनके सामने अनेक दृष्टिकोण और परिकल्पना रखते हैं ताकि वे एक जोड़े की तरह प्रभावी तौर पर काम कर सकें।

‘स्वैच्छिकता’ (volunteerism) और हितों के टकराव (conflict of interests) से संबंधित प्रावधान और साथ में सतत पेशेवर विकास पर जोर ISABS जैसे संस्थान के चरित्र को बनाए रखने में अतिशय महत्वपूर्ण हैं। पेशेवर उत्कृष्टता काफी हद तक सीखने के उन ठोस मौकों पर निर्भर करती है जो पेशेवर विकास कार्यक्रम के बाद (post-PDP) हमारी व्यवस्था में उपलब्ध होते हैं, हालांकि इस दिशा में बहुत कुछ करने की जरूरत है।

कई बार संचालन संबंधी सवालों को आचार नीति संबंधी मुद्दे बना कर पेश किया जाता है। संस्थानिक भूमिका निभा रहे किसी व्यक्ति का प्रदर्शन अगर अच्छा नहीं है तो ये संचालन का प्रश्न है जिसे कभी-कभार आचार नीति के प्रश्न की तरह उठा दिया जाता है। कई बार जब अंतर्व्यक्तिक (interpersonal) या अंतर-भूमिका (inter-role) टकराव जल्दी नहीं सुलझते हैं तो उनको भी आचार समिति के सामने रख दिया जाता है।

अधिकतर स्थितियों में किसी तरह का ‘दंड’ नहीं दिया जाता। अगर संबंधित व्यक्ति को वास्तव में पछतावा है और पीड़ित व्यक्ति को इस पछतावे की सच्चाई की अनुभूति होती है तो मामले को वहीं छोड़ दिया जाता है। किसी व्यक्ति के खिलाफ किसी तरह का ‘रेकार्ड’ नहीं दर्ज किया जाता है और न ही उस पर कोई लांछन लगाया जाता है। आचार नीति में उन कार्यवाहियों का जिक्र है जिनकी अनुशंसा समिति कर सकती है और जिसका परीक्षण बोर्ड करता है। ऐसी कार्यवाहियों के उदाहरण बहुत कम हैं। आचार नीति के वर्तमान रूप के लागू होने के पहले ऐसे व्यक्तियों को अनुदेशन के लिए आमंत्रित नहीं किया जाता था जिनके आचरण पर सवालिया निशान हों। मौजूदा खाके ने इस संबंध में ज्यादा पारदर्शी निर्णय-प्रक्रिया के अवसर उपलब्ध कराए हैं।

आचार नीति का व्यक्तिगत बनाम संस्थागत समर्थन

उत्कृष्टता के पथ पर आचार नीति का स्वेच्छा व सक्रियता से पालन करने में चुनौतियां बारंबार उपस्थित होती रहती हैं। मुख्य प्रक्रियाओं के माध्यम से पेशेवर उत्कृष्टता को बढ़ावा देने वाली किसी जगह के निर्माण की बजाय किसी व्यक्ति को ‘सुधारने’ पर ध्यान देना कहीं ज्यादा आसान है। उदाहरण के लिए, अब लैब में दो पेशेवर सदस्यों को रखना आम बात है जबकि 1990 के दशक या उससे पहले ऐसा आम चलन में नहीं था। ये कहा जाता है कि ऐसा करने से ये सुनिश्चित होता है कि कार्यक्रम के उद्देश्य पूरे हों और सीमाओं का पूरा ध्यान व सम्मान भी बना रहे। लेकिन शायद इसके कुछ अनचाहे परिणाम भी हुए हैं...पहली बात तो यह है कि इससे ये प्रतीत होता है कि संस्थान को ग्रुप में किसी सदस्य के अकेले काम कर पाने पर पूरा विश्वास नहीं है। दूसरी बात, जब सह-अनुदेशकों के बीच गंभीर मतभेद उपस्थित होते हैं तो उसे अंतर्व्यक्तिक मुद्दे के रूप में देखने की प्रवृत्ति पनपती है। ये दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि अक्सर ये देखा गया है कि, खासतौर पर ग्रुप के शुरुआती चरण में, सह-अनुदेशकों को अच्छे और बुरे होने का ठप्पा लगा कर बांट देने से ‘शक्ति’ (power) और ‘प्राधिकार’

(authority) के खिलाफ़ प्रतिरोध की शक्तिशाली अचेतन प्रक्रियाएं शुरू हो जाती हैं। अगर, व्यक्तिगत योग्यता की बजाय, इस तरह की परिकल्पनाओं की खोजबीन की तरफ ध्यान चला गया तब प्रतिभागी और प्रशिक्षक के बीच की सीमा-रेखाओं को बनाए रखने के नियमों की संस्थागत प्रतिक्रिया पर ज्यादा ध्यान दिया जाएगा।

केवल व्यक्तिगत स्तर की प्रतिक्रिया का एक प्रभाव ये भी होता है कि सहकर्मी अपने मतभेदों को इस डर से जाहिर करने से सकुचाते हैं कि एक-दूसरे की योग्यता को लेकर किसी तरह के विवाद में न फंस जाएं। इससे एक ऐसी संस्कृति पनपती है जिसमें लोगों से स्नेह संबंध बनाए रखना सर्वोपरि हो जाता है। ऐसे में विविध दृष्टिकोणों को आत्मसात कर पाना और टकरावों को सुलझा पाना मुश्किल हो जाता है। इससे समुदाय में आपसी विश्वास और सम्मान का क्षरण होता है। ऐसे माहौल में आचार नीति को एक दूसरे की निगरानी करने के तंत्र में सीमित कर दिए जाने का भी खतरा होता है।

जब आचार नीति का बेहतर संस्थानीकरण करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा तब निर्मांकित बातों पर जोर दिया जाएगा:

- रीफ्रेशर कार्यक्रमों (refresher programmes) के जरिए पेशेवर उत्कृष्टता
- पेशेवर सदस्यों के लिए सीखने के सतत मौकों की उपलब्धता
- उन्नत अनुदेशन कौशल के लिए शोध
- पेशेवर विकास कार्यक्रम (PDP) के सदस्यों को आचार नीति के खाके की तरफ उन्मुख करना
- वो सदस्य जो अनुदेशन से कुछ समय के लिए अलग रहें और एक अंतराल के बाद वापस आना चाहते हों उनके लिए वापसी की विशिष्ट प्रक्रिया।

इन उपायों के मिलेजुले प्रयोग से हमारे काम की गुणवत्ता में सुधार आएगा। आचार नीति का खाका सर्वांगीण है और हमारे काम के अनुरूप है। अब ये स्पष्ट तौर पर बताने की जरूरत है कि किस तरह का व्यवहार बिल्कुल आवश्यक है और किस तरह के व्यवहार से हमारे काम को नुकसान होगा। तालिका संख्या 2.3.1 में इसको समझाते हुए कुछ उदाहरण दिए गए हैं। इस तरह के विवरण से ISABS के हर काम में इन आयामों को कैसे सुदृढ़ किया जाए इसका भी पता चलेगा। बाहरी प्रवृत्तियां जैसे कि जननांकीय बदलाव, सत्ता के प्रति भाव, लैंगिक संबंध और जाति व बहुसांस्कृतिकता के उभरते मुद्दे हमारे काम पर प्रभाव डाल रहे हैं। इन मुद्दों का सामना कर पाने में हमारी आचार नीति कितनी सक्षम है इसका विवेचन करने का ये सही समय है।

तालिका 2.3 1 आचार नीति के संस्थानीकरण में बेहतरी के उपाय

आचार नीति के संबंधित आयाम	वो व्यवहार जिसका संस्थानीकरण करना है	वो व्यवहार जिससे बचना है

A. कार्यक्रम के उद्देश्यों को पूरा करना (1, 2)	चिकित्सकीय ग्रुप इन उद्देश्यों की तरफ हुई प्रगति का दैनिक मूल्यांकन कर सकते हैं	केवल व्यक्तिगत अवस्था में बदलाव पर ध्यान देना
B. कार्यक्रमों के प्रभाव की जांच (3)	प्रभाव पर और गहन शोध, नकारात्मक प्रभाव की विरल घटनाओं के मामले में लैब के बाद समर्थन उपलब्ध कराना	प्रतिकूल स्वास्थ्य (उदाहरणार्थ, हृदय संबंधी समस्याओं) के बावजूद अनुदेशन करना
C. भूमिका सीमाओं का प्रबंधन (4)	प्रतिभागियों के साथ भूमिका की सीमा को बनाए रखना, सहयोगियों के फीडबैक पर काम करना	प्रतिभागियों के साथ अनौपचारिक बातचीत, निकट सहयोगियों के साथ काम करना
D. पेशेवर भूमिका के दुर्पयोग से बचना (5, 6, 7, 8, 9, 10, 11)	अवचेतन प्रक्रियाओं को समझना, अतार्किक अवचेतन व्यवहार के बारे में मिले फीडबैक को स्वीकारना	किसी कार्यक्रम के ठीक बाद प्रतिभागियों के साथ व्यापार के लिए संवाद करना
E: व्यक्तिगत स्वायत्तता व गोपनीयता (12, 13, 14)	तात्कालिकता (here-and-now) पर ज्यादा काम करना	किसी प्रतिभागी पर उसकी इच्छा से ज्यादा अभिव्यक्त करने का दबाव न बनाना
F. हितों का टकराव (15)	ISABS के ऐसे किसी कार्य को लेने से मना करना जहां हितों के टकराव की संभावना हो	अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए ISABS के कार्यक्रम, उपयोक्ताओं और संसाधनों का उपयोग करना
G. योग्यता व सतत विकास (16 to 18)	'लर्निंग स्पेसेज़' में हिस्सा लेना/उनका आयोजन करना, ABS व्यवहार के क्षेत्र को व्यापक करना	PDP के लिए शार्ट-कट से बचना, प्रत्येक चरण पर मूल्यांकन को सख्त बनाना
H. विविधता के मुद्दों के प्रति संवेदनशीलता (19)	ज्यादा विविध प्रतिभागी समूहों पर पहुंच बनाना	सहकर्मियों या प्रतिभागियों की 'स्टीरियोटाइपिंग (stereotyping) से बचना
I. स्वैच्छिक भागीदारी (20)	भूमिकाओं में प्रभावी प्रदर्शन	एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और

		असम्मान का भाव
J. कानून का पालन (21)	नियमों का लगातार पालन	

उपसंहार

अंत में मैं उन सभी का शुक्रिया करना चाहूंगी जिन्होंने इस पेपर को पढ़ा और इसके शुरुआती प्रारूपों पर टिप्पणियां दीं। खास तौर पर मैं उमा जैन और रोज़मेरी विश्वनाथ की उपयोगी टिप्पणियों के लिए उनका आभार व्यक्त करना चाहूंगी; उन्होंने जो नजरिया सामने रखा वो बेहद समृद्ध और अर्थपूर्ण था। हमारे मेमोरेन्डम में व्यक्त सामान्य उद्देश्य और आचार नीति में स्पष्ट वर्णित प्रक्रियाओं की वजह से हमारा नेटवर्क बड़ी अशांत परिस्थितियों में भी अडिग रहा है। आचार नीति के व्यवहार को सुदृढ़ करने का हर प्रयास संस्था को सशक्त करेगा।

2.6

एक अनुदेशक के रूप में

जी. राजन्ना

अनुदेशक (facilitator) टी-ग्रुप में क्या करता है और इस भूमिका में प्रभावी होने के लिए किन चीजों की जरूरत होती है? इस पेपर में मैं टी-ग्रुप में अनुदेशक बनने और होने के अपने अनुभव व ज्ञान को सामने रखूंगा। अपने अविरल प्रयासों से और साथ ही सीखने की प्रक्रिया को समर्थन देने के लिए संस्थानिक मंचों का उपयोग करते हुए व्यक्ति 'प्रक्रिया अनुदेशन' में दक्षता व प्रमाणिकता हासिल करते हैं। भारत में वो संस्थान जो अनुदेशन/प्रशिक्षण विकास कार्यक्रमों (facilitator/trainer development programme) का आयोजन करते हों गिनती में ज्यादा नहीं हैं जिसके चलते इसके लिए जरूरी ज्ञान, कौशल व अनुभव हासिल करने में कुछ समय लगता ही है।

अनुदेशक के रूप में मेरा विकास

अनुदेशक बनने के लिए कई सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। इसमें सबसे जरूरी हैं कई लैब में हिस्सा लेना, सैद्धांतिक ज्ञान हासिल करना और दिए गए कार्यों पर काम करना। यहां मैं अपने अनुभव आप सबके सामने रखता हूं। अस्सी के दशक के शुरुआत में तीन साल में मैंने छः लैब में हिस्सा लिया। सौभाग्य से उस समय मैं सार्वजनिक क्षेत्र के एक बड़े निकाय के 'स्टाफ़ ट्रेनिंग कॉलेज' में बतौर फ़ैकल्टी काम करता था। मुझे अच्छी किताबें उपलब्ध थीं। मैं पढ़ने के लिए समय निकाल सकता था क्योंकि काम का बोझ कम था। हमारे कॉलेज आए देश में ISABS के सबसे बेहतरीन प्रशिक्षकों से मैं मिला और इस परिचय का लाभ उठा मैं उनसे परामर्श भी ले सका।

मैंने अपने अध्ययन की शुरुआत 'टी-ग्रुप थ्योरी एंड लैबोरेटरी मेथड' (ब्रैडफोर्ड व अन्य, 1964) से की। पांच सौ पन्नों से ज्यादा मोटे इस ग्रन्थ को पूरा पढ़ने में मुझे एक साल से भी ज्यादा समय लग गया। इस अध्ययन को जारी रखते हुए मैंने 'व्यक्तित्व' व 'रक्षा तन्त्र' (defence mechanisms) पर फ्रायड के विचार, 'व्यक्तित्व के प्रकार' (personality types) पर युंग के विचार, 'एनकाउन्टर ग्रुप्स' का रोजर का दिया विवरण, बर्न का 'ट्रान्ज़ैकश्रल एनालिसिस सिद्धांत', पल्स द्वारा 'गेस्टाल्ट साइकोलॉजी' पर लिखी सामग्री, 'अंतर्व्यक्तिक जरूरतों' (interpersonal needs) पर स्कुटज़ और 'समूहों में रक्षा' (defences in groups) पर बियॉन की लिखी सामग्री पढ़ी। इन सबसे मुझे अपने नैदानिक कौशल को बढ़ाने में खूब मदद मिली। 1986 में मैंने पीडीपी (प्रोफ़ेशनल डेवलपमेंट प्रोग्राम) की अहर्ताओं को पूरा कर लिया जिसमें पर्यवेक्षण के अंतर्गत दो लैब का अनुदेशन, लॉग लेखन व पुस्तक समीक्षा शामिल है और पेशेवर सदस्य बन गया।

प्रमाणन (accreditation) से सीखने की प्रक्रिया रुक नहीं जाती है और अनुदेशक अपने विकास के अनेक चरणों से गुजरता या गुजरती है। डॅविड एल. ब्रैडफोर्ड ने तीन चरणों को चिन्हित किया है। पहले चरण में

प्रशिक्षक ज्यादातर अपने ज्ञान व कौशल पर निर्भर रहते हैं, दूसरे चरण में वे अपने स्वभाव व अंतर्ज्ञान का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं और अंतिम चरण में वे प्रक्रिया पर भरोसा कर अपने कार्यों को उससे निर्देशित होने देते हैं।

टी-ग्रुप में अनुदेशन के 'कार्यभार'

सदस्यों को अपने, अपने संबंधों व ग्रुप में अपनी प्रभावशीलता के बारे में सीखने में मदद करना अनुदेशक का उद्देश्य होता है। अलग-अलग अनुदेशकों की आलग-अलग कार्यशैलियां व रणनीतियां होती हैं। लेकिन सभी प्रभावशाली अनुदेशक निम्न बातों का ध्यान रखते हैं –

निर्भरता बनाए बिना मदद करना

टी-ग्रुप में सीखने की प्रक्रिया मुख्यतः अनुभव, प्रयोग और कुछ हद तक अवलोकन से होती है। इसलिए आमतौर पर अनुदेशक प्रतिभागियों को निर्देशन देने से सकुचाते हैं ताकि प्रतिभागी अपना कार्यक्रम स्वयं ही चुने व सुनिश्चित करें। मैंने अपने अनुभव से ये सीखा है कि प्रतिभागियों को 'वहां-और-तब' (there-and-then) की बजाय 'यहां-और-अभी' (here-and-now), सोचने की बजाय अनुभव करने, काम करने की बजाय अवलोकन करने, दूसरों पर ध्यान लगाने की बजाय खुद पर ध्यान लगाने और रक्षात्मकता (defensiveness) की बजाय ग्राह्यशीलता की ओर जाने के लिए प्रेरित करना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

सावधानी के साथ सामना करना

अनुदेशक सदस्यों के दुष्क्रियाशील (dysfunctional) व्यवहार, जैसे कि अतिशय रक्षात्मकता, की ओर इशारा करने से कतराते नहीं हैं। कभी-कभार किसी एक प्रतिभागी पर लंबे समय तक सबका ध्यान रहता है। हो सकता है कि ग्रुप को इस बात की खबर ही न हो या कुछ सदस्य ऐसा जानबूझकर चलने देना चाहते हों ताकि वे खुद सबकी निगाह में न आएँ। ऐसी स्थिति में अनुदेशक हस्तक्षेप करता है।

'यहीं-और-अभी' पर ध्यान

प्रभावी अनुदेशक 'यहीं-और-अभी' को अपनी पहली प्राथमिकता बनाते हैं। भूतकाल के व्यक्तिगत अनुभवों को बाहर ही रखा जाता है, खासकर के तब जब वो ऐसी स्थिति के बारे में हो जिसको न तो अनुदेशक और न ही ग्रुप के सदस्य संभाल सकते हों। मैं सदस्यों को 'वहां-और-तब' से 'यहीं-और-अभी' तक लाने के लिए उत्प्रेरित करने के लिए इस दोहरी रणनीति का उपयोग करता हूँ-

- सदस्यों को आगाह करता हूँ कि संभव है कि घर पर उठा कोई मसला वैसा ही हो जिस तरह मसले से ग्रुप यहां जूझ रहा है
- इस बात पर जोर देता हूँ कि सदस्यों को उपलब्ध 'यहां-और-अभी' की सूचनाएं ही सार्थक परस्पर क्रिया-कलाप और फीडबैक का आधार हो सकती हैं।

व्यवहार का आदर्शीकरण

कभी-कभार अनुदेशक अपनी भावनाएं सबको बतलाते हैं। उदाहरण के लिए, जब वे किसी स्थिति में क्या करना चाहिए ये निश्चित नहीं कर पाते तो अपनी असहायता की भावना को जाहिर करते हैं। ग्रुप में मौजूद उपाय-कुशल व्यक्तियों की वे सराहना करते हैं और कोई ऐसी बात कहने या करने से बचते हैं जो दूसरे सदस्य भी कर सकते हों। उदाहरण के लिए, अगर किसी सदस्य द्वारा प्रकट की गई किसी बात से मैं आश्चर्यचकित हो गया हूं तो इस बात को मैं तुरंत सबको बतलाता हूं। मैंने देखा है कि ये सदस्यों को सहज होने के लिए प्रेरित करता है।

अनुदेशन के कौशल

अनुदेशन में अवलोकन, निदान और हस्तक्षेप करना शामिल है। चूंकि हस्तक्षेप करना इसमें से सबसे दृश्यमान और सबसे जरूरी जरूरी हिस्सा होता है इसलिए अनुदेशक का खजाना बड़ा होना चाहिए। प्रभावशाली अनुदेशक शायद ही कभी हस्तक्षेप करते हैं और जब वे ऐसा करते भी हैं तो कुछ ही शब्दों में वे अपनी बात कह देते हैं। अगर ग्रुप अपने काम में नया है तो अनुदेशक को कई बार हस्तक्षेप करना पड़ सकता है। नीचे दी गई तालिका में अक्सर किए जाने वाले हस्तक्षेप और उनके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है।

तालिका 2.6.1 हस्तक्षेपों के प्रकार

ग्रुप में विद्यमान स्थिति	प्रकार	हस्तक्षेप का वर्णन
सत्ता से बेचैन सदस्यों में विद्रोह करने, झुक जाने या पीछे हटने की प्रवृत्तियां	बारीकी से जांच	पूरे ग्रुप का अवलोकन करना – ऊर्जा का स्तर, अन्यमनस्कता या भावुकता
आनंद, निराशा या कुंठा	अनुभव करना	ग्रुप में जो हो रहा है उस पर अपने मनोभाव साझा करना
ग्रुप किसी सदस्य को घेर लेता है और उसे बचने के अवसर नहीं देता	देख-रेख करना	अनुचित उत्पीड़न से सदस्यों को बचाना
कुछ सदस्य ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, खेल खेल रहे हैं, दूसरों के सामने बाधा रख रहे हैं; कथनी और करनी में अंतर का होना	सामना करना	दुष्क्रियाशील व असंगत व्यवहार का सामना करना
समय की पाबंदी, गलतियां स्वीकार करना, दूसरों को मौके देना	प्रतिमान बनाना	वांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन

आत्म-प्रकटीकरण से विश्वास का निर्माण जिससे जोखिम उठाने का बढ़ावा मिलता है	अलोचना करना	ग्रुप में सीखने की क्रिया समर्थन करने वाली या बाधित करने वाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण
---	-------------	--

अनुदेशक की भूमिका में 'आत्म' का प्रबंधन

अनुदेशक एक जटिल जिम्मेदारी निभाता है और समूह में चल रही प्रकट व अप्रकट घटनाओं पर नजर रखता है। ऐसी ही एक घटना है प्रक्षेपण (projection) – यानी एक व्यक्ति के विचारों, मनोभावों व संवेगों को किसी दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करना जिसमें ये विचार, मनोभाव व संवेग संभव है कि न हों। टी-ग्रुप के प्रतिभागी हमेशा ये करते हैं और इसका प्रमुख निशाना अनुदेशक ही होता है। कई अच्छे या बुरे लक्षण, विचार व मनोभाव जो असल में प्रतिभागियों के हैं उनको अनुदेशक पर प्रक्षेपित कर दिया जाता है। कुछ सदस्य अनुदेशक को खुशमिजाज, जादुई व आकर्षक रूप में देखते हैं जबकि दूसरे उसे कुत्सित, क्रूर और निर्मम व्यक्ति की तरह देखते हैं। जो अनुदेशक प्रक्षेपण से निपटने में माहिर होते हैं वे न तो प्रशंसा से अभिभूत होते हैं और न ही क्रोध से दुखी होते हैं और प्रतिभागियों से एक स्वस्थ दूरी बनाए रखते हैं।

इस तरह के प्रक्षेपण के शिकार होने का मेरा एक अनुभव है जब लैब में मुझे पर पक्षपात करने का आरोप लगा था। तब मैंने 'सहमतिजन्य प्रमाणीकरण' (consensual validation) की बजाय अपने भीतर झांक के देखा और अपने सह-प्रशिक्षक की राय ली। तब स्पष्ट हो गया कि प्रतिभागी मेरे ऊपर क्या प्रक्षेपित कर रहा था। हाल में मैं लैब में हास्य का ज्यादा उपयोग कर रहा था मगर फिर फीडबैक मिला कि ये कुछ ज्यादा ही हो रहा है। तब मुझे ये समझ में आया कि 'चिंता' (anxiety) से निपटने के लिए मैं हास्य का उपयोग कर रहा था। इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए मैंने अपने मनोभावों को स्वीकारा और मुझे हरेक क्षण क्या हो रहा था उसे सिर्फ साक्षी भाव से देखता रहा।

अनुदेशकों के लिए अपनी सीमाओं को बनाए रखना जरूरी है। इसमें सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण 'कार्य' (task), 'भूमिका' (role) और भावनात्मक (sentient) सीमाएं हैं। कार्यक्रम का उद्देश्य 'कार्य सीमा' का सार है। अनुदेशक को इस संभावना के प्रति सजग रहना चाहिए कि किसी सदस्य के साथ लैब के बाहर के उसके पेशेवर या व्यक्तिगत संबंध लैब के भीतर के कार्य को प्रभावित कर सकता है और उसे अपने निकट के लोगों के साथ काम करने से बचना चाहिए। 'भावनात्मक सीमा' प्रतिभागी के व्यक्तिगत दायरे को दर्शाती है और अनुदेशकों से अपेक्षा की जाती है कि वे प्रतिभागियों के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष अशिष्ट आचरण और शारीरिक संपर्क से बचेंगे।

संतुलन बनाना

प्रभावशाली अनुदेशक अतिशय निर्देश और अति तटस्थता में संतुलन बनाए रखते हैं। न तो वे अपने बारे में अत्यधिक बात करते हैं और न ही अपने बारे में बात करने से बिल्कुल ही कतराते हैं। भावनाओं की अभिव्यक्ति और अनुभूतियों को साझा करने की जरूरत को वे मानते हैं। वे इस बात के प्रति सजग होते हैं कि बहुत ज्यादा भावनात्मकता के बीच संभव है कि सीखना हो ही न पाए। इसलिए वे ग्रुप के इन आयामों, जैसे, नियमों के प्रति संवेदनशीलता, चुनाव (choice) का स्वीकार और फीडबैक पर ध्यान देते हैं क्योंकि ये सभी उतने ही जरूरी हैं जितना अपने मनोभावों को व्यक्त करना।

उपसंहार

ज्ञान, कौशल और सजगता के अलावा दूसरे व्यक्तियों और दूसरी पद्धतियों से सीखने की तत्परता अनुदेशक के लिए अत्यंत आवश्यक है। 'टाविस्टॉक पद्धति' (Tavistock method) पर कई कार्यशालाओं / सम्मेलनों में हिस्सा लेकर मैंने समूहों में अवचेतन प्रक्रियाओं के प्रभाव को समझा है जिससे मुझे बड़ा फायदा हुआ।

लचीलेपन और अनुकूलना की क्षमता भी जरूरी है। हाल ही में मैं एक ऐसे ग्रुप में था जिसमें अधिकतर व्यक्ति तमिल भाषी थे। लेकिन मेरे सह-अनुदेशक और मैं तमिल धारा प्रवाह नहीं बोल सकते हैं। सत्र के शुरुआत में ही हमने इसे स्वीकार किया और ग्रुप से महज निवेदन किया कि वे हमारे सीमित तमिल ज्ञान को स्वीकार करें। दूसरे दिन के खत्म होते-होते हम लोग अंग्रेजी और तमिल का मिलाजुला प्रयोग कर सहजता से काम कर रहे थे। वो समस्या उतनी बड़ी नहीं थी जितनी हमने कल्पना कर ली थी। सदस्य ये बात समझ रहे थे कि जरूरत शब्दों में निहित भावनाओं और मूल्यों पर ध्यान देने की है और उस लैब का संतोषजनक समापन हुआ।

धीरे-धीरे मैं ये समझ रहा हूँ कि ग्रुप में मुझे कुछ असाधारण काम नहीं करना होता है और न ही कोई बड़ी गहरी बात कहनी होती है। अनुदेशन को प्रभावशाली बनाने के लिए जरूरत सिर्फ इतनी है कि मैं जैसा हूँ वैसा ही बना रहूँ, जो कहना चाहता हूँ उसे आसान शब्दों में कहूँ और प्रतिभागियों की मदद के लिए वास्तव में तत्पर रहूँ।

टी-ग्रुप अनुदेशन की योग्यताओं का एक मॉडल

डॉ. उमा जैन व गणेश अनंतरमन

टी-ग्रुप की परिभाषा

टी-ग्रुप की शुरुआती परिभाषाओं में से एक ब्रैडफोर्ड, गिब व बेन (बेन 1964:1) की है, जो इस प्रकार है:

“टी-ग्रुप तुलनात्मक रूप से एक अव्यवस्थित सा समूह होता है जिसमें व्यक्ति शिक्षार्थियों के रूप में भाग लेते हैं। इसमें सीखने का आधार प्रतिभागियों या टी-ग्रुप के तात्कालिक अनुभव के दायरे से दूर नहीं होता। एक उत्पादक व व्यवहार्य समूह और एक लघु समाज बनाने के लिए प्रतिभागी जैसे-जैसे जुड़ते हैं, और उस समाज में सीखने के लिए एक-दूसरे को उत्प्रेरित करने और इसमें एक-दूसरे का सहयोग करने के लिए जैसे-जैसे वे काम करते हैं उस पूरी प्रक्रिया में सदस्यों के बीच के क्रिया-कलाप और समूह में उनका अपना जो आचरण होता है वही सीखने का आधार है।”

हम टी-ग्रुप को सीखने के एक अव्यवस्थित ढांचे की तरह देखते हैं जिसमें व्यक्ति पारस्परिक क्रिया-कलापों, अनुभवों, और व्यक्तियों के व्यवहारों की 'यहां-और-अभी' (here-and-now) संबंधी सूचनाओं पर ध्यान केंद्रित करके अपने बारे में, अपने अंतर्व्यैक्तिक संबंधों के बारे में और समूह की प्रक्रियाओं के बारे में सीखता है। इसमें सीखने की प्रक्रिया सहभागितापूर्ण और अनुभवजन्य होती है जिसमें अनुभव करना, साझा करना, सूचनाएं इकट्ठा करना, उनका विश्लेषण करना, इसके आधार पर अंतर्दृष्टि विकसित करना, प्रयोग करना और भावी उपयोग के लिए सामान्यीकरण करना शामिल हैं। अनुदेशक (facilitator) का काम मुख्यतः ऐसा माहौल बनाना होता है जिसमें इस तरह से सीखने की प्रक्रिया फलीभूत हो सके (जैन 2009; 3)।

योग्यता को परिभाषित करना

डेविड ड्यूबोएस (ड्यूबोएस 1998; 5) योग्यता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ये “ज्ञान, कौशल, मानसिक रुझान, विचार के स्वरूप और इस प्रकार के अन्य वे लक्षण हैं जिनको अकेले या अलग-अलग अनुपात के समावेशन में इस्तेमाल करने पर सफलता मिलती है।”

इस परिभाषा के आधार पर टी-ग्रुप के संदर्भ में हम योग्यता को प्रासंगिक कुशलताओं, ज्ञान, रुझान व मूल्य और सोचने, महसूस करने व कार्य करने के उन तौर-तरीकों के एक मिश्रण की तरह परिभाषित कर सकते हैं जिनका अकेले या दूसरी योग्यताओं के साथ मिले-जुले रूप से प्रयोग करने पर टी-ग्रुप की पद्धति, उद्देश्य और मूल्य बने रहते हैं।

टी-ग्रुप अनुदेशन की योग्यताएं

एक टी-ग्रुप अनुदेशक के लिए कुछ योग्यताओं और उनके विभिन्न पहलुओं पर अच्छी महारत होना जरूरी है ताकि टी-ग्रुप में उत्पन्न विभिन्न स्थितियों में प्रभावी हस्तक्षेप के अनेक विकल्प उसके सामने हों।

जिन योग्यताओं का आगे जिक्र किया गया है वे टी-ग्रुप सिद्धांतों से प्रभावित हैं और साथ ही उन साधारण विचलनों से भी जो संभवतः कुछ योग्यताओं के अल्प विकास व कुछ अन्य पर ज्यादा जोर डालने से आमतौर पर उत्पन्न होते हैं। संभवतः इन सभी योग्यताओं के पर्याप्त विकास के बिना अनुदेशक के कुछ योग्यताओं में पारंगत होने के बावजूद दूसरी योग्यताओं में दक्षता की कमी के कारण हुए व्यवहार के अनपेक्षित परिणामों से ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती है जिससे टी-ग्रुप के उद्देश्यों व मूल्यों पर नकारात्मक प्रभाव पड़े।

हालांकि स्पष्टता व समझ बनाने के लिए यहां हर योग्यता को दूसरों से अलग करके प्रस्तुत किया जा रहा है लेकिन हम इन्हें परस्पर विशिष्ट श्रेणियों के रूप में नहीं देखते। एक-दूसरे के विकास और व्यवहार का ये अक्सर समर्थन करते हैं। साथ ही, संभव है कि ग्रुप के अलग-अलग चरणों में इन्हें अलग क्रम और रूप में प्रयोग किया जाए।

- **पारस्परिक क्रियाकलाप व संवाद कौशल**

हालांकि ये टी-ग्रुप अनुदेशन तक ही सीमित नहीं है, मगर अनुदेशकों के लिए परस्पर क्रियाकलाप व संवाद के कुछ बुनियादी गुणों जैसे कि सुनना, समानुभूति करना (empathizing), व्याख्या करना, फीडबैक का लेन-देन, अपने आप को प्रस्तुत करना, आदि का होना जरूरी है। अगर दूसरी योग्यताओं के साथ-साथ ये खूबियां भी हैं तो ग्रुप में दूसरी योग्यताओं के प्रभावी उपयोग को समर्थन मिलता है। लेकिन अपनेआप में वे अनुदेशक की मदद केवल तब तक करती हैं जब तक ग्रुप सत्ता (authority) पर आश्रित होता है। प्रभुत्व/सत्ता के मसलों को हल करने में या ग्रुप को सहभागिता के गहरे स्तर तक ले जाने में ये कौशल अपर्याप्त होते हैं जबतक कि 'स्व' को संभालने, सीखने के प्रति खुलापन रखने या ग्रुप प्रक्रियाओं को समझ पाने की योग्यताएं न हों।

उदाहरण के लिए, लैब के शुरुआती चरण में अगर अनुदेशक देखता है कि कोए सदस्य चुपचाप है तो वो उससे ये पूछ सकता है, "आप क्या महसूस कर रहे हैं?" ये संभव है कि संबंधित सदस्य इसका उत्तर दे, लेकिन अगर प्रति-निर्भरता (counter-dependency) वहां काम कर रही होगी तो हो सकता है कि सवाल को अनदेखा किया जाए, या उस सदस्य अथवा किसी दूसरे सदस्य से कोई अनपेक्षित प्रतिक्रिया

मिले। इसको संभालने के लिए अनुदेशक को ग्रुप प्रक्रियाओं की समझ और दूसरी योग्यताओं की जरूरत होगी।

- **प्रक्रियाओं से सीखने के प्रति खुलापन बनाए रखना**

टी-ग्रुप अनुदेशकों से ये अपेक्षा नहीं की जाती कि उनके पास हर मुद्दे का हल होगा या प्रतिभागियों को देने के लिए पहले से ही ज्ञान का भंडार होगा या कि वे वहां पहुंचे हुए व्यक्ति के रूप में उपस्थित होंगे जिनकी कोई सीमाएं न हों या हल करने के लिए जिनके पास कोई मुद्दा बचा ही न हो। अनुदेशन संभावित अनुमानों को सुनने, उन्हें विकसित करने व ग्रुप में नए आंकड़ों के उपस्थित होने पर उनको संशोधित करने के खुलेपन के साथ उनको प्रस्तुत करने, और खोज को बढ़ावा देने की प्रक्रिया है। इसका मतलब है 'मुझे पता है', 'जान जाउंगा' या 'सब जान जाउंगा' जैसी धारणाओं की बजाय पुराने अनुभवों के आधार पर तत्काल (real time) सीखने की तत्परता की जरूरत। इसलिए कई बार अनुदेशक को अपने किए गए हस्तक्षेपों के चुनाव पर संशय हो सकता है और उनको दोबारा जांचने की जरूरत भी महसूस हो सकती है।

चलिए एक ऐसे अनुदेशक का मामला लेते हैं जिसे ग्रुप के किसी सदस्य द्वारा साझा किए गए किसी मुद्दे से गहरा जुड़ाव महसूस हुआ हो। यहां उसके सामने कई विकल्प मौजूद हैं – उसी क्षण अपनी भावनाओं को साझा करना; उस सदस्य को उस मुद्दे पर और भी ज्यादा बोलने के लिए प्रोत्साहित करना या रुक कर उस मामले में बाकी सदस्यों की प्रतिक्रिया का इंतजार करना और फिर उस प्रक्रिया पर अगर कोई टिप्पणी देनी हो तो उसे साझा करना। संभव है कि अनुदेशक की भूमिका में पहले विकल्प की उपयुक्तता पर संदेह होने के चलते वो दूसरे या तीसरे विकल्प का चुनाव करे, लेकिन अपनी भावनाएं साझा न कर पाने के कारण उसमें असहजता का या अधूरेपन का अहसास रह जाए। सीखने के प्रति लगातार खुले रहने का मतलब यहां ये होगा कि अनुदेशक अपनी शंकाओं, अंतर्द्वंदों, असुरक्षाओं या भय, आदि की भावनाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे और सीखने की दूसरी जगहों में अपने सहयोगियों से इन्हें साझा कर उनकी पड़ताल करे (जैन, 2009)।

- **टी-ग्रुप में कार्य करने के मूल्यों को कायम रखने के लिए प्रतिबद्धता**

टी-ग्रुप की पद्धति और उद्देश्य ये मांग करते हैं कि जिन्हें आमतौर पर टी-ग्रुप के मूल्य कहा जाता है उन तत्वों को कायम रखा जाए, जैसे कि, खुलापन, प्रमाणिकता (authenticity) व समनुरूपता (congruence), व्यक्तियों की स्वायत्तता का सम्मान, सभी सदस्यों के लिए भागीदारी के मौकों में बराबरी, साझी जिम्मेदारी व शक्ति का विभाजन, एक दूसरे को सीखने में मदद करने में ग्रुप को सक्षम बनाना, 'भूमिका की सीमाओं' (role boundaries) को स्वीकार करना, आदि। इन मूल्यों की अपर्याप्त समझ या इनके व्यवहार की अधूरी तैयारी से संभव है कि इन मूल्यों में शिथिलता आ जाए, और टी-ग्रुप की पद्धति और उद्देश्य में भी विकृतियां उत्पन्न हो जाएं।

उदाहरण के लिए, टी-ग्रुप में अक्सर ये होता है कि ग्रुप के सदस्य किसी चुपचाप रहने वाले सदस्य पर अन्य सदस्य ये दबाव डाले कि वो ग्रुप में चल रही घटनाओं की श्रृंखला में अपने विचार साझा करे और अपने बारे में ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी प्रस्तुत करे। अगर अनुदेशक व्यक्तियों की स्वायत्तता का सम्मान करने के मूल्य के बारे में स्पष्ट न हो तो संभव है कि वो इस प्रक्रिया को अपने सक्रिय हस्तक्षेप या चुप्पी से चलने दे, भले ही ऐसा समावेशन करने की मंशा से किया जा रहा हो। इस मूल्य की स्पष्टता और इसे कायम रखने का अर्थ होगा कि अनुदेशक इस प्रक्रिया में शामिल नहीं होगा और इसकी तरफ ध्यान खींचने के लिए किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेगा, और इस तरह ग्रुप को ऐसे विकल्प चुनने में मदद करेगा जो स्वायत्तता के सम्मान के अनुरूप हों।

- **किसी भूमिका में 'स्व' का उपयोग व प्रबंधन**

'स्व' (self) का उपयोग करने का अर्थ है ग्रुप में चल रही प्रक्रियाओं के संबंध में अनुदेशक में जो विचार व मनोभाव उत्पन्न हो रहे हैं उनका इस्तेमाल किसी हस्तक्षेप के लिए जरूरी आंकड़ों के रूप में करना। अगर अनुदेशक पूरे मनोयोग से (यानी विचार, भावनाएं व सचेत 'स्व') के साथ ग्रुप में काम कर रहा है तो उसके लिए किसी प्रक्रिया के विकास को उसकी संपूर्णता में देख पाना संभव हो सकता है, और इससे हस्तक्षेप के विकल्पों का दायरा बढ़ जाता है।

इस योग्यता के लिए जरूरी है कि अनुदेशक अपने मनोभावों की दशा के प्रति जागरूक हो और उसे अपने 'स्व' के बौद्धिक या ज्ञानात्मक हिस्से से जोड़ पाए ताकि उसके समेकित 'स्व' को पूरी प्रक्रिया के विकास का अनुभव करने के लिए और हस्तक्षेपों के बारे में चुनाव करने के लिए उपयोग किया जा सके। इसके अभाव में, संभव है कि अनुदेशक किसी अनचाही प्रक्रिया को शुरू करने में योगदान दे बैठे क्योंकि अनुदेशक का 'स्व' टी-ग्रुप के काम की अवधारणात्मक स्पष्टता से पूरी तरह एकरूप नहीं हो पाया है।

उदाहरण के लिए, अगर अनुदेशक का अस्तित्व सदस्यों द्वारा साझा की गई किसी बीती घटना की तरफ खिंच जाता है और सहयोगी मनोभाव उसे 'वहां-और-तभी' (there-and-then) घटनाओं से सक्रिय या यहां तक कि खामोशी के साथ भी जोड़ देते हैं तो ऐसी स्थिति में 'यहां-और-अभी' (here-and-now) के आंकड़ों पर ध्यान देने के लिए बहुत कम ऊर्जा बचेगी।

'स्व' के प्रबंधन का अर्थ है कि अनुदेशक व्यक्तिगत जरूरतों, इच्छाओं व चिंताओं को इस तरह संभालता है कि उसका ध्यान अनुदेशन की भूमिका पर केंद्रित रहे। शक्ति, दृश्यता, पहचान, स्वीकार्यता, संबद्धता या यहां तक कि लोगों की देखभाल करने की इच्छाएं हम सभी में मौजूद होती हैं। लेकिन अनुदेशक को अपने अंदर इतनी जागरूकता विकसित करनी होती है कि वो जब इस भूमिका में हो तब इन इच्छाओं की पहचान कर उनकी जरूरतों को पूरा करने के कार्य (जो टी-ग्रुप के उद्देश्य, पद्धति व मूल्यों के संदर्भ में अनुचित है) से खुद को पीछे खींच सके।

उदाहरण के लिए, किसी सह-अनुदेशक के साथ काम करने के दौरान, संभव है कि दृश्यता व पहचान बनाने की अनियंत्रित व्यक्तिगत जरूरत प्रतियोगिता और हावी होने के प्रयासों को जन्म दे जिसके चलते अनुदेशक बार-बार अपने सह-अनुदेशक के हस्तक्षेप के तुरंत बाद हस्तक्षेप करने लगे जिससे ग्रुप के सदस्यों के लिए द्वंद्व की स्थिति बन जाए। 'स्व' को संभालने के लिए उस भूमिका की नैतिक सीमाओं के प्रति और भी ज्यादा जागरुक होने व उनको बनाए रखने की जरूरत होती है, यहां तक कि उन परिस्थितियों में भी जब अपनी निजी जरूरत के लिए इस भूमिका की शक्ति के प्रयोग के खूब प्रलोभन हों। अनुदेशक के लिए जरूरी है कि वो अपनी व्यक्तिगत जरूरतों की देखभाल के लिए 'क्लिनिकिंग' व सहकर्मियों के साथ घुलने-मिलने की दूसरी जगहों का उपयोग करना सीखे।

- **विविधता व समावेशन की प्रक्रिया के प्रति संवेदनशीलता**

टी-ग्रुप सीखने की वो जगह है जिसका मकसद निष्पक्षता व न्याय का ऐसा वातावरण बनाना होता है जहां लिंग, वर्ग, जाति, क्षमताओं, यौन रुझानों, संवाद के व्यक्तिगत तौर-तरीकों, आदि जैसी विभिन्न किस्म की विविधताओं के साथ किसी भेदभाव व बहिष्करण के बिना और उपलब्ध अवसरों में कमी लाए बगैर सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जाता है। सीखने और साथ ही योगदान देने के लिए इस तरह के वातावरण को बनाने के लिए अनुदेशक को विविधता के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए, ग्रुप के सदस्यों व इसकी प्रक्रियाओं में अवांछित पूर्वाग्रह/भेदभाव की पहचान करने में सक्षम होना चाहिए, और इन प्रक्रियाओं के प्रति ग्रुप को जागरुक करने व इनका सामना करने में उसे सक्षम बनाने के लिए जरूरी हस्तक्षेप करना चाहिए (जैन 2009)।

इसका एक उदाहरण लैब में अक्सर उत्पन्न होने वाली लैंगिक प्रक्रिया का हो सकता है। कुछ अभिव्यक्तिकुशल व स्पष्टवादी महिला प्रतिभागी अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति, खोज-बीन, सामना करके और दूसरे सदस्यों को इसमें भाग लेने के लिए आमंत्रित करके सीखने के लिए तत्पर शिक्षार्थी की भूमिका अपनाने की कोशिश करती हैं जबकि कुछ पुरुष सलाहकार की भूमिका निभाते हैं और संभव है कि खुद कोई जोखिम उठाए बिना ही बाद में इन महिलाओं पर ये लेबल लगाएं कि वो आक्रामक हैं या हावी होना चाहती हैं। ऐसे मामले में, लैंगिक प्रक्रियाओं के प्रति संवेदनशील अनुदेशक इस प्रक्रिया में मिलीभगत करने से बचेगा और ग्रुप का ध्यान इसकी तरफ आकर्षित करेगा।

इस योग्यता को विकसित करने के लिए अनुदेशक के लिए जरूरी है कि वो अपनी विकास-यात्रा में विविधता के विभिन्न आयामों पर आधारित समावेशन अथवा बहिष्करण की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के संबंध में खुद अपने पूर्वाग्रहों, पक्षपातों और कमजोरियों के प्रति और ये किस तरह ग्रुप के वातावरण को प्रभावित करते हैं इसके प्रति जागरुक बने।

- **प्रभुत्व की प्रक्रियाओं की पड़ताल को समर्थन देने की क्षमता**

“टी-ग्रुप में सदस्य सहयोग देने और लेने की कुशलता का विकास खुद ही करते हैं। प्रतिभागी अनुदेशक या अध्यापक से व्यक्ति और समूह के विकास में सहयोग देना सीखते हैं” (बेन 1964; 2)

टी-ग्रुप की प्रक्रिया समूह के काम के प्रति साझे अधिकार व जिम्मेदारी के दृष्टिकोण पर टिकी होती है। इसलिए सीखने की दूसरी स्थितियों की तुलना में यहां अनुदेशक की सत्ता, विशिष्टता और शक्ति अलग प्रकार की होती है। इस नजरिए को व्यवहार में लाने के लिए जरूरी है कि अनुदेशक ने अपनी मान्यताओं व सत्ता के अलग-अलग मॉडलों के संबंध में कुछ तैयारी की हो और वो विशेषज्ञ के रूप में देखे जाने या प्रशंसित आदि किए जाने की व्यक्तिगत जरूरतों को संभाल सके ताकि वो सीखने का प्राथमिक स्रोत बन जाए।

अक्सर टी-ग्रुप के शुरुआती चरण में और कभी-कभार बाद में भी, ग्रुप अनुदेशक से दिशा-निर्देश की प्रकट या अप्रकट इच्छा कर सकता है। ऐसी मांग के सामने झुकने की बजाय जरूरत ये होती है कि अनुदेशक इस तरह हस्तक्षेप करे कि सत्ता के संबंध में ग्रुप में बने मॉडल / मान्यताओं की, और साथ ही व्यक्तिगत सत्ता के प्रयोग से इनके परिणामों की पड़ताल करने की गुंजाइश बन सके ताकि सदस्य सिर्फ अनुदेशक या कुछेक गिने-चुने लोगों पर निर्भर न हों और शिक्षार्थी की भूमिका में हर सदस्य से योगदान लेने में सक्षम बने। जैसा कि ब्रैडफोर्ड, गिब और बेन कहते हैं, “प्रशिक्षक का अधिकतर व्यवहार... इस प्रयास में होता है कि ज्यादा से ज्यादा शक्ति ग्रुप में निहित हो” (बेन, 1964; 459)।

- **टी-ग्रुप पद्धति व उद्देश्य की अवधारणात्मक स्पष्टता व उसका सुदृढ़ आधार**

अनुदेशक को टी-ग्रुप के प्राथमिक उद्देश्य और उसकी पद्धति के प्रति स्पष्टता होनी चाहिए जिसमें असंगठित समूह प्रक्रियाओं की अवधारणा, ‘यहां-और-अभी’ पर ध्यान केंद्रित किए रहना, और टी-ग्रुप व व्यक्तिगत सदस्यों के साथ काम करना शामिल हैं। अगर अनुदेशक इस अवधारणात्मक स्पष्टता से लैस होगा तो वो टी-ग्रुप पद्धति व उद्देश्यों का समर्थन कर पाएगा और अपने अंदर से या ग्रुप की तरफ से पड़ने वाले दबावों के आगे घुटने नहीं टेकेगा।

उदाहरण के लिए, यदि सदस्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनुदेशक पर ये दबाव डालते हैं कि वो उनकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी ही ले ले तो ‘यहां-और-अभी’ पर केंद्रित रहने के प्रति स्पष्टता के अभाव में कुछ अनुदेशक सदस्यों के जीवन के दुख-दर्द से उनको निजात दिलाने को ही अपने काम का उद्देश्य बना लेते हैं।

ब्रैडफोर्ड, गिब व बेन ‘उपचार-ग्रुप’ और टी-ग्रुप में अंतर पर जोर डालते हुए कहते हैं: “यहां तक कि ...जहां प्रशिक्षक के ऊपर किसी मनोचिकित्सक जैसा बनने का प्रलोभन सर्वाधिक हो, उसकी मूलभूत भूमिका समूह के परामर्शदाता की है जो अपने सभी सदस्यों के लिए सीखने का प्रभावी वातावरण बनाने की कोशिश कर रहा है...उसका केंद्रीय कार्यभार ग्रुप के साथ काम करना है ताकि वो सामुहिक व व्यक्तिगत रूप से सीखने में सक्षम हो सके।”

‘समूह विकास’ के सिद्धांतों की जानकारी से अनुदेशक ये सीख पाएंगे कि किस तरह व्यक्तिगत व्यवहारों को मात्र उस व्यक्ति के व्यक्तित्व से जोड़कर देखने की बजाय इस संदर्भ में समझा जाए कि उस व्यक्ति के माध्यम से पूरा समूह क्या करना चाहता है अथवा क्या करने से बच रहा है।

- **अंतःव्यैयक्तिक, अंतर्व्यैयक्तिक और समूह के स्तर पर हस्तक्षेप करने की क्षमता**

अनुदेशक में उन प्रक्रियाओं को पहचानने की क्षमता विकसित होनी जरूरी है जो संभव है कि कई स्तरों पर यानी अंतःव्यैयक्तिक, अंतर्व्यैयक्तिक और समूह के स्तरों पर चल रही हों। साथ ही उनमें किसी एक स्तर पर अथवा अनेक स्तरों पर हस्तक्षेप करने की क्षमता भी विकसित करने की जरूरत होती है। इस क्षमता के बगैर संभव है कि अनुदेशक में किसी एक ही स्तर पर हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति बन जाए वो भी इसलिए नहीं कि उसने ऐसा करने का सचेत निर्णय लिया है बल्कि इसलिए कि उसमें जागरुकता का अभाव है।

चलिए किसी ऐसी स्थिति पर विचार करते हैं जहां टी-ग्रुप का एक सदस्य दूसरे सदस्य के साथ लंबे समय तक इस खोज में लगा हुआ है कि उससे जुड़ाव स्थापित करने में क्या बाधक है और बाकी सदस्य इसे लेकर चुपचाप हैं। अगर अनुदेशक में एक ही साथ अंतर्व्यैयक्तिक व समूहगत प्रक्रियाओं को देख पाने की क्षमता होगी तभी वो बाकी सदस्यों की चुप्पी को समझ पाएगी और इस प्रकार का हस्तक्षेप कर पाएगी जिससे ग्रुप स्तर पर चल रही प्रक्रिया की पड़ताल हो पाए।

कोई भी एक रास्ता सही नहीं होता और अलग-अलग समय में अनुदेशक आंकड़ों व अनुभव के आधार पर प्रतिभागियों को एक-दूसरे के साथ काम करने में सक्षम बनाने के लिए उपयुक्त विकल्प चुन सकती है।

टी-ग्रुप अनुदेशक के रूप में पेशेवर विकास

उपर्युक्त सभी योग्यताओं के विकास के लिए जरूरी है कि संभावित अनुदेशक ‘अनुभव’, ‘चिंतन’, ‘अवधारणा निर्माण’ और ‘प्रयोग’ के अनुभवजनित चक्र से होकर गुजरे, हालांकि ये जरूरी नहीं सभी के लिए सीखने की शुरुआत इस चक्र के किसी एक खास बिंदु पर ही हो। टी-ग्रुप अनुदेशक बनने के सफर की शुरुआत में अलग-अलग व्यक्तियों की तैयारी उनके व्यक्तिगत रुझान और पहले सामने आए विकास के मौकों के आधार पर अलग-अलग होती है।

उदाहरण के लिए, संभव है कि किसी व्यक्ति की टी-ग्रुप की अवधारणात्मक समझ बहुत अच्छी हो मगर उसे ‘स्वयं के स्तर’ (self-level) पर काफी काम करने की जरूरत हो। दूसरी तरफ, कोई दूसरा व्यक्ति अपने ‘स्व’ और दूसरों के प्रति संवेदनशील हो सकता है और संभव है उसने अनुभवजन्य कार्य भी किए हों मगर अवधारणाओं का उसका कोई अनुभव न हों। इसलिए विशिष्ट योग्यताओं को विकसित करने के लिए हर व्यक्ति को अलग-अलग प्रयत्न करने पड़ सकते हैं। लेकिन किसी ‘पेशेवर विकास कार्यक्रम’ (Professional Development Programme) के लिए जरूरी है इन सभी योग्यताओं को एक न्यूनतम स्तर तक हर संभावित

अनुदेशक में विशिष्ट स्तर तक विकसित करना जरूरी है ताकि वे टी-ग्रुप अनुदेशन की जटिलता को संपूर्णता से समझे और उससे जुड़ने में सक्षम बने।

टी-ग्रुप अनुदेशन योग्यता मॉडल (T-Group Facilitation Competencies Model)

ऊपर जिन आठ योग्यताओं का जिक्र किया गया है उनको तीन समूहों में बांटा गया है: 'मैं कौन हूँ' (who am I) समूह मुख्य रूप से अपनी तैयारी पर ध्यान केंद्रित करता है; 'मैं क्या जानता हूँ' (what I know) अवधारणात्मक ज्ञान से जुड़ा है और 'मैं क्या करूँ' (what I do) समूह कैसे हस्तक्षेप किया जाए इससे संबंधित है। संभव है कि कोई योग्यता इन तीनों समूहों से जुड़ी हुई हो, मगर हमने हर योग्यता के लिए एक मुख्य (या प्राथमिक) समूह चिन्हित किया है।

पेशेवर विकास कार्यक्रम में हमने विकास के तीन प्रमुख चरणों की परिकल्पना की है।

- पहले चरण में मुख्यतः वे योग्यताएं हैं जिनका संबंध स्वयं को, दूसरों को और अंतर्व्यक्तिक संबंधों को समझने से है।
- दूसरे चरण में खुद को प्रयोग करना और समूह-स्तर की प्रक्रियाओं ककी समझ से जुड़ी योग्यताएं हैं।
- तीसरे चरण में हस्तक्षेप से जुड़ी योग्यताएं हैं।

ये चरण एक-दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग हों ये जरूरी नहीं, लेकिन इनमें जटिलता व गहनता बढ़ती जाती है। कार्यक्रम में इस बात पर ध्यान रखना होता है कि किसी चरण की योग्यताओं में पर्याप्त दक्षता हासिल करने के बाद ही व्यक्ति अगले चरण में जाए ताकि वो उस चरण की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हो।

नीचे दिए गए चार्ट में हर योग्यता, उसके प्राथमिक समूह और पेशेवर विकास कार्यक्रम में उसे जिस मुख्य चरण में विकसित करना होता है उसका ब्यौरा दिया गया है:

चार्ट 4.1.1 टी-ग्रुप अनुदेशन योग्यता मॉडल

योग्यता	प्राथमिक समूह	पेशेवर विकास का चरण
परस्पर क्रिया-कलाप व संवाद कौशल	मैं क्या करता हूँ	पहले चरण में खास ध्यान और दूसरे व तीसरे चरण में उस पर काम करना
प्रक्रियाओं से सीखने के प्रति खुलापन बरकरार रखना	मैं कौन हूँ	पहले चरण में इसकी शुरुआती योग्यता की जरूरत। हर चरण में इसे मजबूत करना।
टी-ग्रुप में कार्य करने के मूल्यों को कायम रखने के लिए प्रतिबद्धता	मैं कौन हूँ	पहले चरण में शुरुआती योग्यता की जरूरत। दूसरे व तीसरे चरण में अवधारणात्मक स्पष्टता के जरिए इसे मजबूत करना।

किसी भूमिका में 'स्व' का उपयोग व प्रबंधन	मैं कौन हूँ	पूरे कार्यक्रम में इस पर लगातार ध्यान केंद्रित किए रखना। तीसरे चरण में जाने के लिए अपरिहार्य (सह-प्रशिक्षण)
विविधता व समावेशन की प्रक्रिया के प्रति संवेदनशीलता	मैं कौन हूँ	दूसरे चरण में इसके अनुभव पर जोर। तीसरे चरण में अवधारणात्मक स्पष्टता से इसे मजबूत करना।
प्रभुत्व की प्रक्रियाओं की पड़ताल को समर्थन देने की क्षमता	मैं क्या करता हूँ	पहले चरण में अपने भीतर की प्रभुत्व की प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करना। दूसरे व तीसरे चरण में पड़ताल पर जोर।
टी-ग्रुप पद्धति व उद्देश्य की अवधारणात्मक स्पष्टता व उसमें मजबूत आधार	मैं क्या जानता हूँ	दूसरे व तीसरे चरण में और दो चरणों के बीच के लिए किए जाने वाले कार्य में।
अंतःव्यैयक्तिक, अंतर्व्यैयक्तिक और समूह के स्तर पर हस्तक्षेप करने की क्षमता	मैं क्या करता हूँ	दूसरे व तीसरे चरण में अनुभवजन्य तरीके से, जिसमें चरणों के बीच के कार्य के अवलोकनों को शामिल किया जाता है और तीसरे चरण में अवधारणात्मक कार्य किया जाता है।

जैसा कि हम देख सकते हैं, आठ में चार योग्यताएं 'मैं कौन हूँ' इस प्राथमिक समूह की हैं जो ये दिखाता है कि टी-ग्रुप अनुदेशन के प्रशिक्षण में खुद को तैयार करना सबसे महत्वपूर्ण काम है। 'मैं क्या जानता हूँ' और 'मैं क्या करता हूँ' समूह की योग्यताएं भी महत्वपूर्ण हैं लेकिन अगर खुद पर पर्याप्त काम नहीं हुआ हो तो ये अप्रभावी या अपेक्षा से कम असरदार होती हैं। इसलिए चिंतन व टी-ग्रुप की अवधारणात्मक समझ के सहयोग से वस्तुनिष्ठ अनुभव और प्रयोग के जरिए अपने बारे में जानना टी-ग्रुप प्रशिक्षक के रूप में पेशेवर विकास का केंद्रीय तत्व है।

~~~

### 4.3

## अनुदेशन की प्राथमिक साक्षरता – प्रक्रिया अवलोकन

### तेजिंदर सिंह भोगल व रमेश गलोहदा

टी-ग्रुप में सदस्य ऐसे मुद्दों का अवलोकन कर उनपर सार्वजनिक टिप्पणियां करते हैं जिन्हें आमतौर पर मामूली माना जाता है या जिन पर खुल कर बात करना अशिष्ट माना जाता है। इस तरह, अगर ऐसा लगता है कि सुनील संजय से नाराज है मगर इस बात को छिपाना चाहता है; या अतुल अजीज़ को नीचा दिखा रहा है; या बिंदू और बालू दीपू के खिलाफ़ एकजुट हो रहे हैं, तो सदस्य इन अवलोकनों को ग्रुप में साझा करते हैं। रोजमर्रा की ज़िंदगी में इस तरह की टिप्पणियों को सार्वजनिक नहीं किया जाता है (अगर ऐसा वाकई में हो तो भी) क्योंकि हमारी संस्कृति में ये अपेक्षा की जाती है कि किसी को भी सार्वजनिक तौर पर अपमानित न किया जाए। और ऊपर वर्णित किसी भी टिप्पणी (या इससे मिलती-जुलती दूसरी टिप्पणियों) के चलते लोग ऐसा महसूस कर सकते हैं कि उनकी कलाई खोली जा रही है और इससे वे अति संवेदनशील हो सकते हैं।

टी-ग्रुप में अवलोकन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि इसका उद्देश्य प्रतिभागियों के व्यवहार संबंधी आंकड़ों को साझा करना होता है ताकि वे इस पर चिंतन कर सकें और संभव हो तो अपनी अंतर्जात मान्यताओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों और विश्वासों को चुनौती दे सकें।

### समूह में अवलोकन की जरूरत क्यों?

लैब में कई तरह की घटनाएं हो रही होती हैं, जैसे बातचीत, चीखना-चिल्लाना और किसी का परेशान होना। कभी बिल्कुल शांति छा जाती है, तो कभी ठहाके, खिलखिलाहटें, तनाव और यहां तक कि आंसू भी बहाए जाते हैं। इन सबको ऐसी बेतरतीब घटनाओं की तरह देखा जा सकता है जिनकी चर्चा हम शाम को दोस्तों के साथ करते हैं। दूसरा तरीका है इन्हें किसी व्यक्ति, दो या दो से ज्यादा व्यक्तियों या ग्रुप के स्तर पर चल रही किसी प्रक्रिया या प्रक्रियाओं के हिस्से के रूप में देखें। अब सवाल ये उठता है कि हम ये कैसे जाने कि कुछ घटनाएं किसी प्रक्रिया का हिस्सा हैं न कि बेतरतीब घटनाएं? इसका जवाब अवलोकन की प्रक्रिया की हमारी समझ में निहित है।

### अवलोकन करना क्या होता है?

अवलोकन करने में निम्न तीन चीजें शामिल हैं –

- जो घटनाओं चल रही हैं उनसे जुड़े आंकड़ों को नोट करना – जैसे कि व्यवहार, अभिव्यक्त किए गए मनोभाव व विचार। जब ये आंकड़े ग्रुप को उपलब्ध कराए जाएंगे तो संबंधित व्यक्ति उस पर विचार कर सकेंगे। इस तरह, अतुल के लिए ये जानना उपयोगी हो सकता है कि उसके नकारने के बावजूद दूसरे

लोगों ने अजीज़ के प्रति उसके रोष को महसूस किया है। या हो सकता है सुनील को ये जानना दिलचस्प लगे कि उसके व्यवहार से इंगित हो रहा था कि वो संजीव की अनदेखी कर रहा है।

- अलग-अलग किस्म के आंकड़ों को एक सुसंगत क्रम में पिरोना। संभव है कि इस तरह के आंकड़ों से ये दिखे कि जब भी दीपू कुछ कहता है तब बिंदू या बालू उसका विरोध करते हैं, और उसके विरुद्ध दूसरों का समर्थन करते हैं। या ये कि गौतम सिर्फ अनुदेशक (facilitator) की बात को और विस्तार से समझाने के लिए ही बोलता है।

इस तरह के अवलोकन संभावित प्रक्रियाओं की तरफ इशारा करते हैं। हो सकता है कि बिंदू और बालू इसलिए साथ काम कर रहे हैं क्योंकि वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित हों। संभव है कि दीपू का बिंदू के प्रति विरोध उनके बीच चल रहे नेतृत्व के संघर्ष को दर्शाता हो। संक्षेप में कहें तो जब किसी प्रवृत्ति की पहचान कर उसे चिन्हित किया जाता है तो उस प्रक्रिया की समझ बनती है।

- कोई घटना बार-बार क्यों हो रही है इसकी तार्किक व्याख्या या परिकल्पना प्रस्तुत करना। अवलोकन करते समय अवलोकनकर्ता अपनी जागरुकता को बढ़ाता है। ये अपनेआप में ऐसी महत्वपूर्ण क्षमता है जिसे टी-ग्रुप के सभी प्रतिभागी को विकसित करनी होती है। अवलोकन करना और उनको साझा करना टी-ग्रुप में बदलाव का प्रमुख माध्यम है।

## अंतर्दृष्टि, मत और अनुमान

ये जरूरी नहीं कि हर हस्तक्षेप ग्रुप में चल रही घटनाओं के अवलोकन पर ही आधारित हो। कभी-कभार ग्रुप में घटित किसी घटना की प्रतिक्रिया में अनुदेशक के व्यक्तिगत मनोभाव भी हस्तक्षेप का आधार बन सकते हैं। संभव है कि इस संबंध में आंकड़े अस्पष्ट हों और संबंधित प्रक्रिया अभी शुरू ही हुई हो। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि सहज द्वारा आंकड़ों के साथ की गई हेर-फेर से अनुदेशक नाराज हो, और ग्रुप के साथ वो अपनी नाराजगी साझा करे। जब हम सीखने की प्रक्रिया पर इस तरह के हस्तक्षेप के प्रभाव की जांच करते हैं तो ऐसे में आंकड़ों पर आधारित अवलोकनों को अनदेखा करना मुश्किल हो जाता है। मनोभावों पर आधारित हस्तक्षेप सदस्यों को अनुदेशक के मानवीय पक्ष को समझने में मदद करते हैं और साथ ही सदस्यों को इस तरह के मनोभावों को पहचानना और उनको प्रकट करना भी सिखाते हैं। ये समझना बहुत जरूरी है कि जब पर्यवेक्षक अपने मनोभावों के प्रति जागरुक नहीं होते हैं तो उनके अवलोकन इन अंतर्निहित मनोभावों से प्रभावित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर सुशील के जैस्मिन से बात करने पर मुझे ईर्ष्या होती है तो मैं ये कह सकता हूं कि सुशील जैस्मिन के साथ कोई चालाकी कर रहा है, और सुशील के संबंध में मेरी हर टिप्पणी इस निष्कर्ष के आधार पर ही प्रस्तुत की जाएगी।

ये अवलोकन और मत (judgement) या निष्कर्ष (inference) के अंतर को सामने लाता है: अवलोकन किसी प्रक्रिया के संबंधित आंकड़ों पर आधारित होता है जबकि 'मत' उसके कारणों के बारे में हमारी राय दिखाता है। उदाहरण के लिए, सुशील की मुस्कुराहट एक उपलब्ध आंकड़ा हो सकता है जिससे पता चलता है कि वो ग्रुप के

सदस्यों से बातचीत करते समय हमेशा मुस्कुराता रहता है। और अगर मैं सुशील के प्रति ईर्ष्या का भाव नहीं रखता तो ये अनुमान लगाता कि वो सबके प्रति मित्रवत व्यवहार बनाने के लिए ऐसा करता है। लेकिन अगर मुझे उससे ईर्ष्या है तो मैं मानूंगा कि वो फायदा उठाने के लिए ऐसा कर रहा है।

### अवलोकन कौन करता है? और कब?

प्रत्येक व्यक्ति अवलोकन करता है: चाहे वो प्रतिभागी हों, अनुदेशक हों, या कभी-कभार उपस्थित होने वाले 'पेशेवर विकास कार्यक्रम' (PDP) के मनोनीत पर्यवेक्षक। ये बात ज़ाहिर है मगर इसके कुछ आयामों को ध्यान में रखना जरूरी है –

- हर व्यक्ति व्यवहारों व मनोभावों पर ध्यान देने का अभ्यस्त नहीं होता और इस मामले में लोगों की क्षमताओं में भारी भिन्नता होती है। जबकि कुछ लोग इन्हें नजरअंदाज करने के आदी हो जाते हैं, दूसरे इन पर ध्यान देने की क्षमता बनाए रखते हैं। अनुदेशक व्यवहारों व मनोभावों, दोनों पर ही नजर रखने की कोशिश करते हैं; और मनोनीत पर्यवेक्षक ये कौशल विकसित करने की प्रक्रिया में होते हैं।
- कुछ लोग व्यवहारों व मनोभावों पर ध्यान देने की क्षमता बरकरार रखते हैं। लेकिन सांस्कृतिक मूल्यों (cultural norms) के चलते वे ग्रुप में अपनी बात सामने नहीं रखते। दूसरी तरफ अनुदेशकों को मितभाषी न होने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इसलिए वे अपनी भूमिका के तहत कोई टिप्पणी कर सकते हैं। पर्यवेक्षक अवलोकन करके अपनी टिप्पणी को नोट कर सकते हैं (ये जरूरी नहीं कि उसकी टिप्पणी को ग्रुप के सामने रखा ही जाए)।
- जैसे-जैसे टी-ग्रुप आगे बढ़ता है ऐसे मूल्य विकसित होते हैं जो सांस्कृतिक अनुकूलन को दरकिनार कर सदस्यों को अपनी बात सामने रखने के लिए उत्साहित करते हैं।
- जब अवलोकन सामने आने लगते हैं तो शांत रहने वाले सदस्यों को भी अचानक ये अहसास होता है कि वे भी घटनाओं व प्रक्रियाओं को 'देखने' लगे हैं।

### अवलोकन करने और उसे दर्ज करने की पद्धति

कुछ लोग अपने अवलोकन को याद रखते हैं जबकि कुछ उन्हें अपनी नोटबुक में दर्ज कर लेते हैं। हालांकि याद रखने की क्षमता हमें बहुत प्रभावित करती है, बल्कि आदर्श ही लगती है, लेकिन ऐसे बहुत से कारण गिनाए जा सकते हैं जो ये दिखाते हैं कि नोटबुक में अवलोकन दर्ज करने से सूचनाएं ज्यादा बेहतर पकड़ पाते हैं। इससे सूचना के खोने का खतरा नहीं रहता। नोट करने से प्रवृत्तियों को पहचानना आसान हो जाता है चाहे वे सरल हों या जटिल। लेकिन सूचनाएं लिखने की प्रक्रिया में व्यक्ति का ध्यान 'अभी-और-यहीं' (here-and-now) से हट जाता है। सूचनाएं दर्ज करने का तरीका अलग-अलग हो सकता है, जैसे कि लोगों की कही बातें नोट करना, रेखाचित्र या फ्लो-चार्ट बनाना। पर्यवेक्षक जहां तक संभव हो किसी तरह का खलल डाले बिना यथासंभव सूचनाएं दर्ज करते हैं।

## अवलोकन साझा करना

वे व्यवहार, मनोभाव और अभिव्यक्त किए गए विचार जिनका अवलोकन किया गया है उनका बिना लाग-लपेट के यथार्थपरक विवरण करना होता है, उदाहरण के लिए, "सुनील जब संजीव से बात कर रहा था तो उसके चेहरे पर गुस्से का भाव था, और अज़ीज़ से बात करते समय वो उसकी तरफ नहीं देख रहा था। ये लैब में आमतौर पर वह जिस तरीके से बातचीत करता रहा है उससे भिन्न है; वो सामान्यतः मुस्कराता था या कम-से-कम जिससे बात कर रहा है उसकी तरफ देखकर बात करता था..." अथवा, "कल से आज तक दीपू तीन बार बोला है, और जब भी वो कुछ बोला तो बिंदू उससे असहमत हुई; और हर बार बालू बिंदू का समर्थन करता है।" अपने कथन की जिम्मेदारी लेते हुए अवलोकन करने वाला ये जोड़ सकता है, "...और मैंने इसे जिस तरह देखा वो ये है..."। अर्थात् संभव है कि कोई आयाम उससे छूट गया हो। यह कहा जाता है कि अवलोकनकर्ता का काम है सूचनाओं को सबके सामने प्रकट करना।

जब अवलोकनकर्ता को आंकड़ों में कोई खास प्रवृत्ति दिखाई देती है तब उसके अर्थ निकाले जाते हैं। चूंकि जो प्रक्रिया चल रही है उसके अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं इसलिए किसी एक अर्थ को को सिर्फ एक संभावित अनुमान की तरह सामने रखना उचित होता है। कई अनुमान प्रस्तुत करने का फायदा ये है कि प्रतिभागी अनुदेशक के विचार के दायरे में जकड़े बिना आगे विचार करने में समर्थ होते हैं। यहां पर्यवेक्षक ये कह सकते हैं कि "विचारणीय संभावना ये है कि ग्रुप में नेतृत्व से संबंधित प्रश्न पर प्रक्रिया चल रही है" और वो इस संभावना की पुष्टि के लिए ये आंकड़ा रख सकता है कि "बिंदू के दीपू से असहमत होने का और उसे बार-बार चुनौती देने का ये एक कारण हो सकता है।"

## अधिगम चक्र में अवलोकन की भूमिका

जब लैब में किसी घटना पर सबके सामने कोई टिप्पणी की जाती है तो वो टिप्पणी किसी घटना या प्रवृत्ति या दोनो को ही उभार देती है। इसके बाद लोग उस पर चिंतन करना शुरू कर सकते हैं। इस प्रकार संभव है कि मैं अपने ही व्यवहार पर और गहराई से मनन करूं। "क्या मैंने अमित के खिलाफ़ अपने गुस्से को अजीत पर निकाल दिया? क्या ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि अजीत कमजोर और निसहाय दिख रहा था? क्या मैंने सचिन के खिलाफ़ दीपा को समर्थन देना इसलिए शुरू कर दिया क्योंकि मैं सचिन से नाराज था? क्या मैंने ग्रुप में चल रही गतिविधियों से अपने आपको इसलिए काट लिया क्योंकि मेरे पिछले सुझाव को नजरअंदाज किया गया?"

जब ऐसी टिप्पणियां मेरे समक्ष की जाती हैं तो मेरे लिए जरूरी हो जाता है कि मैं उन पर मनन करूं और अपने बारे में एक नया नजरिया विकसित करूं। उदाहरण के लिए, अगर मेरी अपने बारे में ये राय है कि मैं एक सीधा-सादा व्यक्ति हूं न कि चालाक किस्म का व्यक्ति, तो इस टिप्पणी के बाद मुझे ये तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कम-से-कम कुछ स्थितियों में तो मैं चालाकी दिखाता ही हूं। इस तरह मैं अपने बारे में एक नया नजरिया बनाना शुरू करता हूं!

मैं अपनेआप से ये सवाल भी पूछना शुरू कर देता हूँ कि क्या मुझे अपना ये चालाक 'स्व' पसंद है। हो सकता है कि इस बिंदु पर मैं ये निर्णय लूँ कि मुझे अपनी ये छवि पसंद नहीं है। बेहतर होगा कि मैं ईमानदारीपूर्वक इस चालाकी को छोड़ दूँ। ये अगले कदम के ओर ले जाता है: मैं सोचने लगता हूँ कि चालाकी से आगे बढ़ने के लिए मुझे किस चीज की जरूरत होगी। मैं अपनी प्रतिक्रियाओं की बेहद सावधानी से पड़ताल करने लगता हूँ। मैं समझने लगता हूँ कि कब मुझे गुस्सा आता है, और किस पर आता है, और उस समय मुझे किस चीज से उत्तेजना होती है।

जल्द ही मैं एक नए दृष्टिकोण से प्रयोग कर रहा होता हूँ। साथ ही साथ इस दौरान मैं अपना 'अधिगम चक्र' (learning cycle) भी पूरा कर रहा होता हूँ। ये चक्र तब शुरू हुआ था जब मैं बिना किसी बात के अजीत से नाराज हो गया था। अगला चरण अवलोकन और चिंतन का था जब किसी और ने मेरे व्यवहार का अवलोकन किया और अपने बारे में उसकी सूचना पर मैंने चिंतन किया। मैंने पाया कि असल में मुझे गुस्सा अमित के कारण आया मगर अपना गुस्सा मैंने उसपर नहीं बल्कि अजीत पर निकाला। इस चिंतन से मैं अपने व्यक्तित्व के बारे में एक दृष्टिकोण पर पहुंचा। एक ऐसा दृष्टिकोण जो मुझे स्वीकार्य नहीं था। अब अपने असल व्यवहार और वांछित व्यवहार को मिलाने के लिए मैंने एक नए दृष्टिकोण और व्यवहार के साथ प्रयोग करना शुरू किया; यानी दूसरों पर अपना गुस्सा निकालने की बजाय मैंने उस व्यक्ति का सामना करना शुरू किया जिसके व्यवहार के कारण मुझे उसपर गुस्सा आया था।

~~~


4.4

चिंतनशील लेखन – डायरी, लॉग, पुस्तक समीक्षा व ज्ञानात्मक नक्शे

तेजिंदर सिंह भोगल

पेशेवर विकास कार्यक्रम (Professional Development Programme - पीडीपी) में सीखने और चिंतन में सहयोग करने वाले चार प्रकार के लेखन कार्यों में शामिल कुछ खास तत्वों को मैं यहां प्रस्तुत करूंगा।

लॉग लिखना

‘लॉग’ (रोज़नामचा) रखने की शुरुआत जहाज चालन से जुड़ी हुई है। जहाजों के कप्तान ‘लॉग’ लिखते थे जिसमें हर घंटे जहाज कि वास्तविक गति, उसकी स्थिति और जहाज पर हुई खास घटनाओं को दर्ज किया जाता था।

इसी तरह लैब में प्रतिभागी के जो भी अनुभव होते हैं उसके रेकार्ड को ‘लॉग’ कहते हैं। इसमें लैब में घटित सभी घटनाओं का विवरण हो सकता है, जैसे, किसने क्या किया, कौन चिल्लाया, कौन रूठ गया आदि। साथ ही अनुदेशक (facilitator) द्वारा लिए गए विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेपों और मौन अंतराल, आदि का भी जिक्र हो सकता है।

कई अनुदेशक कहते हैं कि रोज़नामचे में विशिष्ट विषयों को ठीक से दिखाने के लिए विस्तृत विवरण दिए जाने चाहिए, लेकिन अगर कायदे से देखा जाए तो ये एक प्रकार से डायरी (journal) लिखने जैसा हो जाता है। हालांकि इस पर बहस हो सकती है। कुछ लोगों के अनुसार लॉग में प्रक्रियाओं पर ध्यान होना चाहिए जबकि डायरी एक तरह का रोज़नामचा होनी चाहिए। अगर दोनों शैलियों के लेखन के अंतर को ध्यान में रखा जाए तो इन शब्दावलियों में हेर-फेर से कोई फर्क नहीं पड़ता। लॉग लिखने का एक और तरीका ये हो सकता है कि उसे डायरी लेखन से निकले निचोड़ की तरह देखा जाए। ऐसी स्थिति में बेहतर होगा कि लॉग को लैब के कुछ हफ़्तों बाद लिखा जाए ताकि उस व्यक्ति को अपने अनुभव आत्मसात करने का मौका मिल जाए। एक और आसान तरीका जो सुझाया गया है वो ये है कि अपने बारे में, दूसरों और ग्रुप के बारे में अलग-अलग लिखा जाए।

डायरी लिखना

डायरी में किसी व्यक्ति द्वारा लैब में चिन्हित कुछ खास विषयों और प्रक्रियाओं पर किए गए चिंतन को शामिल किया जाता है। इस प्रकार डायरी का उपयोग अंतःव्यैयक्तिक (intra-personal) विषयों, उदाहरणार्थ अपने मनोभावों पर चिंतन के लिए किया जाता है, या “मैं ज्यादातर किस तरह के मनोभावों को अभिव्यक्त करता हूँ? या बिल्कुल ही नहीं करता हूँ?” जैसे सवालों पर चिंतन के लिए किया जाता है या फिर इसका उपयोग समूह-स्तर के विषयों पर चिंतन के लिए भी किया जा सकता है, उदाहरणार्थ कुछ इस तरह के सवाल उठाकर: “लिंग

(जेंडर) का विषय यानी पुरुषों व महिलाओं से अलग-अलग अपेक्षाएं लैब में आपसी क्रियाकलापों में कैसे परिलक्षित होती हैं?"

वैसे तो व्यक्ति लिखने के लिए अपने-अपने विषय खुद चुन सकते हैं लेकिन कुछ स्थितियों में अनुदेशक प्रतिभागियों के समक्ष सवाल रखते हैं जिन पर प्रतिभागियों को चिंतन करने का अवसर मिलता है। इसके उदाहरण हैं, "कल आपने लैब में किस-किस प्रकार से जोखिम उठाया?" अथवा "लैब में आपने कल किस तरह की प्रतिरक्षा प्रणालियों (defense mechanism) का प्रयोग किया?" व्यवहार में डायरी और लॉग में काफी समानताएं होती हैं।

पुस्तक समीक्षा लिखना

जिन चार प्रकार की लेखन शैलियों का यहां जिक्र किया गया है उनमें से पुस्तक समीक्षा से लोग सबसे ज्यादा परिचित होते हैं। हालांकि यहां पुस्तक समीक्षा अखबारों व पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली समीक्षाओं जैसी लग सकती है मगर इनमें विशिष्ट अंतर होते हैं जिन्हें समझना बेहद जरूरी है।

किसी भी अन्य समीक्षा की ही तरह 'पीडीपी' में भी किताब के प्रमुख बिंदुओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत किया जाता है और संभव हो तो किताब के प्रस्तुतिकरण की तुलना उसके समकक्ष किसी किताब से की जाती है। संक्षेप में किसी पुस्तक समीक्षा को पढ़ते हुए पाठक को केवल यही अंदाजा नहीं हो जाना चाहिए कि किताब किस बारे में है बल्कि उसे ये भी पता चल जाना चाहिए कि उस किताब को पढ़ने में समय लगाना उसके लिए उचित होगा या नहीं।

लेकिन ये पूरी बात नहीं है। 'पीडीपी' के संदर्भ में लिखी पुस्तक समीक्षा में ये भी दिखाना जरूरी है कि समीक्षक पर किताब का क्या असर हुआ। उससे किस तरह की अंतर्दृष्टि उसमें उत्पन्न हुई? किताब लैब की कौन सी प्रक्रियाओं की स्मृति जगा रही थी? आदि सवाल। जिन प्रक्रियाओं पर लेखक अपनी टिप्पणी करे वो संभव है कि किसी व्यक्ति के भीतर चल रही हों, दो व्यक्तियों के बीच चल रही हों, समूह के स्तर पर चल रही हों अथवा पूरे समाज के स्तर पर चल रही हों।

चलिए मैं अपने ही कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत करता हूं – मैंने ब्रैडफोर्ड (1964) को समीक्षा करने के लिए पढ़ा था। उसमें एक केस को पढ़ते हुए, जिसमें एक खास लैब का जिक्र था जहां व्यक्ति एक-दूसरे के साथ चालबाजियां कर रहे थे, मुझे अचानक याद आया कि किस तरह मैं भी एक बार इसका शिकार बनने वाला था; और मेरे अंदर वो क्या था जो मुझे दूसरों के छल-कपट का आसान शिकार बना देता था। तो इस प्रकार जब मैंने वो समीक्षा लिखी तो इस अंतर्दृष्टि को अपने व्यक्तित्व में शामिल भी किया।

ज्ञानात्मक नक्शे बनाना

नक्शा बनाना किसी प्रक्रिया, जगह, या किसी चीज के हिस्सों को कागज पर दर्शाने की एक पद्धति है। ये दृश्यात्मक (visual) हो सकता है (जैसे कि एटलस में होता है) या लिखित हो सकता है। इस तरह किसी बेहतरीन उपन्यास, जैसे टॉल्स्टॉय के 'वॉर एंड पीस' को हम समाज या व्यक्तियों के समाजशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक यथार्थ को दर्शाने वाले नक्शे की एक पद्धति भी मान सकते हैं।

इस प्रकार, ज्ञानात्मक नक्शा (cognitive map) निहित व्यवहारजन्य यथार्थ को दर्शाने की पद्धति है, जैसे कि आपके तत्कालीन रुझान, मूल्य और मान्यताएं; अपने बारे में आपकी अंतर्दृष्टि; आप जैसे हैं; कौन सी चीजें आपको परेशान या रोमांचित करती हैं। ज्ञानात्मक नक्शे में समय के साथ-साथ हमारे रुझानों व मान्यताओं में आए बदलावों को भी दर्शाया जा सकता है। आमतौर पर ये नक्शे गद्य रूप में लिखे जाते हैं मगर लॉग व डायरी की ही तरह इनमें कविताओं व चित्रों का रचनात्मक प्रयोग किया जा सकता है। किसी व्यक्ति के ज्ञानात्मक नक्शे में शामिल किए जाने योग्य एक बेहतरीन कविता का अद्भुत उदाहरण एड्रीन रिच (1973) की कविता 'सॉन्ग' (Song) की ये लाइनें हैं जिनमें एक महिला के अकेलेपन को दिखाया गया है:

You're wondering if I'm lonely:

OK then, yes, I'm lonely
as a plane rides lonely and level
on its radio beam, aiming
across the Rockies
for the blue-strung aisles
of an airfield on the ocean.

If I'm lonely
it must be the loneliness
of waking first, of breathing
dawns' first cold breath on the city
of being the one awake
in a house wrapped in sleep

(तुम सोच रहे होंगे क्या मैं तन्हा हूं:

सही समझा, हां मैं तन्हा हूं
जैसे कोई हवाईजहाज उड़ता है तन्हा

और सही ऊंचाई पर अपने रेडियो तरंगों के सहारे

रॉकीज़ के पार निशाना लगाए

समंदर के हवाई अड्डे की

नीली धारियों की तरफ।

अगर मैं तन्हा हूँ

तो ये तन्हाई

सबसे पहले जागने की होगी

शहर में भोर की पहली ठंडी हवा में सांस लेने की

नींद की आगोश में लिपटे घर में

जगे हुए पहले शख्स की तन्हाई होगी ये।)

लेखक के सामने खड़े सवाल

लेखक द्वारा लिखी गई किसी चीज़ के तीन संभावित पाठक होते हैं, वह खुद, उसके मेंटर, और ABS पेशेवरों का व्यापक समुदाय। लेखक सबसे पहले अपने बारे में लिखता है क्योंकि वो घटनाओं का और उससे भी ज्यादा अपनी अंतर्दृष्टियों को अपने लिए दर्ज करना चाहेगा। दर्ज हुई घटनाएं एक चेतावनी की तरह होती हैं जबकि अंतर्दृष्टियां आगे की खोजों के लिए प्रेरणा का काम करती हैं।

किसी मेंटर के लिए कैसे लिखना चाहिए इसके कोई निश्चित नियम नहीं हैं। एक अच्छा लेखन, खासकर एक अच्छा लॉग लेखन क्या होता है इसके पैमाने हर मेंटर के अलग-अलग होंगे। उसकी अपेक्षाएं भी बीच-बीच में प्रतिभागी में सीखने के बदलावों व अन्य परिवर्तनों के हिसाब से बदल सकती हैं। कुछ मेंटर इससे खुश हो जाते हैं अगर लेखक सचेत लेखन (consciousness writing) के जरिए किसी प्रक्रिया को पकड़ने में सक्षम रहा है। कुछ दूसरे मेंटर ये पसंद करते हैं कि लॉग या डायरी को विशिष्ट विषयों के इर्दगिर्द केंद्रित किया जाए और हर विषय पर लैब से एक या उससे ज्यादा ठोस उदाहरण देकर समझाया जाए। जब लेखक व्यापक समुदाय के

लिए लिखता है तो एक स्पष्ट ढांचे में रहता है, यानी कि ऐसी शैली जो पेशेवर अनुदेशक और टी-ग्रुप में तुलनात्मक रूप से नए व्यक्ति, दोनों ही समझ सकें।

जहां तक शैली (form) की बात है, लेखक के पास कई विकल्प हैं: वो कविताओं का उपयोग कर सकता है, सचेत लेखन कर सकता है, रेखाचित्र बना सकता है, संवाद (जैसा कि नाटकों में होता है) का प्रयोग कर सकता है, आदि। मुझे याद है मैंने अपने एक लॉग में कविता का प्रयोग किया था। जो कविता मैंने इस्तेमाल की थी वो काफी उपयोगी थी क्योंकि उसमें प्रतीकों के जरिए उन बातों को कहा गया था जो उस समय लैब में घटित हो रही थी। मैंने अपने सहकर्मियों को रेखाचित्र बनाते हुए देखा है जिसमें वे किसने क्या कहा ये दिखाते हैं। मैं ऐसे लोगों की कल्पना कर सकता हूं जो ये दिखाने के लिए कि किसी खास क्षण में वे लैब में किन उतार-चढ़ावों से गुजर रहे हैं जॉयस की तरह सचेत लेखन करते हैं – ये वो प्रक्रिया है जिसे उन्होंने अपने भावनात्मक टूटन को समझने के लिए अपनाई। और मैं उस पर्यवेक्षक के बारे में सोच सकता हूं जो लोगों के संवाद शब्दशः अपने लॉग या डायरी में दर्ज करता है ताकि जो भी कहा गया उसकी बारीकियां व विस्तार प्रस्तुत कर सके।

लेखन और अधिगम चक्र

‘कोल्ब चक्र’ (Kolb Cycle) के संदर्भ में देखें तो लॉग अवलोकन व चिंतन पर, डायरी अवधारणा निर्माण पर ध्यान देते हैं और पुस्तक समीक्षा व ज्ञानात्मक नक्शे चिंतन व अवधारणा निर्माण का मिलाजुला प्रयोग करते हैं। चलिए इसे थोड़ा विस्तार से देखें।

लॉग में प्रतिभागी वास्तविक घटना (सुशील मेरे ऊपर चिल्लाया और मैं उसके बाद चुप रहा) और उस समय प्रतिभागी के मन में क्या चल रहा था (मुझे सुशील पर गुस्सा आया लेकिन मैं उसे जाहिर करने से डर रहा था) दोनों के बारे में लिखते हैं। किसी डायरी या ज्ञानात्मक नक्शे में उसे कई संभावनाओं की खोजबीन करनी पड़ेगी या नए सिद्धांत विकसित करने पड़ेंगे; उदाहरण के लिए एक ऐसा सिद्धांत जो उसके व्यक्तित्व की व्याख्या कर सके (एक ऐसा सिद्धांत जो ‘अच्छे लड़के’ होने की अपनी आत्म-छवि के महत्व और अन्यायपूर्ण व्यवहार होने पर ये ‘अच्छा लड़का’ जो तनाव महसूस करता है उसके बारे में हो)। ये अवधारणा निर्माण का एक उदाहरण होगा।

लॉग या डायरी की तुलना में पुस्तक समीक्षा में अपने अनुभवों के आधार पर लिखने की उतनी गुंजाइश नहीं होती। जो किताब हम पढ़ते हैं वो किसी और के अनुभव, अवलोकन, चिंतन व अवधारणा निर्माण पर आधारित है। जब मैं उसे पढ़ता हूं तो निम्न में से कोई एक काम कर सकता हूं: मैं उसमें वर्णित किसी अवधारणा का प्रयोग अपने किसी अनुभव को समझने के लिए कर सकता हूं। दूसरे शब्दों में मैं अपने अनुभव के बारे में सोचूंगा (चिंतन करना), और फिर उस अवधारणा को अनुभव पर आरोपित करूंगा (अवधारणा निर्माण)। या फिर मैं किसी दूसरे व्यक्ति के अनुभव को पढ़ सकता हूं, और उस पर आधारित अपने चिंतन या अवधारणा निर्माण कर सकता हूं।

कोई पीडीपी प्रतिभागी बार-बार लिख कर चिंतन के इन उपकरणों का उपयोग कर लैब में भागीदारी और प्रयोग के दौरान उनमें जो परिवर्तन होते हैं उनको आत्मसात कर सकते हैं।

~~~

## 4.7

### टी-ग्रुप अनुदेशक – कला की साधना में रत एक कलाकार

*वीना पिंटो*

#### **एक सक्रिय भूमिका के अनेक आयाम**

“टी-ग्रुप अनुदेशक की भूमिका क्या है?”, “किसी मानव प्रक्रिया लैब (Human Process Lab) में अनुदेशन करते समय व्यक्ति को किस चीज़ के प्रति जागरूक रहना चाहिए और सचेत भी?” रोजर श्वार्ज़ (2002) ग्रुप अनुदेशन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें ‘वह व्यक्ति, जिसका चुनाव ग्रुप के सभी सदस्यों को स्वीकार्य होता है, जो काफी हद तक निष्पक्ष होता है और जिसके पास फ़ैसले लेने का सीमित प्राधिकार होता है, वह ग्रुप को अपनी पहचान बेहतर बनाने, समस्याओं को सुलझाने व निर्णय लेने, और ग्रुप को ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए निदान व हस्तक्षेप करता है’। मूर व फ़ेल्ट (1983) इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अनुदेशक ग्रुप में होने वाली चर्चाओं व प्रक्रियाओं पर उनकी विषयवस्तु में उलझे बिना नजर रखता है। अलग-अलग परिभाषाओं में अनुदेशक की भूमिका से जुड़े जो महत्वपूर्ण तत्व उभरते हैं वे इस प्रकार हैं – उसे निष्पक्ष होना चाहिए, न तो वह निर्णायक है और न ही मध्यस्थ। सदस्य क्या कह रहे हैं या क्या नहीं कह रहे हैं और इसका समूह पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इस पर अनुदेशक को ध्यान देना चाहिए। एक विशेषज्ञ के रूप में उन्हें सिर्फ़ ग्रुप में चल रही प्रक्रियाओं यानी ग्रुप कैसे काम कर रहा है इससे सरोकार होता है और वे विषयवस्तु में उलझे बिना यानी ग्रुप क्या कर रहा है इसपर ध्यान दिए बिना ग्रुप को अनुभवों व प्रक्रियाओं पर लगातार चिंतन के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

इसे और स्पष्ट करने के लिए इस भूमिका से जुड़ी कुछ ऐसी बातों के बारे में बात करना भी जरूरी हो जाता है जो नहीं करनी होती हैं। लैब के कुछ उदाहरणों से मैं यह समझाने की कोशिश करूंगी। मैंने कई बार अनुदेशकों को ये कहते सुना है कि वे यह पसंद करेंगे अगर उनको ग्रुप के सदस्य के रूप में देखा जाए व उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए। “क्या यह संभव है?” इसका जवाब है, नहीं। ये भूमिका अपने कार्यों और उद्देश्यों में ग्रुप के दूसरे सदस्यों से बिल्कुल अलग है। ऐसे में अपनी अभिप्रेरणा के प्रति गहरे चिंतन-मनन की जरूरत है क्योंकि इस भूमिका में रहते हुए दूसरे प्रतिभागियों की तरह व्यवहार या प्रतिक्रिया करना अनुदेशकों के लिए वांछनीय नहीं है।

#### ***निष्पक्षता बनाए रखना***

अगर अनुदेशक का ध्यान ग्रुप की विषयवस्तु पर है तो सदस्यों की प्रशंसा या भर्त्सना से भरे हस्तक्षेपों की संभावना होती है। किसी लैब में अनुदेशक ने एक सदस्य की भर्त्सना की क्योंकि वह अपने मोबाइल का लगातार इस्तेमाल कर रही थी जबकि ग्रुप का एक अन्य सदस्य वहां रो रहा था। अनुदेशक की टिप्पणी में कुछ ऐसा भाव था जैसे कि उस सदस्य में दूसरों के लिए संवेदनशीलता ही न हो। बाद में जब ग्रुप का ध्यान उस सदस्य की तरफ गया तो उसने बताया कि एक पुरुष को रोता हुआ देख उसे ठीक नहीं लग रहा था और वो तो कक्ष से ही बाहर चली जाना चाहती थी मगर यह सोच कर कि ऐसा करने से दूसरे सदस्य को बुरा लग सकता है, वो बाहर नहीं गई। मोबाइल का इस्तेमाल उनके लिए वहां से अपना ध्यान हटाने और उस परिस्थिति से खुद को दूर करने का एक तरीका था ताकि वो थोड़ी राहत महसूस कर सकें।

इसकी तुलना एक दूसरी परिस्थिति से कीजिए जब एक प्रतिभागी (मान लेते हैं कि रेनू) लैब में ये बता रही थी कि वो दूसरे प्रतिभागी (कृश) पर तब क्यों हंसी जब वो ग्रुप से बार-बार एक ही काम करवाने की कोशिश कर रहा था। रेनू कहती है: “मैं हंस पड़ी क्योंकि तुम बेवकूफों की तरह एक ही चीज़ पर अटक गए थे।” यहां पर अनुदेशक हस्तक्षेप करता है: “यह समझाना उपयोगी हो सकता है कि बेवकूफ से आपका क्या मतलब है ताकि ये एक फीडबैक की तरह काम आए न कि मूल्यांकन के रूप में।” कभी-कभार ये सोचकर कि किसी प्रतिभागी के कार्य ग्रुप के लिए उचित हैं अनुदेशक उसकी तारीफ़ करते हैं। लेकिन ऐसा अनुदेशक जो सिर्फ़ ग्रुप में चल रही प्रक्रियाओं से सरोकार रखता हो वह प्रतिभागी क्या करते हैं या क्या नहीं करते हैं इसके प्रति कम निर्णयात्मक होगा और सिर्फ़ ऐसे आंकड़े सामने रखेगा जिससे प्रतिभागियों को चिंतन-मनन के लिए प्रोत्साहन मिले। यहां एक प्रतिभागी से कही गई बात का उदाहरण दिया जा रहा है। अनुदेशक: “नितिन ने तीन बार रुकावट डाली लेकिन आप आगे बढ़ते रहें। इस प्रयास के बाद अब आपको कैसा महसूस हो रहा है?”

मेरा मानना है कि लैब में अगर यूरोपियन प्रतिभागी हों जो अनुदेशक के डर या रोब में न आकर उसे अपने समकक्ष मानते हैं तो अनुदेशक के क्रोधित या परोपकारी होने की प्रक्रिया शायद ही घटित होगी। ये भारतीय संस्कृति से बेहद अलग है जहां पदशील व्यक्तियों को आदर से देखा जाता है और चाहे वे कैसा भी आचरण करें उनकी स्वीकार्यता होती है। चाहे अनुदेशक की मंशा कितनी भी अच्छी क्यों न हो पर अगर वो अपने अवचेतन मन में ऐसा मानते हैं तो वे अपनी भूमिका की सीमाएं भूल सकते हैं।

### ***ग्रुप प्रक्रियाओं के प्रति सजगता***

ग्रुप में अनुभवों और प्रक्रियाओं के प्रति चिंतन-मनन और उनके प्रक्रियाकरण को प्रोत्साहित करना अनुदेशक की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। मान लीजिए कोई प्रतिभागी लगातार एक अनुदेशक से संवाद कर रहा है और पूरा ग्रुप मूक दर्शक बना हुआ है। ऐसा होने के थोड़ी देर बाद दूसरे अनुदेशक ने हस्तक्षेप करते हुए सवाल किया, “इस बारे में ग्रुप की क्या राय है कि वो अब बढ़ते क्रम में एक पर्यवेक्षक की भूमिका लेता जा रहा है?”



अनुदेशक के लिए यह बिल्कुल जरूरी नहीं है कि वो ग्रुप में हो रहे व्यक्तिगत अनुभवों को अनदेखा कर उदासीन बना रहे। लेकिन वो इसमें पूरी तरह भी नहीं जुड़ सकता क्योंकि इससे किसी प्रक्रिया में उसके हस्तक्षेप के प्रभाव में कमी आ सकती है। मुझे याद है कि एक लैब में जब मैं एक पुरुष प्रतिभागी मेरे कुछ भी कहने पर नाराज़गी भरी प्रतिक्रिया कर रहे थे जबकि मेरे साथी पुरुष अनुदेशक की लगभग हर बात वो मान रहे थे। मैंने पाया कि मैं इससे खुद भी क्रोधित व रक्षात्मक हो रही थी और मुझे बदला लेने की इच्छा भी हो रही थी, बल्कि कुछ देर के लिए तो मैंने ऐसा किया भी। वहां पर खुद को रोकने, पीछे हटने और ये समझने में कि उनका व्यवहार असल में एक गहरी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है मुझे अपने आत्म-नियंत्रण की सारी ऊर्जा लगानी पड़ गई। मैंने अपने मनोभाव और जिसे मैं एक निहित प्रक्रिया मान रही थी उसके बारे में अपनी परिकल्पना और संबंधित आंकड़े सामने रखें। अनुदेशकों को इस संभावना के प्रति सावधान रहना पड़ता है कि ग्रुप अनुदेशक से व्यक्तिगत स्तर का संवाद बनाकर अचेतन रूप से उन्हें उनकी शक्तिशाली भूमिका से अपदस्थ कर 'भीड़ का हिस्सा' बनाने की कोशिश कर सकता है। प्रतिभागियों में अनुदेशक से व्यक्तिगत संबंध बनाकर (सचेत या अचेत रूप से) उनकी भूमिका से जुड़ी शक्ति को खत्म करने की प्रवृत्ति होती है। एक बुद्धिमान अनुदेशक इस संभावना के प्रति सचेत रहता है।

### शक्ति और अनुदेशक

किसी प्रतिभागी के किसी कथन या कार्य के प्रति व्यंग्यपूर्ण या उपेक्षा के रवैये को अनुदेशक की भूमिका में निहित शक्ति का जानबूझकर या अंजाने में किया गया दुरुपयोग माना जा सकता है। ग्रुप में खुद को खोजने के लिए अपनी परतें खोलते समय प्रतिभागी असुरक्षित महसूस करते हैं। कभी-कभार अनुदेशक की मामूली हरकत, जैसे की मजाक-मजाक में ऐसी जगह बैठ जाना जिसे किसी प्रतिभागी ने चुना हो, को भी अनुचित या दबंगई माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रभावशाली होने के लिए जरूरी है कि अनुदेशक शक्ति संबंधी अपनी जरूरतों को सुलझा चुके हों ताकि ये जरूरतें पूरे ग्रुप के लिए एक मुद्दा न बन जाए। अगर ऐसा होता है तो अनुदेशक की भूमिका पर बुरा असर पड़ता है और ग्रुप के प्रक्रिया स्वातंत्र्य की तरफ बढ़ने में बाधा उत्पन्न होती है।

### अनुदेशन का विरोधाभास

बेने व अन्य (1975) ने सुझाया है कि कोई हस्तक्षेप अपनी चरम सफलता तब हासिल करता है जब *हस्तक्षेप करने वाले और उसपर आश्रित व्यक्ति के बीच संबंध खत्म हो जाए।* इसका मतलब ये है कि ग्रुप उत्तरोत्तर स्वतंत्र रूप से अपने कार्य करने में सक्षम हो जाता है। जब सभी सदस्य एक दूसरे से सीखना सीख जाते हैं तब ग्रुप को अनुदेशक की जरूरत कम पड़ती है और अनुदेशक भी ग्रुप और उसकी प्रक्रियाओं पर भरोसा करके कम हस्तक्षेप करता है। आपसी मतभेदों के साथ ही नहीं बल्कि उनके बीच से रास्ता निकालते हुए मिलजुल कर काम करने के लिए प्रोत्साहित करने वाले हस्तक्षेपों के जरिए अनुदेशक ग्रुप में स्वतंत्रता और फिर परस्पर-

निर्भरता का विकास कर सकता है। अपने उदाहरण को आगे बढ़ाते हुए देखें तो उसके बाद रेनू कहती है, “तुम उसके बेहद करीब थे ... तुम कुछ साबित करना चाहते हो मगर चीजों को करने का बस एक ही तरीका अपनाते हो।” इस पर कृश अपनी बात समझाने लगता है। अनुदेशक (कृश से कहता है): “अभी ग्रुप के केवल एक ही व्यक्ति ने आपसे कुछ कहा है। क्या आप जानना चाहेंगे कि दूसरे क्या सोचते हैं?”

गोलेंबीवस्की और ब्लुमबर्ग (1993, पृ. 123) ऐसी तीन विरोधाभासी कार्यों के बारे में बताते हैं जो किसी अनुदेशक को करनी ही चाहिए – अपनी निजी छवि को सामने रखने की बजाय एक विशेषज्ञ के रूप में पेश आना, “बाहरी” और “अंदरूनी” दोनों भूमिकाओं में काम करना और ग्रुप को स्वायत्त होने में मदद करते हुए भी अपनी केंद्रीय भूमिका बनाए रखना। इन विरोधाभासों को जिस तरह से सुलझाया जाता है उससे अनुदेशक की शैली और गुणवत्ता का पता चलता है। रीज़ेल (1962), पृ. 93-108) के अनुसार अगर अनुदेशक के पास जरूरी प्रशिक्षण और कौशल नहीं है तो वह नियंत्रण बनाने, स्वीकार्यता या समावेशन की जरूरतों और सफलता की चाहत में ही हस्तक्षेप करेगा।

### अनुदेशक के हस्तक्षेप की रणनीति

ग्रुप में किसी भी समय कई चीजों पर ध्यान दिया जा सकता है जैसे कि प्रक्रिया, संरचना, मनोभाव, भूमिकाएं, निदान, व्यक्तियों की सुरक्षा आदि। अनुदेशन का एक महत्वपूर्ण आयाम है इनमें से किसी एक पक्ष का चुनाव करना जिसपर ध्यान केंद्रित किया जाए। कई सवालों का जवाब खोजना जरूरी होता है जैसे कि, “कब?”, “कितनी बार?”, कितना नियंत्रित करना है?”, “मेरा संबंध क्या है?”, “मेरी मान्यताएं क्या हैं?”, “किन आकड़ों पर मुझे ध्यान देना चाहिए और किनको अनदेखा कर देना चाहिए?”, “क्या मुझे कुछ कहना या पूछना चाहिए?”, “किस तरह की भाषा शैली सबसे उचित रहेगी?”, “किस स्तर पर हस्तक्षेप करना चाहिए, अंतर्व्यक्तिक, अंतःव्यक्तिक या समूह स्तर पर?”। ग्रुप के उद्देश्य और उस समय के व्यक्तिगत मनोभावों के आधार पर अनुदेशक को ये भी तय करना होता है कि उसका हस्तक्षेप किस प्रकार का होगा, सुधारात्मक, निर्देशात्मक, कोई परिकल्पना या अवलोकन रखने वाला, सहयोग करने या समर्थन करने वाला। इसका कोई तयशुदा जवाब नहीं है और ग्रुप में उस हस्तक्षेप के प्रभाव के आधार पर रणनीति को गतिशील और लोचदार होना चाहिए। OEGGO (ग्रुप प्रक्रियाओं का अध्ययन करने वाला अस्ट्रेलिया का एक समूह) में हस्तक्षेप सिर्फ ग्रुप के स्तर पर किए जाते हैं और ग्रुप प्रक्रियाओं के बारे में सीखने पर ध्यान दिया जाता है। जो भी हो, ग्रुप के सदस्यों को दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति सचेत रहते हुए खुद को खुलकर और सहजता से अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करके अनुदेशक एक ऐसे वातावरण का निर्माण करने की कोशिश करता है जो सीखने में मददगार हो।

अंततः, अनुदेशक को सबके साथ चलते हुए वह करना पड़ता है जिसकी ग्रुप के सदस्यों को अपेक्षा होती है यानी सीखने के लक्ष्य तय करना, स्पष्ट अभिव्यक्ति, चिंतनशीलता, गलतियों को स्वीकार करना और चीजों को करने के नए-नए तरीकों से प्रयोग करना।

### **उपसंहार**

हालांकि प्रक्रिया अनुदेशक की विशेषज्ञता के क्षेत्रों को लेकर कुछ सहमति जरूर है लेकिन इस भूमिका की समझ उतनी स्पष्ट नहीं है क्योंकि कई प्रक्रिया अनुदेशक अपने तर्क और शैली को दूसरों से बेहतर मानते हैं। इस तरह, 66 वर्षों के बाद भी टी-ग्रुप अनुदेशन काफी हद तक एक कला ही बनी हुई है।

~~~

5.2

टी-ग्रुप में हाशियाकरण और बहिष्करण की पड़ताल

उमा जैन

विविधता (diversity) का संबंध मानव भिन्नताओं से है, चाहे वे व्यक्तिगत हों या समूह आधारित, जो हमारे रवैये और व्यवहार को प्रभावित करते हैं और इस तरह हमारे जीवन और काम को भी। ये भिन्नता उम्र, वर्ग, रंग, जाति, मातृभाषा, जेंडर, राष्ट्रीयता, शारीरिक/भावनात्मक/मानसिक सक्षमता, नस्ल, यौन रुझान और धर्म जैसे उन प्राथमिक आयामों पर आधारित होते हैं जो आमूमन जन्म से ही आते हैं। इनमें आमतौर पर उस तरह से बदलाव नहीं किया जा सकता जैसा कि दूसरे आयामों, जैसे कि संस्कृति, शैक्षणिक पृष्ठभूमि, संवाद शैली, आध्यात्मिक मान्यताएं, सीखने की शैली, पसंद, कौशल, भाषा, भौगोलिक स्थिति, पारिवारिक हैसियत, आय आदि के साथ संभव है जिनको एक हद तक खुद हासिल किया जा सकता है और जिनमें कुछ बदलाव संभव है।

अगर विविधता को पहचाना नहीं गया और उसका सम्मान नहीं किया गया तो अनेक स्थितियों में कुछ खास लोगों या समूहों के हाशियाकरण (marginalization) व बहिष्करण (exclusion) की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। लेकिन अगर इस विविधता को समझा जाए, उसका सम्मान किया जाए और उससे लाभ उठाया जाए तो यह समावेशन और न्याय के मूल्यों और साथ ही सांझे सशक्तिकरण को प्रोत्साहित कर सकता है (NTL, त2008)।

विविधता, टी-ग्रुप पद्धति और मूल्य

टी-ग्रुप पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि बनी-बनाई कार्यसूची और रूपरेखा सामने रखने वाले सत्ताधारी व्यक्ति या व्यक्तियों की, चाहे वे कितनी भी विशेषज्ञता क्यों न रखते हों तुलना में, समूचा ग्रुप (जिससे तात्पर्य विविध व्यक्तियों से है) 'यहां-और-अभी' (here-and-now) की स्थिति में सीखने के लिए बेहतर फैसले ले सकता है। टी-ग्रुप की जड़ों को हम 1946 में अमरीका में 'कनेक्टीकट इंटररेशियल कमीशन' की कार्यशाला में देख सकते हैं जो 'सामुदायिक प्रभाव के संदर्भ में उच्च-शक्तिशाली व निम्न-

शक्तिशाली लोगों पर प्रशिक्षण के प्रभाव के अध्ययन, और उनके अलग-अलग समुदायों में बदलाव लाने में इन प्रशिक्षित टीमों और अलग-थलग या एक व्यक्ति के प्रभाव के अध्ययन के लिए आयोजित की गई थी जिसमें कर्ट ल्यूविन एक शोधकर्ता के रूप में मौजूद थे (बेन, 1964:81)। विविधता, समावेशन और न्यायशीलता शुरुआती दौर से ही सीखने और योगदान देने के अवसरों के रूप में टी-ग्रुप के महत्वपूर्ण प्रक्रिया मूल्य और साथ ही अभीष्ट परिणाम भी रहे हैं। अगर इसे आज के संदर्भ में रूपांतरित किया जाए तो टी-ग्रुप में सीखने की वांछित प्रक्रिया वह होगी जो समूहों के सदस्यों व नेताओं में सहकार्य के कुछ विशिष्ट मूल्यों को उचित माने और उनका पोषण भी करे।

हालांकि टी-ग्रुप के वांछित मूल्यों के रूप में विविधता और समावेशन को लेकर कोई मतभेद नहीं है, उनको व्यवहार में उतारना एक सचेत चयन की मांग करता है। इसके अभाव में इन मूल्यों के व्यवहार में बाधा खड़ी करने वाली प्रक्रियाएं उभर जाती हैं और कुछ विपरीत मूल्य प्राथमिक बन जाते हैं जिससे बहिष्करण और हाशियाकरण पनपता है। अनुदेशक की प्राथमिक भूमिका एक ऐसा माहौल बनाने की है जिसमें वांछित प्रक्रिया मूल्य पनप सकें और उनको अमल में भी लाया जा सके।

समूह की कुछ स्थितियां

स्थिति 1

एक समूह में एक महिला, जो पिछले सत्र में कुछ तीक्ष्ण अनुभवों से गुजरी थी, इस सत्र के बड़े हिस्से में चर्चा के केंद्र में थी। एक पुरुष प्रतिभागी, जो लग रहा था कि कुछ भावनाओं को दबा कर रखे हुए थे, अंत में ग्रुप में सामने आते हैं और कुछ कहने की कोशिश करते हैं। अनुदेशक समेत कई प्रतिभागी इससे असहज/असुविधाग्रस्त महसूस करते हैं और वे बारी-बारी से कुछ ऐसा कहते हैं जिसका तात्पर्य यह था कि वे महोदय पूरी प्रक्रिया में बाधा पहुंचा रहे थे। *“आप अचानक कहां से आ गए”, “आप समूह का ध्यान अपनी तरफ खींचना चाहते हैं”, “यहां किसी के साथ कोई प्रक्रिया चल रही है, क्या इसकी कोई परवाह है आपको?”, “आप जब चाहे तब ग्रुप का ध्यान हटा देते हैं...”* आदि जैसी बातें कही जाती हैं जब वे ग्रुप में घुसने का प्रयास करते हैं। एक प्रतिभागी उनको प्रोत्साहित करने के लिए हस्तक्षेप करता है मगर उसे तुरंत उनका ‘हिमायती’ घोषित कर दिया जाता है और वह भी पीछे हट जाता है। वह प्रतिभागी कई बार यह

बताने की कोशिश करता है कि उसका 'अभी' बोलना क्यों जरूरी है लेकिन उसे कुछ बोलने ही नहीं दिया जाता।

यह प्रतीत होता है कि ग्रुप उस महिला प्रतिभागी के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है क्योंकि या तो ऐसा करना उनको सार्थक लगता है या शायद इसलिए कि उस दूसरे व्यक्ति के बारे में कोई राय बन गई है। ग्रुप के ध्यान और दिशा में जो अंतर वह लाता है संभवतः ग्रुप उसे मूल्यवान नहीं मानता।

स्थिति 2

किसी टी-ग्रुप में एक ऐसे पुरुष प्रतिभागी पर सबका ध्यान केंद्रित था जिसे अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करने में कठिनाई होती है। पूछने पर वह यह बताने की चेष्टा करता है कि उसे क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए और साथ में कुछ सामान्यीकृत बातें भी कहता है। उस व्यक्ति के मनोभावों को सामने लाने के लिए एक अनुदेशक समेत ग्रुप के सदस्यों ने कई तरह के हस्तक्षेप किए (लगभग 45 बार), जैसे निर्देश, प्रेरणा, निर्णय, अवधारणाएं, प्रेक्षण, सलाह, कार्य-योजना, आदि। ऐसा न कर पाने के चलते उपजी चिंता और बेबसी की भावना बढ़ते क्रम में ग्रुप का दबाव उसपर बढ़ा रही है और लोग उसे अपने मनोभाव व्यक्त करने के लिए समय ही नहीं दे रहे हैं और न ही उसके साथ 'यहां-और-अभी' जो हो रहा है उसे समझने की कोशिश कर रहे हैं। वह प्रतिभागी कई बार बात करने की कोशिश करता है मगर उसे आगे बढ़ने नहीं दिया जाता क्योंकि वह उस तरीके से शुरुआत करता हुआ नहीं दिखता जैसा बाकी लोग चाहते हैं। इस स्थिति में एक अन्य प्रतिभागी, जो इस प्रक्रिया से स्पष्टतः तौर पर असहज दिख रहा था, उससे कहता है, "मुझे इस तरह के आपसी व्यवहार से परेशानी हो रही है। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप दबाव, आक्रामकता और खुद के फंसे होने जैसा महसूस कर रहे हों। इतने सारे लोग आपके ऊपर इतनी बातों की बौछार जो कर रहे हैं।" दूसरा अनुदेशक (जिसने अबतक हस्तक्षेप नहीं किया था) कहता है, "आपके लिए बेहतर होगा कि आप अपने मनोभावों को इन लोगों पर आरोपित करने की बजाय खुद जो महसूस कर रहे हैं वह कहें; क्या आप चाहते हैं कि वे फंसा हुआ महसूस करें?" वह जवाब देता है, "मुझे परेशानी हो रही है। अगर मैं इनकी स्थिति में होता तब शायद मैं ऐसा कहता (उनकी तरफ से) ... मुझे लग रहा था कि मैं अकेला आदमी हूँ, मैं लोगों का सामना कर यह नहीं कह पा रहा हूँ कि 'आप लोग मेरे साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं?' कई सदस्य इस पर प्रतिक्रिया करते हैं और पहले वाले प्रतिभागी पर दोबारा ध्यान केंद्रित करते हैं, "तुम ऐसा कैसे कर सकते थे?", "मैं ऐसे काल्पनिक वक्तव्य को कतई बर्दाश्त नहीं करता", "तुम नाराज़ क्यों नहीं हो रहे हो?" वगैरह वगैरह।

उपर्युक्त स्थितियों में विविधता के कई आयाम सामने आते हैं मगर उनको कोई महत्व नहीं दिया जाता, मसलन, पहले प्रतिभागी के संवाद की शैली, उसकी तत्परता और काम की गति, और दूसरे प्रतिभागी का संभावित समर्थन जिसमें उस प्रतिभागी के प्रति समानुभूति झलक रही थी, इन सब को न तो मान्यता दी जा रही है और न ही उनका उपयोग किया जा रहा है – और समूह यह प्रवृत्ति दोहराता जा रहा है।

ये दो स्थितियां दिखाती हैं कि किस तरह प्रतिभागी और अनुदेशक (नेक इरादों और प्रयासों के बावजूद), अलग-अलग तरह के समावेशन और विविधता – जैसे शैली, कार्यसूची और दिशा आदि – को महत्व देने की बजाय अलग तरह के प्रतिभागियों के अस्थायी या स्थायी बहिष्करण / हाशियाकरण की प्रक्रिया में मिलीभगत कर बैठते हैं जिससे लोगों पर अनुपालन का दबाव बनता है और संभवतः एक ऐसा माहौल भी बनता है जिसमें दूसरे लोग किसी जारी प्रक्रिया में शामिल होने से कतराएंगे जिसके चलते भविष्य में भी विविधता का उपयोग सीमित हो जाएगा।

ऊपर वर्णित स्थितियों के अलावा टी-ग्रुप में अनेक प्रकार के बहिष्करण व हाशियाकरण उपस्थित होते हैं हालांकि अक्सर उनपर ध्यान नहीं दिया जाता। इसके दो प्राथमिक कारण हैं –

- व्यक्तियों और समूहों की अनैच्छिक/प्राकृतिक या अचेतन प्रतिक्रिया जिसका कारण है सदस्यों द्वारा अपनी आदतों, भय, जरूरतों, चिंताओं के चलते यथास्थिति का चुनाव करना, स्थापित सत्ता या बहुमत के प्रति झुकाव दिखाना, व्यक्तिगत हित, सुरक्षा आदि को प्राथमिकता देना।
- समूहों और लैब में सीखने की प्रक्रिया के प्रति बने कुछ सामान्य सचेत अथवा अचेत मिथक/मान्यताएं जो विविधता के मुद्दों पर अनुदेशक व प्रतिभागी दोनों के मूल्यों व योग्यताओं के विकास को बाधित करती है।

ये दो स्रोत विविधता के अनेक आयामों से जुड़े बहिष्करण और हाशियाकरण के कुछ सामान्य पैटर्न बनाते हैं। ये एक दूसरे को और जटिल भी बनाते हैं जिसके चलते, अगर अनुदेशक और / या प्रतिभागी संवेदनशील नहीं हैं और सचेत अनुदेशकीय चयन नहीं करते हैं तो मूल्यों के विपरीत व्यवहार सामने आ सकते हैं।

टी-ग्रुप में हाशियाकरण के सामान्य पैटर्न

टी-ग्रुप में जाने या अंजाने में बार-बार प्रकट होने वाले बहिष्करण व हाशियाकरण के कुछ प्रकार जो मैने देखे हैं वे इस प्रकार हैं –

- **व्यक्तित्व की शैली:** बिल्कुल शुरुआत से ही कुछ सदस्यों में पहलकदमी की और बाकियों में शांत रहने की प्रवृत्ति रहती है। पहलकदमी करने वालों में समूचे ग्रुप की तरफ से निर्णय लेने की प्रवृत्ति होती है। ग्रुप के पूरे कार्यकाल में वे लोग जो भावप्रवण, संवादमूलक, मनोभावों को आसानी से व्यक्त करने वाले और संवाद कुशल होते हैं उन्हें टी-ग्रुप के माहौल से तुलनात्मक रूप से ज्यादा फ़ायदा मिलता है जबतक कि अनुदेशक या प्रतिभागी इन पैटर्नों पर ध्यान देकर ऐसी परिस्थिति के निर्माण की कोशिश न करें जिसमें दूसरे भी आगे बढ़कर शामिल हो सकें।
- **पेशेवर व सामाजिक पृष्ठभूमि:** आमतौर पर अलग-अलग पेशेवर पृष्ठभूमियों, जैसे कि कॉर्पोरेट या एन.जी.ओ., से आने वाले लोग आपस में कैसे व्यवहार करते हैं इसमें स्पष्ट अंतर रहता है। इसी तरह, धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने की क्षमता, सामाजिक व आर्थिक वर्ग, मद्यपान करने या न करने वाले, ऐसे लोग जो टी-ग्रुप के समय के बाद भी लोगों से घुलते-मिलते हैं और जो ऐसा नहीं करते, आदि जैसे तमाम अंतर भी रहते हैं। अक्सर (हमेशा नहीं) इनमें से कई आयाम अलग-अलग संयोजनों में सामने आते रहते हैं और इससे ग्रुप के नियत समय के बाहर भी आपस में जुड़ा एक समूह उभरता है। इसके चलते ग्रुप के समय के दौरान भी अलग तरह के लोगों का बहिष्करण व हाशियाकरण होता है।
- **कथित योगदान:** ऐसा होना असामान्य नहीं है कि वे प्रतिभागी जो अपने मनोभाव व नजरिए किसी खास तरह से अभिव्यक्त करते हैं उनको ग्रुप के संचालन में योगदान देता हुआ माना जाता है। इनको अनुदेशकों से भी सराहना मिलती है जिससे ऐसे लोगों के लिए माहौल कम अनुकूल बन जाता है जिनके अस्तित्व की अलग अवस्था, अलग शैली या उस चरण में कौशल या खुलेपन का अलग स्तर होता है। कभी-कभार यह स्थिति ऐसे चरम पर पहुंच जाती है कि कुछ प्रतिभागियों के प्रति निर्णय लिए जाते हैं और उनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है जैसे कि उनमें सीखने और योगदान देने की कोई गुंजाइश ही न हो।

एकमात्र: अगर कोई व्यक्ति ग्रुप में अपनी तरह का 'एकमात्र' व्यक्ति हुआ, चाहे वो जेंडर, पेशेवर पृष्ठभूमि, भाषा, व्यक्तित्व या किसी भी अन्य आधार पर हो, ऐसी स्थिति में उसे अनदेखा करने, उसपर ध्यान न देने, उसपर हुक्म चलाने या बहुसंख्या के अनुसार चलने के दबाव बनाने की प्रक्रियाएं उपस्थित होती हैं। और ये अक्सर उस व्यक्ति द्वारा जानबूझकर या अंजाने में की गई

मिलीभगत से होती हैं, क्योंकि उसके लिए अपनी भिन्नता को जाहिर न कर उसे छुपा लेना ज्यादा सुरक्षित हो सकता है जबतक कि ग्रुप का माहौल सहयोगात्मक व समावेशी न हो (एंड्रूज़, 1999)।

- **अकथ्य अंतर:** कुछ किस्म के अंतरों पर आमतौर पर ध्यान नहीं दिया जाता या उनको बहस के लायक नहीं माना जाता/वर्जित माना जाता है (ये हर ग्रुप के लिए अलग-अलग हो सकता है), जैसे कि सामाजिक या आर्थिक वर्ग (हॉल्वीनो, 1999), जेंडर, सत्ता और शक्ति संबंध जिनके चलते प्रतिकूल पहचान वाले समूहों का उनके निष्क्रिय या यहां तक कि सक्रिय मिली-भगत से भेदभाव और हाशियाकरण हो सकता है। महिलाएं अक्सर खोजबीन के लिए ज्यादा भावप्रवण और खुली होती हैं। पुरुष समस्याओं का हल बताने वाले या अनुमोदन करने वाले की भूमिका अख्तियार कर लेते हैं; बाद में वे महिलाओं पर आक्रामक होने का लेबल भी लगाते हैं जो कि महिलाओं के व्यवहार की उनकी रूढ़िबद्ध अपेक्षाओं (stereotypical expectations) के चलते होता है। इस प्रक्रिया में कुछ तुलनात्मक रूप से कम सक्रिय महिलाएं उनके साथ हो जाती हैं, जिसका कारण संभवतः आक्रामकता का आत्मसातीकरण है (फ्लेचर, 1999)। ऐसी कई प्रक्रियाओं को इस तरह की बाते करके सामने ही नहीं आने दिया जाता, मसलन, “हम शिक्षित लोग हैं; हम इन चीजों के आधार पर भेदभाव करने में यकीन ही नहीं करते”। लेकिन ये प्रक्रियाएं होती हैं और कई बार तो जिन लोगों का हाशियाकरण हो रहा है उनकी मिली-भगत से। जैसे कि, महिलाएं पुरुषों से अपनी देखभाल करने का आग्रह करके, मीटिंगों में ऐसा व्यवहार करके जैसे कि पुरुषों के ही पास सारी विशेषज्ञता व शक्ति हो या पुरुषों के आगे झुककर अपनी शक्ति उन्हें सौंप कर पुरुष श्रेष्ठता की मान्यता को आगे बढ़ाती हैं। संभव है कि वे इससे भी आगे जाकर जो पुरुष उनको नीचा करते हैं उन्हीं की देखभाल करें और इस तरह खुद को बहिष्कृत कर लें (क्रॉस, 1985:16)।

समूहों के बारे में मिथक या मान्यताएं

कई लैबों के संचालन और कई अन्य के अवलोकन के अपने अनुभव के जरिए मैने कुछ चालू मिथक (सचेत या अचेत) खोजें हैं जो मूल्यों के कमजोर पड़ने का कारण होते हैं (जैन, 2009:5):

- लोगों को अपनी घरेलू ज़िंदगी के अलग-थलग/दर्दनाक अनुभवों को सांझा करने के लिए मौकों की जरूरत होती है ताकि वे वे ग्रुप में ‘यहां-और-अभी’ की भावना पर ध्यान लगा सकें। इससे जुड़ी हुई बात यह है कि अगर सभी सदस्य ऐसे अनुभव सांझा करें और ग्रुप उनको सुलझाने में मदद करे या

कम-से-कम उनसे सहानुभूति जताए तो इससे ग्रुप को आगे बढ़ने में और आपसी विश्वास बनाने में मदद मिलेगी।

- शुरुआती एक या दो लैब में भाग ले रहे लोग लैब के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए ग्रुप प्रक्रियाओं को समझने या उनको अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं होते।
- अनुदेशन में सिर्फ शांत, सहयोगपूर्ण, स्वीकृति करने वाला और मानवीय व्यवहार ही मदद करता है।
- लोग सबसे बेहतर तभी सीखते हैं जब ग्रुप एक समय में सिर्फ एक व्यक्ति व उसकी समस्याओं पर ध्यान दे। इसलिए जब एक सदस्य पर ध्यान दिया जा रहा हो तब दूसरों को, अगर वे संवेदनशील हैं तो, उनके साथ क्या हो रहा है यह बताने के लिए हस्तक्षेप से खुद को रोकना चाहिए और कोशिश करनी चाहिए कि वे उस व्यक्ति की मदद के लिए ही दखल दें।
- किसी प्रभावशाली टी-ग्रुप का वांछित परिणाम अतिशय उल्लास की अवस्था होती है और ये तभी संभव है जब लोग अपने व्यक्तिगत जीवन से जुड़े ऐसे मुद्दे सामने रखते हैं जिनको लेकर उनमें बेहद तीव्र भावनाएं हैं।

उपरोक्त मिथकों के आधार पर काम करते हुए, अगर किसी की भागीदारी प्रचलित मिथक के अनुसार और / या उसके सहयोग में नहीं हो तो उसे या तो एक तरफ कर दिया जाता है या उसपर ध्यान नहीं दिया जाता या उसकी सराहना नहीं की जाती है। ऐसे में संभव है कि ग्रुप में अनुदेशकों पर निर्भरता का विकास हो जाए क्योंकि वे आमतौर पर ज्यादा कुशल होते हैं। कुछ सदस्य शामिल होने के लिए अपने 'यहां-और-अभी' के अनुभव को दबाते हैं और सबकी हां-में-हां मिलाते हैं। ऐसी स्थिति में मौलिकता, व्यक्तिगत स्वायत्तता, खुलापन आदि और विविधता का समर्थन व समावेशन पीछे छूट जाते हैं।

विविधता और समावेशन लाने के लिए योग्यताएं

ग्रुप विविधता और समावेशन के मूल्य को समझे ऐसी दिशा में काम कर रहे अनुदेशक में विविधता की प्रक्रियाओं को संभव बनाने की योग्यता होनी चाहिए – यानी कि ऐसी समस्याओं को पैदा करने वाले चेतन / अवचेतन पूर्वाग्रहों के प्रति संवेदनशील होना और उनको पकड़ पाना जो खुद में, ग्रुप के सदस्यों में और खुद ग्रुप की प्रक्रिया में हो सकते हैं और फिर ऐसे हस्तक्षेप करना जिससे ग्रुप इन प्रक्रियाओं के प्रति सचेत हो सके और उनका हल निकाल सके। “पानी में रहने वाली मछली की तरह हम इस सोच में उसी तरह

आकंठ डूबे होते हैं कि इसके अस्तित्व को बमुश्किल ही पहचान सकते हैं। मेरा काम इस अदृश्य को दृश्य बनाना है, जिसका अनुभव नहीं हो रहा उसकी अनुभूति कराना है।” (क्रॉस, 1985; 16)

नीचे कुछ विशिष्ट योग्यताओं (NTL, 2008) का उल्लेख किया गया है जो किसी टी-ग्रुप अनुदेशक में होना चाहिए ताकि वो विविधता की प्रक्रियाओं को ऐसी दिशा दे सके जिससे ग्रुप समावेशन व सशक्तिकरण की तरफ अग्रसर हो सके:

- आत्म के प्रभावशाली उपयोग के लिए ग्रुप के जीवन काल में अपनी और ग्रुप के सदस्यों की प्रभुत्वशाली व अधीनस्थ सामाजिक-पहचान समूह की सदस्यता को पहचानने, उसे चिन्हित करने, स्वीकार करने और उसको अभिव्यक्त कर पाने की क्षमता।
- बदलाव के लिए खुलापन और आशावादी बने रहने तथा किसी भी समय अपने विचारों व पूर्वाग्रहों को हावी न होने देने की क्षमता। किसी भी सदस्य का कभी भी कायापलट हो सकता है और कोई महत्वपूर्ण खोज वो कभी भी कर सकता है यहां तक कि उन मामलों में भी जहां पहले कोई संभावना न नजर आ रही हो।
- विविधता पर ध्यान देकर और उसका विवरण प्रस्तुत करके, समावेशन/बहिष्करण की प्रक्रियाओं व हस्तक्षेप के जरिए और समावेशी अधिगम समुदाय के निर्माण के लिए प्रभावी फीडबैक देकर विभिन्न ‘-वादों’ का निपटारा करने की क्षमता का होना।
- ऐसे व्यवहार जो व्यक्तिगत, अंतर्व्यक्तिक व सामाजिक पहचान-समूह के स्तर पर अधीनस्थ समूहों के सदस्यों का बहिष्करण, हाशियाकरण या निशक्तिकरण करते हैं उनपर ध्यान देने और उसका विवरण प्रस्तुत करने तथा मंशा व परिणाम के अंतर को अभिव्यक्त करने की क्षमता।
- व्यक्तिगत व ग्रुप के स्तर पर विविधता और समावेशन के लिए हस्तक्षेप का कौशल।
- प्रभुत्व व अधीनता, बदलाव के प्रति प्रतिरोध, आंतरिक दमन, बहिष्करण आदि विविधता से जुड़े मुद्दों व इनके काम करने की प्रक्रियाओं की अवधारणात्मक समझ।
- व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और दमन के संस्थानिक/सामाजिक के बीच अंतर करने और पूर्वाग्रह व आंतरिक दमन के सामाजिक व मनोवैज्ञानिक स्रोतों को पहचानने की क्षमता।
- विविधता से जुड़े मुद्दों के संदर्भ में अपने व्यक्तिगत व पेशेवर विकास की कमियों से उपजी चुनौतियों को हल करने की जागरूकता व तैयारी। अपने व्यवहार को लेकर फीडबैक मांगना और

उसके प्रति खुला व्यवहार रखना। अपने बारे में सीखने, खुद को विकसित करने और आगे बढ़ने के प्रति प्रतिबद्धता।

- टी-ग्रुप अनुदेशक के तौर पर ग्रुप में विविधता और समावेशन के मार्गदर्शी दृष्टिकोण का होना और उसपर अमल करना।

सांझे सशक्तिकरण से युक्त समावेशी ग्रुप की परिकल्पना

विविधता व समावेशन को मूल्यवान मानने वाला और सांझे सशक्तिकरण की तरफ बढ़ता हुआ ग्रुप कैसा दिखेगा? (जैन, 2009:5)

ऐसा ग्रुप एक दूसरे के प्रति और पूरे ग्रुप के प्रति अपने भीतर से उभरने वाले अलग-अलग प्रकार और स्तर के अनुभवों (जिसमें मनोभाव, विचार, मत आदि शामिल हैं) के प्रति जागरूक, खुला व ग्रहणशील ही नहीं होगा बल्कि उनके प्रति स्वागत का भाव रखेगा और इनका उपयोग सीखने के लिए करेगा।

हर तरह के मतभेदों को एक तरफ रखकर ग्रुप में सभी के लिए जगह, स्वीकार्यता, समर्थन और जुड़ाव बनाया जाता है ताकि लोग अपना काम कर सकें और यथायोग्य योगदान कर सकें और साथ ही उनके व्यक्तित्व की इज्जत हो, उसको मूल्यवान माना जाए और उसका सम्मान किया जाए।

जब ग्रुप ऊपर वर्णित स्थिति में पहुंच जाता है तब वो मोटे तौर पर निम्नांकित दिशा में आगे बढ़ता है:

- अपने और दूसरों के व्यक्तित्व के अलग-अलग आयामों को पहले से निश्चित परिणामों की दिशा में बाधा न मानकर उसे नई व अंजान दिशाओं की खोज मानता है और उसके प्रति अधिकाधिक स्वागत का रुख अपनाता है।
- अक्सर शुरुआत में विभिन्न सदस्यों के योगदान में दिखाई देने वाले बड़े अंतर की बजाय दूसरों के सीखने में शिक्षार्थी व योगदानकर्ता के रूप में सभी सदस्यों की व्यापक भागीदारी व प्रभाव का होना और साथ ही सभी या ज्यादातर सदस्यों के अलग-अलग योगदान के प्रति सम्मान व सराहना का भाव।
- ग्रुप के सदस्यों में इस भावना का अधिकाधिक बढ़ना कि उनकी विशिष्टता को मूल्यवान माना जा रहा है व उसकी इज्जत की जा रही है और इसके चलते सबकी स्वीकार्यता हासिल करने के लिए कोई मुखौटा लगाने की जगह सदस्यों में खुलापन और मौलिकता और साथ ही अपनी जिम्मेदारी

लेने व सांझा करने के साहस का पनपना। लोग अपने व्यक्तित्व के विशिष्ट, अलग या ऐसे पक्ष जिनको उन्होंने ग्रुप में ही जाना है उसे सामने रखते हैं ताकि वह अपनी पड़ताल कर सके और साथ ही दूसरों को भी फीडबैक और नया दृष्टिकोण दे सके। ग्रुप इस अनुभवों को सिर्फ उत्सुकता के साथ सुनता ही नहीं है बल्कि उनका इस्तेमाल सीखने के लिए भी करता है।

- ग्रुप का नई दिशाओं में विकसित होना जिनका सार्थक अनुभव होता है और जो अलग-अलग समय पर अलग-अलग सदस्यों से प्रभावित होता है लेकिन उसकी जिम्मेदारी अनुदेशकों या कुछ सदस्यों पर डालने की बजाय पूरा ग्रुप ही लेता है।
- यह स्वीकार करना कि उसी ग्रुप में लोग अलग-अलग समय पर अलग-अलग चीज़ें सीखते हैं - कि कुछ लोग अपनी पीड़ा से दोबारा गुजरेंगे और कुछ लोग उस पीड़ा का अनुभव करेंगे जिसको उन्होंने अपनी संवेदनहीनता के चलते दरकिनार कर दिया था, कुछ लोग अपनी नर्मदिली स्वीकरेंगे और कुछ लोग सख्ती वगैरह।
- टी-ग्रुप के अनेक प्रमुख मूल्यों का, जैसे, जागरुकता, दूसरों का सम्मान, सीखना, प्रमाणिकता, व्यक्तिगत स्वायत्तता आदि का ग्रुप में प्रकट तौर पर परस्पर सहयोग के भाव के साथ व्यापक व्यवहार होगा। उदाहरण के लिए, 'जागरुकता' को मूल्यवान मानने का अर्थ है कि ग्रुप 'चेतन व अवचेतन स्तर पर अपनेआप को, दूसरों को और पूरे ग्रुप को क्या हो रहा है उसपर ध्यान देगा और/या उसका अनुभव करने का अभ्यास करेगा' जिससे सीखने के अलग-अलग दृष्टिकोणों, शैलियों व गति के सम्मान के भाव के पनपने की संभावना और सभी के लिए गुंजाइश बनेगी। ये मौलिकता को बढ़ाएगा जिससे अनुपालन के दबाव के बगैर ही विशिष्ट और सच्चा सांझापन उभरेगा जो व्यक्तिगत स्वायत्तता के मूल्य को मजबूत करेगा।

इस परिकल्पना को सच्चाई में बदलने में टी-ग्रुप अनुदेशकों की अहम भूमिका है। उनको विविधता का सामना करने की प्रक्रिया को सहज बनाना होता है ताकि ग्रुप समावेशन व न्याय का सचेत चयन कर सके। विविधता की प्रक्रियाओं को संभालने की योग्यता शुरुआत में अनुदेशकों में और बढ़ते क्रम में पूरे समूह में विकसित करनी होगी। अनुदेशक बनने के सफर में इन योग्यताओं को विकसित करने के लिए जरूरी है कि अनुदेशक विविधता के अनेक आयामों पर आधारित समावेशन/बहिष्करण के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के संदर्भ में अपने पूर्वाग्रहों व कमज़ोरियों और किस तरह ये न्यायपूर्ण माहौल के निर्माण में बाधा खड़ी करते हैं इसके प्रति जागरुक हो। यह भी जरूरी है कि वो ग्रुप में और अपने जीवन में लगातार

सीखती रहे क्योंकि ये बड़ी ही जटिल परिघटना है और बदलती हुई वैश्विक दुनिया में तो ये और भी जटिल हो गई है।

7.2

टी-ग्रुप अनुदेशन की अस्तित्ववादी पद्धति

टी टी श्रीनाथ

इंसान की ज़िंदगी तयशुदा, सीमित और जन्म-मृत्यु से आबद्ध है। ये हमारे सामने खड़ी मूलभूत चुनौती है। इस दुनिया में बहुत सी परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनसे हम समझौता नहीं कर पाते, परंतु इन्हें हम स्वीकार करें या न करें वो जीवन की एक वास्तविकता हैं।

हमारा अस्तित्व हम पर कई 'तथ्य' आरोपित करता है और इन तथ्यों को बदल पाने के विकल्प बहुत कम होते हैं; मिसाल के लिए, हमारा जेनेटिक आधार। एक इंसान के रूप में हम सिर्फ इन तथ्यों पर अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। हमारा काम ये है कि जो भी हमें मिला है उसी से कुछ करके दिखाएं। यह विलाप करते रहें कि हमारे पाले में जिंदगी के अच्छे पत्ते आए ही नहीं हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। जैसे पत्ते हमें मिले हैं उन्हीं से हमें खेलना होगा। हम यह तो तय कर सकते हैं कि क्या प्रतिक्रिया देनी है मगर उसके परिणाम क्या होंगे यह हम नहीं निर्धारित कर सकते। इसलिए हमें उनके साथ ही रहना होगा।

अस्तित्ववादी पद्धति क्या है?

अस्तित्ववादी पद्धति वो दर्शन है जो रोज़मर्रा के जीवन पर लागू होता है। ये पद्धति यह मांग करती है कि जीवन जो सीमाएं और संभावनाएं हमारे सामने रखता है उसको हम समझें और उसमें रहते हुए एक सार्थक व रचनात्मक जिंदगी का निर्माण करें। यह मांग करता है कि हम दिलेरी से दुनिया का सामना करें, विविधता के मोल को समझें, जो दुविधाएं हमें घेरे हुए हैं उनके प्रति दिमाग खुला रखें और अपनी पहले से मौजूद रुढ़ियों का साहस से सामना करें। इसका मतलब ये है कि हम जो जिंदगी जी रहे हैं उसके साथ न्याय करें।

अस्तित्ववादी पद्धति यह मांग करती है कि हम 'खुद को जानने' का प्रयास करें। इसका मतलब ये हुआ कि एक अनुदेशक के रूप में हमारा प्राथमिक औज़ार हम स्वयं और जीवन की हमारी समझ है; और ये किसी सिद्धांत या किसी विशिष्ट तकनीक से नहीं बल्कि खुद हमारे अस्तित्व से आती है।

अस्तित्ववादी पद्धति अपनाने का क्या अर्थ है?

एक अनुदेशक के रूप में हम प्रतिभागियों की समस्याओं को खत्म करने या परेशानी के किसी खास लक्षण का निदान करने नहीं बल्कि उनके साथ कदम-से-कदम मिला कर चलने और जो जिंदगी वे जीते हैं उसके साथ न्याय करने की कोशिश करते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि प्रतिभागी परेशानियों को देखकर भागने की बजाय उनका दिलेरी से सामना करें। इसमें 'मूल्य-निरपेक्षता' और किसी तरह का निर्देश नहीं देने का नज़रिया होता है। अनुदेशन के कौशल इंसान होने की खूबी से यानी एक इंसान की तरह जीने और दुनिया के बारे में सोच बनाने की हमारी मानवीय क्षमता से ही निकलते हैं।

अस्तित्ववादी अनुदेशन प्रतिभागियों को जीवन पर चिंतन करने और उसे समझने में मदद करता है। लोगों को बदलना इसका मकसद नहीं है। बल्कि इसका मकसद है लोगों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के निजी तरीकों को विकसित और मजबूत करना ताकि हर व्यक्ति अपना रास्ता खुद बना सके।

खाका

अस्तित्ववादी पद्धति काफी हद तक 'वयस्क अधिगम चक्र' (Adult Learning Cycle) और टी-ग्रुप के कोल्ब के मॉडल पर आधारित है। इस तरह अनुदेशन की अस्तित्ववादी पद्धति उदार होने के साथ-साथ ही एक समग्र दृष्टिकोण भी रखती है।

कोल्ब मॉडल (कोल्ब, 1979) व्यक्ति को जीवन का अनुभव लेने के लिए प्रोत्साहित करने की सलाह देता है। अस्तित्ववादी अनुदेशन भी इसी पर जोर देता है। इस तरह, प्रतिभागी जिस दुनिया में रहते हैं उसमें सक्रिय भूमिका निभाते हैं, यानी वे सिर्फ 'पर्यवेक्षक' नहीं बल्कि 'सहभागी पर्यवेक्षक' होते हैं। अपने जीवन के अनुभवों को प्रकट करने के बाद उन्हें उन अनुभवों पर चिंतन करने के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि जिस दुनिया में वे रहते हैं उसकी सही तस्वीर उनके सामने बन पाए। प्रतिभागियों की मदद इस तरह की जाती है ताकि वे इस दुनिया की व्याख्या करें या उस पर निर्णय दें बल्कि इसलिए कि वे इसे देखने और उसका विवरण देने में सक्षम बनें। इससे वे जिन धारणाओं के आधार पर काम करते हैं उन्हें बेहतर समझ पाते हैं। इस चिंतन से प्रतिभागी ये जान पाते हैं कि धारणाओं से मुक्त हो पाना नामुमकिन है और इससे उन्हें अपने लोचदार स्वभाव का भी पता चलता है।

प्रतिभागियों को यह अहसास दिलाने में मदद करने से कि वे जड़बद्ध नहीं बल्कि प्रवाहमान हैं उनको अपने प्रति, दुनिया के प्रति, दूसरों के और जीवन के प्रति खुलापन की स्थिति पर वापस आने में मदद मिलती है। इस प्रकार 'वास्तविक दुनिया' में लौटकर वे नए व्यवहार का प्रयोग कर सकते हैं। अस्तित्ववादी पद्धति प्रतिभागियों को प्रोत्साहित करती है कि वे यह तय करने के लिए स्वतंत्र हों कि कब खुलना है और कब नहीं। उन्हें इसका अहसास दिलाया जाता है कि उनका व्यक्तित्व पत्थर की लकीर नहीं बल्कि उन चुनावों का परिणाम है जो वे अपने जीवन में करते हैं। (वॉन ड्यूर्जेन व एडम्स, 2011, 2012)

हालांकि टी-ग्रुप का उद्देश्य हर प्रतिभागी की इस तरह मदद करना होता है ताकि वह दूसरों पर अपने प्रभाव व दूसरों द्वारा खुद पर पड़े प्रभाव को समझ सके और अपनी निहित संभावना की खोज कर सके, अस्तित्ववादी पद्धति प्रतिभागी को आमंत्रित करती है कि वो इसपर विचार करें कि,

- जीवित होने का क्या अर्थ है?
- कार्य करने और दूसरों से संबंध बनाने का क्या तरीका है?
- कोई व्यक्ति सार्थक जीवन किस प्रकार जी सकता है?

अनुदेशक की कोशिश यह होती है कि वह प्रतिभागियों की जीवन दृष्टि के हर आयाम में घुलमिल जाए और उसको अभिव्यक्त करे; उन्हें मानव जीवन में निहित भिन्नताओं व विरोधाभासों को खोजने के लिए प्रोत्साहित करे; और वे जो चुनाव करते हैं उसके निहितार्थों, कारणों, उद्देश्यों और परिणामों का परीक्षण करने और एक-दूसरे से बराबरी के साथ संवाद करने और इस तरह एक सहभागितापूर्ण खोज में सीखने में सक्षम बनें।

एक व्यक्ति के रूप में अनुदेशक

एक व्यक्ति के रूप में अनुदेशक ग्रुप के लिए प्रमाणिकता के एक मॉडल की भूमिका निभाता है। हमला किए जाने पर अनुदेशक रक्षात्मक होने से बचता है; अनुदेशक ऐसी 'नेक सलाह' जिसका उसे व्यक्तिगत अनुभव न हो वो देने से बचता है और केवल अनुभव की हुई चीजों के बारे में ही बोलता है; वो ग्रुप की सफलता से प्रसन्न होता है और वह एक प्रमाणिक व्यक्तित्व का चलता-फिरता उदाहरण होता है।

यह जरूरी है कि अनुदेशक इस काम को करने की अपनी अभिप्रेरणा और सीखने की अपनी क्षमता को जानें ताकि उन्हें यह समझने में मदद मिले कि किस तरह के लोगों के साथ वे काम कर रहे हैं और वे प्रतिभागियों को उनके जीवन का अर्थ समझने में वाकई कोई मदद कर सकें।

अस्तित्ववादी पद्धति अपनाते वाले अनुदेशक के रूप में मैंने यह पाया है कि मैं तब सबसे अच्छा अनुदेशन कर पाता हूँ जब मैं अपने जीवन का रास्ता खोजने के लिए किए गए संघर्षों का सम्मान करता हूँ। मुझे ये बात समझ में आ गई है कि अनुदेशक के रूप में मैंने बेहतर प्रदर्शन केवल पढ़कर या कौशल प्रशिक्षण के कारण नहीं किया बल्कि इसलिए कि मैं जीवन की मुश्किलों का सामना करने के लिए तैयार रहा हूँ। बिना इस व्यक्तिगत जुड़ाव के मेरे एक अच्छा अस्तित्ववादी अनुदेशक बन पाने की संभावना कम ही रहेगी। यह एक अस्तित्वमूलक जरूरत है कि मैं वाकई किसी व्यक्ति का सामना तभी कर सकता हूँ जब मैंने अपने आप से भी संघर्ष किया हो। अस्तित्ववादी ज्ञान का रास्ता कठिन है, अपने अनुभवों से इसे बार-बार सीखना होता है। इन अनुभवों के आगे आत्मसमर्पण करके और इनको स्वीकार करके मैं उन सवालों की खोज के प्रति संवेदनशील हो पाया हूँ जिनको मैं अपने व्यक्तिगत सत्य की खोज में पूछने से भी डरता था। इसीलिए, जिन लोगों का मैं अनुदेशन करता हूँ उनके शब्दों व मनोभावों को समझने के लिए मुझे खुद को खोलना ही पड़ता है। इस तरीके से ही मैं प्रतिभागियों से व्यक्तिगत स्तर पर संवाद बना पाता हूँ और जीवन के नए मायने भी खोज पाता हूँ। इसलिए एक अस्तित्ववादी अनुदेशक बनने के लिए ऊंचे दर्जे की अभिप्रेरणा और जीवन में खुद को डुबो देने की गहन इच्छाशक्ति की जरूरत है और साथ ही निराशा और गलतियों को स्वीकारने की तैयारी भी जरूरी है। मुझे ये स्वीकार करना ही पड़ा कि ऐसा बहुत कुछ है जो मैं नहीं जानता और ये हमेशा याद रखना पड़ता है कि प्रमाणिक होकर ही मैं अपनी चिंताओं का सामना कर उनसे उबर पाऊंगा। प्रमाणिक होने का मतलब है अपने संदेहों व व्यक्तिगत सीमाओं का सामना करने की इच्छा का होना।

एक अस्तित्ववादी अनुदेशक के रूप में मेरी सबसे बड़ी खूबी है एक व्यापक दृष्टि अपनाने की क्षमता – यानी उदार होना, धैर्य बनाए रखना, और मानव जीवन की तमाम ज़िम्मेदारियों की एक मजबूत दार्शनिक समझ होना, उन परिस्थितियों में भी जब व्यक्ति घोर निराशा में हो या जब उसकी ज़िंदगी बिखर रही हो। इसका उद्देश्य है प्रतिभागियों को उनके बारे में ज्यादा स्पष्ट व जागरूक करना, उन्हें खुद को व आसपास की दुनिया को समझने के काबिल बनाना और एक परिपूर्ण मानव जीवन के लिए क्या आवश्यक है इसकी समझ बनाना।

प्रतिभागी क्या तलाश कर रहे हैं?

हर इंसान इसकी तलाश में है कि कोई उसे समझे और वो खुद को समझ पाए। प्रतिभागी इससे अलग नहीं होते हैं और जैसे-जैसे वे जीवन के ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर आगे बढ़ते हैं उनको मदद की जरूरत पड़ती है।

लोग एक मनचाहे भविष्य और वर्तमान के बीच जारी तनाव में फंसे रहते हैं। लोग निराशा में भी उम्मीद का दामन थामे रहते हैं और यही उम्मीद इंसान के जीवन की असली ऊर्जा है। यह दृष्टिकोण अपनाकर ही अनुदेशक भविष्य की अनकही उम्मीदों और सपनों को जगाते हैं।

प्रतिभागियों को बंधन व भय की बजाय मुक्ति का अनुभव कराने में मदद करने के उद्देश्य से किया जाने वाला ये अस्तित्ववादी अनुदेशन विश्वास पर टिका होता है। प्रतिभागी कैसा जीवन जीना चाहते हैं इसकी खोज करने में उनकी मदद की जानी चाहिए ताकि वे अपने मूल्य खुद स्थापित कर सकें।

एक गहरे अर्थ में अस्तित्ववादी अनुदेशन का अर्थ है एक समूह में प्रतिभागियों की असल इंसानियत को उभारना और इस समूह को सिर्फ अलग-अलग व्यक्तियों के योग से अधिक कुछ होने में मदद करना। असल में ये व्यक्तियों/लोगों के समूह के साथ, पूरे संगठन के साथ और खुद के साथ समन्यवन बनाने की एक प्रक्रिया है। अस्तित्ववादी अनुदेशन का अंतिम लक्ष्य है लोगों को क्या चल रहा है इसकी स्पष्ट दृष्टि बनाने में मदद करना, तब भी, बल्कि कहें तो खासतौर से तभी जब चीज़े उतनी खूबसूरत न दिख रही हों।

~~~

## करो और सीखो व डेविड कॉल्ब का सीख चक्र

तेजिन्दर सिंह भोगल

लगभग 2400 साल पहले यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने कहा था कि हमारी सब से पहली सीख कुछ करने से ही मिलती है। अगर हमें साईकल सीखना है तो उसे हम चला के ही सीखते हैं। हमें तैरना सीखना है तो तैर कर ही हम सीख पाते हैं। अगर हमें बैल को जोतना सीखना है या गायों को दुहना सीखना है तो हम यह बैल जोत कर और गाय दुह कर ही सीख सकते हैं।

यह सब बातें तो बहुत तर्क संगत लगती हैं पर दिक्कत यह है कि आधुनिक समाज में इस सोच का चलन हो गया है कि सीखने का एक ही ज़रिया है, और वह है स्कूल व कॉलेज की कक्षा में। जब तक हमें मास्साहब नहीं पढ़ाएँगे हम कुछ नहीं सीखेंगे, हमारी बुद्धि नहीं पनपेगी और हमारे दिमाग में और मिट्टी के ढेर में कोई खासा अंतर नहीं रह जाएगा।

ऊपर का तर्क तो ठीक लगता है बशर्ते हम इतिहास को ना देखें। आजकल कुछ भी सीखना है तो यह कहा जाता है कि आपको उसकी पढाई करनी पड़ेगी। डॉक्टर बनना है या इंजीनियर बनना है, आपको डॉक्टरी व इंजीनियरिंग की पढाई करने पड़ेगी। पर मज़ेदार बात तो यह है कि दुनिया के जो पहले डाक्टर या वैद या हकीम थे और या वह लोग जो ताजमहल और बड़े बड़े किले व गढ़ बनाते थे, प्रायः पढ़े लिखे नहीं होते थे। वह अपने हुनर का विकास कुछ खुद करके और कुछ औरों को देख कर ही करते थे। और इसी तरह अनगिनत गायक और किसान, दाई का काम करने वाले या खाना बनाने वाले, गाड़ी चलाने वाले या बढ़ाईगिरी करने वाले, यह सब जो सीखते थे, यह सब कर के सीखते थे।

अब मुद्दा यह है कि हमें कक्षा आधारित सीख और अनुभव आधारित सीख की सही मामले में तुलना कैसे करें। क्या कक्षा आधारित सीख का मतलब है किताबी ज्ञान और अनुभव आधारित सीख का अर्थ है कौशल और कला? क्या इसका मतलब है कि हमें किताबी ज्ञान पाना है तो हम कॉलेज जाएँ और कौशल पाना है तो हम केवल खुद अभ्यास करते रहें। क्या हमें कौशल पाने के लिए किसी मास्टर या गुरु या ज्ञानी की मदद नहीं चाहिए? और क्या किताबी ज्ञान व कौशल ज्ञान में कोई रिश्ता नहीं?

असल में दोनो प्रकार की सीख में एक गहरा रिश्ता है पर यह दिखता नहीं। इन दोनों के रिश्ते को उजागर किया अमरीकी प्रोफ़ेसर डेविड कॉल्ब ने। कॉल्ब द्वारा रचित इस सिद्धांत का नाम दिया कॉल्ब सीख चक्र।

कॉल्ब सीख चक्र सिद्धांत का मानना है कि सीख का पहला कदम होता है अनुभव। हम किसी भी कौशल को हासिल करने के लिए कुछ अनुभव करते हैं। हम पहली बार ज़िदगी में बैल को हांकते हैं, यह साईकल पर चढ़ते हैं या महिला समूह की मीटिंग को चलाने का प्रयत्न करते हैं। यह सीख चक्र का पहला कदम है।

बात यहाँ खत्म नहीं होती। वह अनुभव जैसा भी हो, खट्टा या मीठा, हम उस अनुभव के बारे सोचते हैं कि वह अनुभव कैसा गया। हो सकता है कि बैल आपकी आज्ञा की परवाह करे बिना झाड़ियों में धुस गया, या आपने साईकल को दिवार में मार दिया, या मीटिंग में काफी महिलाएँ बिना कुछ बताए उठ के चल दीं।

यह कॉल्ब चक्र का दूसरा पड़ाव है जिसमें हम उस पहले अनुभव के बारे में जितना याद कर सकते हैं, हम करते हैं। जो हमने अनुभव में देखा और महसूस किया उसमें हम अपने गुरु की बात भी जोड़ देते हैं। हमारा गुरु, यानी कि हमारा वह अनुभवी मित्र व संबंधी जो हमें इस कौशल पाने में मदद कर रहा है, वह भी बताता है कि उसने हमें क्या करते पाया। हो सकता है कि उसने देखा कि हमने बैल की रस्सी ढीली पकड़ी थी, या उसने पाया कि हमने साईकल के हैंडल को ज़यादा ही जोर से पकड़ लिया था, या कि मीटिंग शुरू होने से पहले महिलाओं से यह नहीं पूछा था कि क्या वह मीटिंग में एक घंटे तक बैठ पाएंगी।

अब आता है कॉल्ब चक्र का तीसरा कदम। इसमें हम या तो अपने आप और या अपने गुरु बनाम अनुभवी मित्र से यह समझने की कोशिश करते हैं कि हमने उस हुनर के कौनसे सिद्धांत को अनदेखा किया जिसके कारण दुर्घटना हुई। तब हमारे गुरु बताते हैं कि बैल को अगर रस्सी द्वारा साफ और स्पष्ट संदेशा नहीं मिलता तो वह अपनी मन मानी करते हैं। या, साईकल को अपने बदन जैसा लचीला मान लेना चाहिए। और या महिलाओं के साथ मीटिंग तभी सफल हो पाती है जब वह अपनी अपेक्षाएँ साफ साफ मीटिंग के शुरू में ही रख देती है।

जब आप इस सिद्धांत को सुनते हैं तो आपको अब लगता है कि मुझे समझ आया कि मैंने जो किया उससे सही नतीजा क्यों नहीं निकला। आपको सिद्धांत तर्क संगत और व्यावहारिक लगता है। और आप अब योजना बनाते हैं कि मैं जब फिर से बैल को हांकूंगा, यह साईकल चलाऊंगा या महिला समूह की मीटिंग करूंगा तो मैं पहले से क्या अलग करूंगा। और यही होता है चक्र का चौथा कदम जिसमें मैं फिर से नया अनुभव पाने के लिए, और या कहिए, नया प्रयोग करने के लिए तैयार हो जाता हूँ।

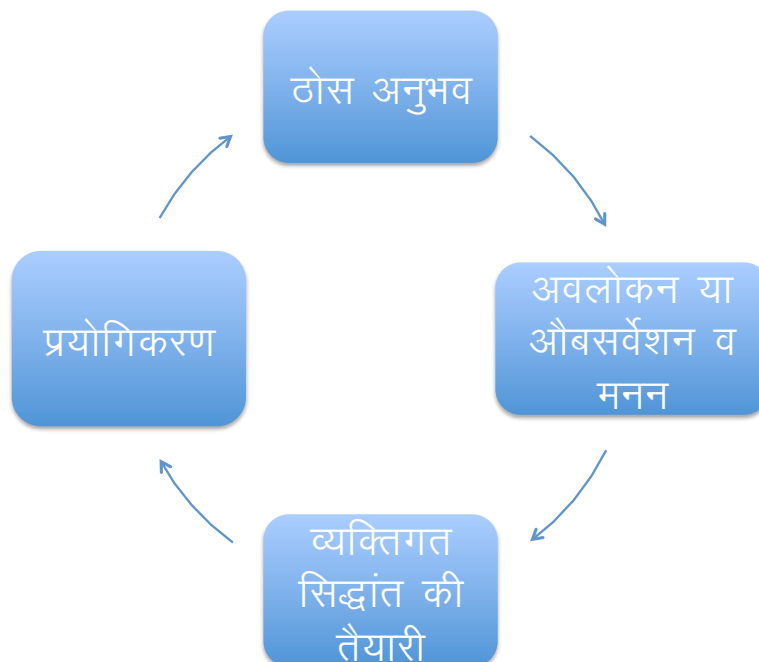
इससे शुरू हो जाता है, फिर से, सीख का चक्र। मैं बैल को फिर से हांकने की कोशिश करता हूँ, साईकल को फिर से चलाता हूँ या महिला मीटिंग को फिर से चलाता हूँ। हो सकता है कि बैल अब भी मेरी बात नहीं मान रहा, साईकल किसी और साईकल से टकराया और महिला मीटिंग में महिलाएँ सो रही थीं।

इस बार भी मैं अपने गुरु बनाम अनुभवी मित्र की सहायता से याद करने की कोशिश करता हूँ कि आखिरकर अनुभव के दौरान हुआ क्या। याद करने पर पता लगता है कि मैंने रस्सी तो ठीक पकड़ी थी पर मेरी आदेश की बोली स्पष्ट नहीं थी। या कि साईकल के हैंडल को मैंने बीच से पकड़ रखा था। और या कि महिला समूह की मीटिंग में मैं ही बोलता रहा था और महिलाओं को बोलने का मौका नहीं दिया था। और इस मनन से होता है इस चक्र का दूसरा पड़ाव।

उपरोक्त मनन के आधार पर मेरा गुरु मुझे कहता है कि बैल चलाने के सिद्धांत के दो भाग होते हैं : एक तो रस्सी को कस के पकड़ो और दूसरा है कि आदेश साफ शब्दों में दो। साईकल चलाने के सिद्धांत में समझ आता है कि हैंडल को इस तरह पकड़ना चाहिए कि ब्रेक दबाने में बिलकुल विलंब न हो। और महिला समूह मीटिंग का यह भी सिद्धांत स्पष्ट हो जाता है कि अगर सहभागियों को बोलने का मौका ना मिले तो वह बोर या उदासीन हो जाते हैं।

इस तरह चक्र का तीसरा कदम पूरा करते हुए मैं चक्र के चौथे पड़ाव में पहुँचता हूँ और मैं नया प्रयोग करता हूँ।

इस सब प्रक्रिया को हम चित्र द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं जो कुछ ऐसा दिखता है:



यह चक्र जैसे तो बहुत सीधा व सरल लगता है पर इसे जीवन में अपनाने से पहले आपको निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- सीख का चक्र कहीं से भी शुरू हो सकता है। इसका मतलब है कि कुछ लोग अन्यो के अनुभव को देखकर अपनी समझ की यात्रा शुरू करते हैं: यानी कि वह अपनी सीख की शुरुआत दूसरे पड़ाव से करते हैं। इसी तरह कुछ और लोग अपनी सीख की शुरुआत सिद्धांत सुनने से ही करते हैं। शुरुआत कहीं से भी हो, यह ज़रूरी है कि हर व्यक्ति चक्र के चारों पड़ावों को छुए।
- इस चक्र को शार्ट सर्किट करना संभव होता है। प्रायः यह शार्ट सर्किट महसूस करने और अवलोकन के बीच होता है। जब लोगों को कुछ अप्रिय भावनाएं आती हैं तो वह उसे देखने से मना कर देते हैं। यह करने से उनकी सीख में विघन पड़ जाता है।

## सोच और भावना की स्वयं विकास में भूमिका

तेजिन्दर सिंह भोगल

प्रयोगशाला में स्वयं विकास के दो पहिए हैं : सोचना व महसूस करना । और जैसे कोई गाड़ी एक ही पहिए पर ठीक नहीं चल पाती हम अपना विकास भी एक ही पहिए पर नहीं कर पाते । स्वयं विकास के लिए हमें दोनों सोच व भावना का इस्तमाल करना पड़ता है ।

इनमें से हम सोच के तरीके से तो भलि भांति परिचित हैं । सोच का इस्तमाल हम रोज़ मर्ग के जीवन में करते हैं । सोच की मदद से हम विचार रखते हैं, अपनी राय व्यक्त करते हैं, मुद्दों या व्यक्तियों में तुलना करते हैं, सिद्धांत पेश करते हैं और मुद्दों की समीक्षा करते हैं । हमारी पूरी स्कूली पढ़ाई का आधार ही है सोच । प्रायः जो सोच के क्षेत्र में निपुण हो जाता है वह स्कूली शिक्षा में सफल भी हो जाता है ।

सोच में निपुणता का सिलसिला हमारे संस्थागत काम में भी जारी रहता है । हमें कहा जाता है कि जो बात हम रखें व निष्पक्ष तरीके से रखें और भावनाओं के बहाव में आ कर न रखें । अगर कोई अपनी भावना व्यक्त कर देता है तो उसके बारे यह राय बन जाती है कि या वह व्यक्ति मज़बूत नहीं है, और या वह अभी भी बच्चा ही है ।

यह सब करते देखते यह हो जाता है कि इंसान फूट फूट, दुई दुई अपनी भावनाओं को पहचानने की क्षमता ही खो बैठता है । लिहाज़ा, यह सूरत पैदा हो जाती है कि जब भावनाओं की मदद लेने की बात उठती है तो व्यक्ति बोल उठता है : "भावना किस चिड़िया का नाम है?" या, "मैंने तो कुछ महसूस ही नहीं किया ।"

अब प्रश्न उठता है : अगर हमने इतने साल अपना जीवन बिना भावनाओं को पहचाने जी ही लिया है तो अब हम भावनाओं को पहचान कर अपने लिए क्या पा लेंगे? वैसे तो इस बात का संतोषजनक जवाब किसी भी परिपेक्ष में दिया जा सकता है पर अभी हम यह जवाब प्रयोगशाला के दायरे तक ही सीमित रखेंगे ।

प्रयोगशाला के संदर्भ में भावनाओं की अनेक भूमिकाएं हैं, जैसे कि

- समूह में भरोसे का माहौल बनाने में ।
- यह अजब मामला है कि आप चाहे जितना भी कहें कि मैं कुछ महसूस नहीं करता, भावनाएँ आप को नहीं छोड़तीं । आप की हर बात में, छोटे से छोटे कथन व हाव भाव में भावनाएँ छुपी रहती हैं । और इससे भी रोचक बात यह है कि आप चाहे अपनी भावनाओं को पहचाने या न पहचानें, आगे वाला आप की भावना को पहचान लेता है<sup>1</sup> । आप ने कोई छोटी सी बात कही और आगे वाला तुरंत पहचान लेता है कि आप नाराज़ है या खुश हैं या गमगीन हैं ।
- तो अगर यह बात हुई कि दूसरे मेरी भावनाओं से वाकिफ हो गए हैं और मैं नहीं हुआ हूँ तो एक संभावना बननी शुरू हो जाती है कि मैं शायद ऐसा कुछ न कर बैठुं जिससे दूसरे मेरे उपर भरोसा खो बैठें ।

<sup>1</sup> शोधकर्ताओं ने पाया है कि 2 साल के उम्र के बच्ची भी प्रायः औरों कि भावनाओं को काफी सटीक तरीके से पहचान लेते हैं । वह जान जाते हैं कि कौन उनसे खुश है और कौन नाराज़ ।

- हो सकता है कि मैं नाराज़ हूँ पर अपनी नाराज़गी को अभी तक नहीं पहचान रहा तो मैं कहता रहूँगा कि मैं तो नाराज़ नहीं। मेरे कहने के विपरीत अन्य लोग, जो यह पहचान लेंगे कि मैं तो नाराज़ हूँ मेरी बातों पर भरोसा रखना कुछ कम कर देंगे।
- इस बात का यह मतलब है कि अगर मैं चाहता हूँ कि लाग मेरी बात पर भरोसा करें तो यह अत्यंत ज़रूरी है कि मैं अपनी भावनाओं को पहचानूँ और इन्हें ऐसे व्यक्त करूँ जिससे अन्य लोग मेरी बात और मेरे हाव भाव को अनुरूप पाएं।
- अपने असली मूल्यों व अपनी असलियत को पहचानने में।
- लोकोक्ति है कि हाथी के दाँत दिखाने के और व खाने के और होते हैं। इसी प्रकार अनुभव हमें सिखाता है कि हम जिन मूल्यों को सब के सामने विदित करते हैं शायद वह हमारे सबसे महत्वपूर्ण नहीं होते।
- हो सकता है कि हम मानते हों कि हमारा सबसे बड़ा मूल्य है सच बोलना। पर हो सकता है कि कुछ हालात में हमें झूठ बोलना पड़ जाता है। जब हम अपना कोई भी मूल्य का अनुसरण नहीं करते तो उसका असर हमारी भावनाओं में झलकता है। लेकिन अगर हम अपनी ही भावनाओं को पहचानने में असमर्थ हो चुके हैं तो शायद हमको मालूम ही नहीं पड़ेगा कि हमने ऐसा कुछ किया है जो हमारी आत्मा को स्वीकार्य नहीं। भावनाओं को न पहचानने का अर्थ है कि हम आत्म विश्लेषण करने की ज़रूरत से बच जाते हैं और स्व: सुधार के मौके खो बैठते हैं।
- दूसरे को समझने में
- इन्सान मुख से कुछ भी बोल रहा हो हम उसे तभी ही समझना शुरू करते हैं जब हमें उसकी भावनात्मक प्रतिक्रियाएं दिखनी शुरू करते हैं।
- आपसी समझ और भरोसे की उत्पत्ती
- जैसे जैसे ग्रुप में अपनी बात ऐसे रखना शुरू करता हूँ कि लोग मेरी भावना और कथन को अनुरूप पाना शुरू कर देते हैं वहां वह भी हिम्मत करनी शुरू करते हैं कि वह अपने दिल की बात रखें और अपनी भावनाओं के पीछे कारण की सब के सामने तहकीकात करें। इस प्रक्रिया में एक इन्सान दूसरे की हिम्मत से हिम्मत पाता है और इसी तरह पूरे ग्रुप में भरोसे की उत्पत्ती हो जाती है।

साधारण जीवन में भी अपनी भावनाओं को पहचानना उतना ही ज़रूरी है जितना कि प्रयोगशाला के संदर्भ में। अगर हम अपनी भावनाएँ पहचानने में असमर्थ होते हैं तो हम जो कर बैठते हैं उनके पीछे विवेक की जगह हाथ हमारी भावनाओं का होता है। बहुत से निर्णय हम किसी के विरुद्ध ले बैठते हैं क्योंकि हमारे दिल को वह व्यक्ति भाया नहीं। क्योंकि हमने अपनी भावना नहीं पहचानी हम अपने आप को झुठलाते हैं कि हमारा निर्णय विवेकपूर्ण है न कि हमारी भावनाओं से जुड़ा हुआ।

इसके विपरीत अगर आप अपनी असली भावनाओं को पहचानते हैं तो आपके लिए यह भी संभव हो पाता है कि आप अपनी भावनाओं के पीछे के कारण को भी पहचान सकें। हो सकता है कि आपको कोई इन्सान इसलिए नहीं अच्छा लगा क्योंकि किसी दिन उस व्यक्ति ने आपसे सीधे मूह बात नहीं की थी। अगर आप अपनी भावनाओं को पहचानने में सक्षम हैं तो आप मनन शुरू कर देंगे कि दूसरे व्यक्ति ने उस दिन आपके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया। हो सकता है उस दिन व आदमी किसी और तनाव में था और उसने अपना गुस्सा आप पर निकाल दिया। या हो सकता है कि उसका अभद्र व्यवहार आपके खुद के व्यवहार से जुड़ा हो।

यह सब सोचते हुए संभव है कि आपकी नाराज़गी कम हो और आप अपने विवेक का उपयोग करते हुए उस व्यक्ति के साथ आगे का व्यवहार अपनी भावनाओं के ऊपर न टिकाते हुए अपने विवेक के आधार पर करें।

भावनाओं क्या हैं और हम इनके कैसे पहचानें? भावनाएं प्रायः हमारी दिली प्रक्रियाएँ हैं। यह ना तो अपने में अच्छी हैं या बुरी हैं। यह केवल हैं। यह स्वतः पैदा हो जाती हैं। इन्हें हम पैदा करने से नहीं रोक सकते, पहचानने से ज़रूर अपने को रोक सकते हैं। हां, यह जरूर है कि अगर हम अपनी भावनाएं नहीं पहचानते और इनको दबाए रखते हैं तो यह भावनाएं और प्रबल और दिक्कतदाई हो जाती हैं। भावनाओं को संभालने के एक ही तरीका है: इन्हें पहचानना और इन्हें स्वीकार करना।

भावनाएँ एक थर्मामीटर का काम करती हैं। वह बताती हैं कि हमें कोई घटना या सोच या व्यक्ति कितना अच्छा या खराब लगा। भावनाएँ प्रायः हमारे शरीर में उत्पन्न होती हैं और इनका असर हम हमारी धमनियों में, अपनी रगों में महसूस कर सकते हैं, बशर्ते हम भावनाओं के बारे सचेत रहें।

भावनाएँ तो बहुत सी होती हैं और हर स्तर की तीव्रता की होती हैं। इन्हें हम चार वर्गों में बांट सकते हैं। हर वर्ग में बहुत प्रबल व बहुत हल्की भावनाएँ पाई जाती हैं।

- गुस्से से मिलती भावनाएँ : इसमें जहां एक तरफ भयानक क्रोध होता है तो दूसरी तरफ हल्की चिड़चिड़ाहट होती है।
- दुख से मिलती भावनाएँ : इसमें जहां एक तरफ आत्मघाती विषाद हो सकता है तो दूसरी तरफ अपने ऊपर हल्का सा तरस हो सकता है।
- डर से मिलती भावनाएँ : इसमें एक छोर दिल दहला देने वाला आंतक हो सकता है तो दूसरी छोर मंद सी चिंता हो सकती है।
- खुशी से मिलती भावनाएँ : इसमें एक छोर खुशी का उन्माद हो सकता है वहां दूसरे छोर हल्की सी प्रसन्नता हो सकती है।
- प्यार से मिलती भावनाएँ : इसमें एक ओर दिवानापन हो सकता है तो दूसरी ओर किसी के लिए हल्की सी स्वीकृति हो सकती है।
- घृणा से मिलती भावनाएँ : इसमें एक ओर घोर घृणा हो सकती है तो दूसरी ओर हल्की नापसंदी हो सकती है।
- आश्चर्य से मिलती भावनाएँ : इसमें एक ओर बिजली जैसा झटका लग सकता है तो दूसरी ओर दूसरी ओर हल्की सी हैरानी हो सकती है।

तो अब हम आ गए जहाँ हमने बात शुरू की : हम स्वः विकास में दोनो सोच और भावना का इस्तमाल कैसे करते हैं। हमने देखा है कि भावना को हम महसूस करते हैं, भावनाएं बहुत से प्रकार की होती हैं, भावनाओं की तीव्रता अलग परिस्थितियों में भिन्न होती है वगैरह वगैरह। तो पहले बात आती है भावनाओं को महसूस करना, उन्हें पहचानना और कबूल करना कि हाँ यह भावना मेरे अंदर ही उत्पन्न हुई है।



इस सब के बाद दूसरा कदम होता है तहकीकात करना खुदमें। अब काम आता है सोच का<sup>2</sup>। मैंने यह भावना महसूस की तो क्यों कि? अमुक घटना से मैं क्यों प्रभावित हुआ? मेरे अंदर की मानसिकता, मनोभाव, इच्छा या मूल्य क्या हैं जिसके कारण मुझे अमुक घटना ने प्रभावित किया। क्या यह मनोभाव या इच्छा या मूल्य से मैं परिचित हूं : क्या मैं जानता हूं कि यह सब कुछ मेरे अंदर थे? क्या मुझे मेरे अंदर की इच्छा या मूल्य मुझे स्वीकार्य हैं?

टुक में क्या हो रहा है कि भावनाओं को समझने के लिए मैं उन तथ्यों को अंदर से कुरेदना शुरू कर देता हूं जिनसे मैं अभी तक अनभिज्ञ था। और इसी मंथन में होता है स्व: विकास, ऐसा बदलाव जो मुझे आत्म ज्ञान के रास्ते और आगे ले आया है।

---

<sup>2</sup> यहां यह भी कहना उचित होगा कि कुछ लोग जब भावनाओं के महत्व को समझना शुरू कर देते हैं तो वह दूसरे सिरे पर पहुंच जाते हैं। उनके लिए जीवन अब केवल महसूस करने का नाम है। परंतु यह भी उतनी ही बड़ी गलती है जितना की इससे विपरीत सोच : कि जीवन हम केवल सोच के आधार पर निकाल लेंगे। इस लेखक का मानना है कि भावना एक अत्यंत ज़रूरी तथ्य है जिसके बिना सोच सही निर्णय नहीं ले सकती। पर निर्णय सोच ही के द्वारा होता है, भावनाओं द्वारा नहीं।

# जो हैरी के कमरे और मैं

तेजिन्दर सिंह भोगल

## शुरुआत जो हैरी कमरों से

आप सब जो हैरी खिड़की के वैचारिक ढाँचे से तो अवगत होंगे ही। फिरभी, बात में कसर न रह जाए, इसलिए मैं इस ढाँचे को एक बार फिर से आप सब के सामने पेश करता हूँ।

जो हैरी वैचारिक ढाँचे के अनुसार हमारे व्यक्तित्व के चार पहलू होते हैं। हर एक पहलू को हम एक कमरे की उपमा दे सकते हैं। पहला कमरा है वह जिसके अंदर पड़ी वस्तुएं हर कोई जानता है : मैं खुद जानता हूँ, व अन्य भी जानते हैं। कहने का मतलब यह है कि व्यक्तित्व के भाग का यह वह आयाम है जिनसे मैं भी वाकिफ हूँ और बाकी भी।

## जो हैरी के कमरे

|                | जानते हैं     | अन्य         | नहीं जानते      |
|----------------|---------------|--------------|-----------------|
| जानता हूँ मैं  | 1 खुल्ली बैठक |              | 2 प्राइवेट कक्ष |
| खुद नहीं जानता |               | 3 महमान कक्ष | 4 रहस्य कक्ष    |

दूसरा कमरा वह है जिसे मैं जानता हूँ पर अन्य नहीं जानते। यह है मेरा प्राइवेट कक्ष जिसमें मैं वह व्यवहार और विचार रखता हूँ जिससे केवल मैं अवगत हूँ, बाकी नहीं। तीसरा कमरा है महमान कक्ष। यह मेरे व्यक्तित्व का वह भाग है जिससे बाकी तो भली भांति अवगत हैं, पर मैं नहीं हूँ। और आखिर में चौथा कमरा है जिसे न ही कोई दूसरा जानता है न ही मैं। इसमें मेरी छुपी हुई संभावनाएँ यह अत्यंत दबी हुई इच्छाएँ हैं जिनके बारे मेरे चेतन में तो अभी कुछ नहीं आया है और न ही किसी और को इन सबकी भनक है।

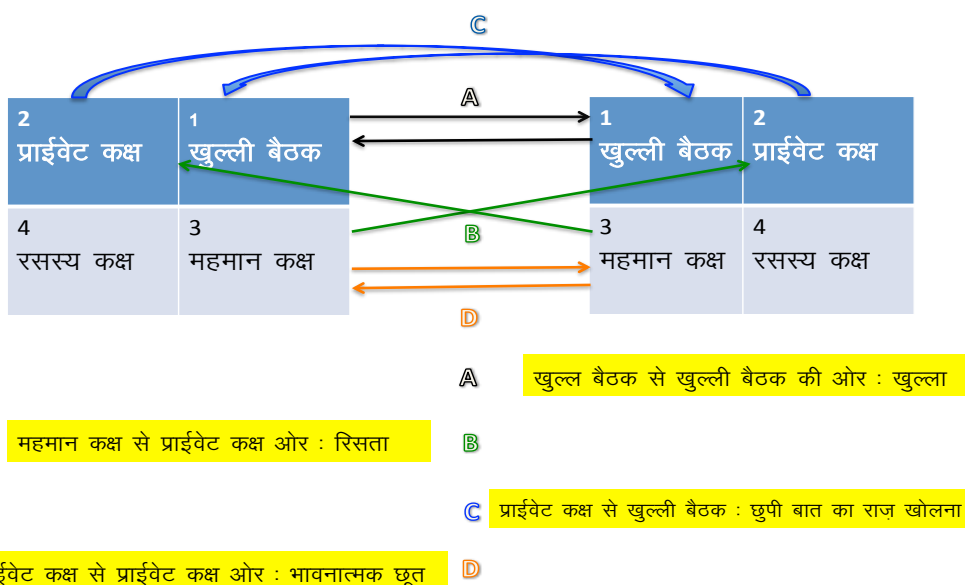
## दो लोगों में संचार के प्रकार

जब दो लोग एक दूसरे के साथ परस्पर जुड़ाव में आते हैं तो दोनों के बीच में बहुत प्रकार के संचार होते हैं। पहला संचार है जिसमें मेरी खुल्ली बैठक की बातें दूसरे की खुल्ली बैठक की बातों के साथ मिलती हैं। इसमें रोज मर्चा की सब बातें आती हैं जिसमें हम दोनों एक दूसरे से सहज बात करते हैं और इसमें कोई विचलित नहीं होता। इसमें मैं अपने वह विचार रखता हूँ जिन्हें मैं नहीं छुपाता और दूसरा वह विचार रखता है जिन्हें वह कभी नहीं छुपाता। अगर हमारे

इन जगह जाहिर विचारों में बहुत बड़ा अंतर है तो हम दोनों में तकरार हो सकता है। इस स्थिति में चाहे झगड़ा हो या सुलह हम इसे खुल्ला संचार या ए (A) ही कहते हैं। (कृप्या नीचे दिए हुए रेखा चित्र को देखें)

दूसरा संचार होता है जिसमें हम दूसरे की असलियत समझ जाते हैं बिना दूसरे के जाने। इसमें मैं दूसरे के चरित्र के वह पहलू को समझ जाता हूँ जिसे वह भी नहीं जानता। उदाहरण के लिए अगर वह इंसान दबाव के समय अपने कनिष्ठों के ऊपर चिल्लाना शुरू कर देता है तो हो सकता है वह अपने इस व्यक्तित्व के पहलू से अवगत नहीं है। पर अंजाने में मैं इस व्यवहार से अवगत हो गया हूँ। इस अनायास संचार के तरीके को हम रिसाव या बी (B) कहते हैं। रिसाव द्वारा जानी गई बातें हम प्रायः उस व्यक्ति को नहीं बताते। (इसके पीछे भी कारण है जिसे हम इस लेख के अगले हिस्से में देखेंगे।) हाँ, यह बात ज़रूर है कि रिसाव द्वारा जानी हुई बातें भले ही उस व्यक्ति को ना बताएँ परंतु यह बातें हम अपने अन्य साथियों को या अंतरंगों को खूब चटकारे ले के बताते हैं।

## दो व्यक्तियों में अलग प्रकार के संचार



तीसरे प्रकार का संचार वह होता है जिसमें हम हिम्मत करके अपने प्राइवेट कक्ष की बात किसी और को बताते हैं। मान लीजिए मैं अपने नए साथी की बात नहीं समझ पा रहा। शायद वह अंग्रेज़ी फ़र्राटे से बोलता है यह वह अपनी बात में इतने कठिन शब्द इस्तमाल करता है कि मुझे लगने लगा है कि उसकी तुलना में तो मैं गंवार ही हूँ। इसलिए जबभी हम दोनों के बीच में कोई बात होती है तो मैं हाँ हूँ कर के उसे टाल देता हूँ। पर एक दिन मैं हिम्मत कर के अपने ज़हन में छुपी हुई बात उस व्यक्ति को बता ही देता हूँ। मैं बताता हूँ कि मैं उसकी बात प्रायः समझ ही नहीं पाता हूँ और इस कारणवश मैं अपने आप को उनसे छोटा महसूस करने लगा हूँ। इस प्रकार के संचार को हम उपाद्धि देते हैं : छुपी बात का राज़ खोलना या सी। इस प्रकार का संचार बहुत ज़रूरी माना जाता है क्योंकि जहाँ इस प्रकार का संचार करने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए वहीं यही वह संचार है जिसके सहारे सब से ज़्यादा भरोसेमंद व नज़दीकी रिश्ता बनता है।

एक चौथा भी संचार का तरीका होता है जो शब्दों के परे है। कभी ऐसा होता है कि कोई बहुत हताश है, हाथ पर हाथ धरे बैठा है। तो बिना बात कहे आप उस व्यक्ति के हाव भाव से इतना प्रभावित हो जाते हैं कि आप भी हताश हो जाते हैं। ऐसे ही अन्य भावों का भी हमारे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ता है। कोई भयभीत है तो हम अनायास भयभीत होने लगते हैं। कोई हंसता है तो हम भी हसने के मूड में आ जाते हैं। इस प्रकार के संचार को हम भावनात्मक छूत या डी का नाम देते हैं।

## स्व:विकास में अलग अलग संचार के तरीकों की भूमिका

जब हम अपने खुद के विकास की बातें करते हैं तो इस विकास में सबसे ज़रूरी हो जाता है अपने उस महमान कक्ष के बारे जानना जिससे हम अवगत नहीं। यह इसलिए कि जब तक हमें अपनी कमी के बारे पता नहीं चलेगा हम अपने आप को बदलने का या सुधारने का प्रयत्न भी नहीं करेंगे।

पर हमें अपने महमान कक्ष में छुपी बातों के बारे वह ही बता सकता है जो उस महमान कक्ष में रह चुका है। यानी कि वह व्यक्ति जिसने हमें नज़दीक से देखा है। पर अब एक बड़ा व्यवधान सामने आ जाता है। और इस व्यवधान का नाम है नाक या इज्जत।

साधारण सामाजिक आदान प्रदान में हम प्रायः ऐसी कोई बात नहीं करते जिससे की किसी की नाक कट जाए। और ना ही हम चाहते हैं कि कोई हमें ऐसी बात कह जाए जिससे हमें शर्म या ज़िल्लत महसूस हो। जो व्यक्ति सदैव ध्यान रखता है कि अपनी किसी भी बात में दूसरे की आँख न झुखे वह आदमी सभ्य माना जाता है। इसके विपरीत जब हम पाते हैं कि कोई व्यक्ति अपनी ज़बान को लगाम नहीं देता तो प्रायः हम उससे कन्नी काटते हैं और उसे असभ्य मानते हैं।

पर अगर हम ध्यान से सोचें तो ऐसी क्या बातें होती हैं जिनसे हमारी नज़र खुद बखुद झुक जाती है तो हम पाएँगे की यह वही बातें हैं जिनहें हम अपने दिल की गहराई में अपने बारे छुपा के रखे होते हैं। एक उदाहरण से मैं अपनी बात स्पष्ट करता हूँ।

मान लीजिए कि मैं अपने आप को बहुत सौम्य समझता हूँ। मैं अपने आप को बहुत शांत स्वभाव का व्यक्ति समझता हूँ जो सदैव अपने भावों पर काबू रखे रहता है। साथ मैं अपने आप को अत्यंत समझदार व्यक्ति समझता हूँ जिसपर कोई भी भरोसा कर सकता है। यह सब मेरी अपने बारे मान्यताएँ हैं या दूसरे शब्दों में मेरी आँखों में मेरी अपनी छवी। साथ में मैं यह दिल से चाहता हूँ कि बाकी लोगों भी मेरे बारे यही छवी रखें।

पर ऐसा मौका आता है कि मेरा ऐसे कनिष्ठ से पाला पड़ जाता है जो अपने आप को बहुत तीसमारखों समझता है। वह मेरे सुझावों को ऐसे हाव भाव से सुनता है जैसे कि वह मेरे ऊपर हंस रहा हो। ऐसे लगता है कि वह मुझे सदैव जता रहा है कि तुम तो बड़े बेवकूफ़ हो। यह भी कोई बात हुई वगैरह वगैरह। जब वह मुझे इस तरीके से सुनता है तो मुझे लगता है कि उसे चांटा लगा दूँ। मैं चांटा तो नहीं लगाता पर धीरे धीरे उस व्यक्ति के साथ तीखे स्वर से बात करनी शुरु कर देता हूँ। और एक दिन ऐसा आता है कि मैं उसके हाव भाव को देखकर ही इतना चिड़ जाता हूँ कि सब कुछ भूल कर उस व्यक्ति पर बरस पड़ता हूँ।

अगर तब मुझे मेरा साथी पूछता है कि क्या हुआ तो मैं कहता हूँ कि मेरा कनिष्ठ मेरे साथ फजूल के सवाल जवाब कर रहा था इसलिए मैंने उसे थोड़ा डांट दिया। पर असल बात तो

यह है कि मैंने थोड़ा नहीं डांटा, मैं तो पूरा चिल्ला ही दिया था। और दूसरी बात तो यह है कि उसने बात ही रखनी शुरू की थी कि मैं उस पर बरस पड़ा।

अब देखिए मेरे साथी के मन में द्वंद। क्या वह मुझे वह हिम्मत कर के बताए कि तुम तो मियां, आज, बिलकुल बौखला गए थे। कि आज तो तुमने हद ही कर दी और उस नादान पर बिलवजह चिल्ला उठे। क्या वह यह सब मुझे मेरे चहरे पर बता सकेगा?

प्रायः अगर मेरा साथी थोड़ी भी समझदारी रखता है तो वह बस छोटा सा प्रश्न पूछ के कि, क्या हुआ भाई, चुप हो जाएगा। और जब मैं अपने बचाव पक्ष में सारा दोष अपने कनिष्ठ पर डालूंगा तो वह चुप रहेगा।

इसके विपरीत अगर वह यह गलती कर के बतादेता है कि उसे असल में क्या लगा तो हो सकता है कि मैं अपने आप इतना अपमानित महसूस करूंगा कि मैं अपने साथी से बात करना भी छोड़ दूंगा। और यही कारण है कि मेरा साथी जो मुझसे दुश्मनी नहीं लेना चाहता, सत्य वचन को ढांक कर अपने मन के अंदर छुपा लेगा।

पर उसके चुप होने का असर मुझ पर क्या होगा? हां, वहां तो मैं अपमानित होने से बच जाऊंगा पर मैं अपने मेरे बारे एक महत्वपूर्ण समझ बनाने के मौके से वंचित हो जाऊंगा। अब मैं यह बात ही नहीं सोचूंगा कि मैं अपने कनिष्ठ के हाव भाव देखकर क्यों गुस्साया था। क्या यह बात है कि कहीं मेरे मन की गहराईयों में मुझे अपनी समझदारी पर शक है? और बात तो यह है कि वो जैसा भी था मैं इतना क्यों प्रभावित हो रहा था? मेरे गुस्से का कारण उसके शब्द नहीं थे, उसके हाव भाव ही थे। टुक में मेरे व्यक्तित्व के अंदर ऐसी क्या कमी थी जो मुझे ऐसा प्रभावित कर रही थी? क्या यही कमी मेरे जीवन के अन्य क्षेत्रों में आड़े आती है? क्या मैं इस कमजोरी के कारण अपने जीवन के कुछ उद्देश्यों को पाने से वंचित रह रहा हूँ?

अगर आप मेरी बात से कुछ सहमत हो रहे हैं तो अब आप सवाल उठा सकते हैं : यह बात तो समझ में आई कि दूसरे व्यक्ति के पास ऐसा खजाना है जिसे अगर मैं पा लूंगा तो मुझे ही लाभ होगा। पर उसे कौन से पागल कुत्ते ने काटा है कि वह मेरी नाराजगी को नज़र अंदाज़ करके मुझे मेरे इस व्यवहार के बारे बताए जिसे मैं सुन कर अपमानित हो जाऊँ? वह क्यों अपने जहन में छुपे हुए राज़ को, जो उसके प्राइवेट कक्ष में हैं (भले ही वह आप के बारे हो) आप के लिए खोल के रख दे?

इस प्रश्न का जवाब सीधा है। दूसरा आपको अपने बारे तब ही बताएगा जब उसे काफी यकीन हो जाएगा कि आप उसकी बात को समानजनक तरीके से सुनेंगे और आप यह नहीं सोचेंगे कि वह इन्सान आपको इसलिए बता रहा है क्योंकि वह आप का दुश्मन है। इसके विपरीत आपको यह तहे दिल से मान लेना पड़ेगा कि यह व्यक्ति जो आप को अपनी ही कड़वी बात सुना रहा है वह सच में आप ही का हितैशी है।

इसपर आप दूसरा व्यावहारिक सवाल खड़ा कर सकते हैं। अगर अभी तक दूसरे ने आपको अपने बारे बताने की ज़रूरत नहीं की तो वह अब क्यों करेगा? इस सवाल के दो जवाब हो सकते हैं। पहला, कि आप उनकी हिम्मत बढ़ाने के लिए अपने तरफ से अपने बारे ज़हन में छुपी हुई बात, जो आपके प्राइवेट कक्ष में हैं, दूसरे को बताएं। इससे यह माहौल पैदा होगा कि दूसरे व्यक्ति को लगने लगेगा कि आप उनपर भरोसा करते हैं। (और अगर आपको याद होगा तो यही बात कुछ पहले लेख में लिखी गई थी। कि अगर आप किसी के साथ सी प्रकार के संचार का इस्तमाल करते हैं तो काफी संभावना बन जाती है कि आप का रिश्ता उनसे सुदृढ़ हो जाएगा।)

दूसरा, आप उनसे अपने बारे फीडबैक लेने का आग्रह करें। आग्रह के तरीके में आप की गंभीरता झलकनी चाहिए कि आप सच में अपने बारे जानना चाहते हैं। तीसरा, जब आप फीडबैक मांगें आप अपने बारे अनुमान, अंदेशे या राय न मांगें परंतु साफ तथ्य मांगें। यह सब करने पर शायद दूसरा हिम्मत करके आप को आपके बारे कुछ बताना शुरू करेगा। और अगर आप उनकी बात पर सम्मान जनक गौर करने में सफल होंगे तो हो सकता है कि वह आपको आपके बारे और भी कुछ बताए।

और इस तरह, आखिरकर, आप का स्व: विकास का कार्यक्रम चल पड़ेगा।

## रेफरेंस या सहायक ग्रंथ

इस लेख में जो रेखा चित्र बने हे उसका आधार एडगर शाईन की पुस्तक प्रौसैस कंसलटेशन रीविसिटेड में से दिए हुए रेख चित्र हैं जो उस पुस्तक मे 127 वं 129 पृष्ट पर है। वैसे इस लेखक ने उन रेखा चित्रों में कुछ बदलाव किए हैं। इस बदलाव की जिम्मेदारी पूर्णतः इस लेखक की है।

इस लेख के विषय वस्तु का भी आधार वही पुस्तक है। पर यहाँ भी जहाँ एक तरफ उदहारण इस लेखक के हैं वहीं उसी तरफ विषय वस्तु की जो समझ पेश की गई है वह भी इसी लेखक की है।

उस पुस्तक के संपादक हैं एडीसन वैसले और इस पुस्तक को 1999 में प्रकाशित किया गया था।

## मानविय प्रक्रिया प्रयोगशाला में सीखने की शर्तें

### तेजिन्दर सिंह भोगल

आप प्रायः किसी सहभागी से पूछिए तो वह यही कहेगा कि मानविय प्रक्रिया प्रयोगशाला का अनुभव अन्य प्रशिक्षणों से बिलकुल भिन्न था। क्यों न हो, यहाँ लेक्चर या पाठ छोड़ कर सारी सीख अनुभव आधारित जो कर दी गई है।

इसमें पहला सवाल तो यह आता है कि हम अनुभव तो ले रहे हैं पर हम अनुभव से क्या हासिल करना चाहते हैं। इसका जवाब इस तकनीक के विशेषज्ञों का यह है कि हम निम्न मुद्दों पर अपनी सीख बना सकते हैं:

- खुद के व्यवहार का दूसरों पर असर।
- दूसरों के व्यवहार का मुझ पर असर।
- अलग अलग संदर्भों में खुद के व्यवहार के अन्य विकल्प।
- नए व्यवहार अपनाने के नतीजे।
- रिश्ते किस प्रकार बनते हैं या बिगड़ते हैं।
- ग्रुप में किस प्रकार के अनलिखित सामाजिक व्यवहार के नियम ग्रुप को काम करने में मदद करते हैं और कौन से आड़े आते हैं।
- ज़िदगी में अपने लिए कौन से विकल्प अपने बारे चुने जा सकते हैं।
- खुद के बारे प्रयोगशाला के बाद भी मैं अपने बारे सीख कैसे चालू रख सकता हूँ।

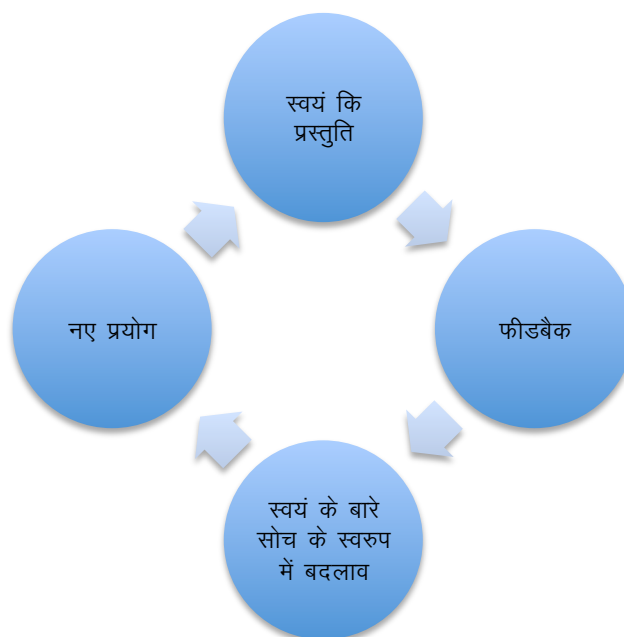
यहाँ तक तो सब ठीक है पर अब क्या यह सब जो ऊपर लिखा है वह अपने आप हो जाएगा? उदाहरण के लिए मैं कैसे जान पाऊँगा कि दूसरों के व्यवहार का मुझपर क्या असर हो रहा है? इसका जवाब यह है कि यह सब जानने के लिए हमें कुछ व्यवहार से जुड़ी शर्तें पूरी करनी पड़ेगी। इन शर्तों को हम ऐसे दर्शाते हैं:

### सीख हासिल करने की शर्तें

- स्वयं की प्रस्तुति करना
  - मेरे मन और दिल में क्या चल रहा है मैं उसे साफ साफ सब के सामने रख दूँ।
  - जो मैं कह रहा हूँ और जो बाकी लोग महसूस कर रहे हैं उसमें बड़ा अंतर न होना।
- सब का एक दूसरे के प्रति सही फीडबैक देना
  - मेरे अंतरंग विचार और भावनाएँ जानकर लोगों द्वारा मुझे साफ और स्पष्ट प्रतिक्रिया दिया जाना।
  - दूसरों के अंतरंग विचार और भावनाएँ जानकर मेरी उनको साफ और स्पष्ट प्रतिक्रिया देना।
- माहौल भरोसे का

- बातें यहाँ की और अभी की ही करना।
- यह भरोसा कि यहाँ की बात यहीं रहेगी और बाहर न जाएगी।
- जोखिम उठाना
  - अपने दिल की बात रखने पर हरदम यह डर बना रहता है कि दूसरा बुरा मान जाएगा। परंतु लैब के संदर्भ में हम यह फीडबैक दूसरों के भले के लिए देते हैं ना कि इसलिए की हमारी उनसे पुरानी रंजिश है।
  - इसी तरह हम दूसरे के फीडबैक पर यह मान कर गौर करते हैं कि दूसरा यह बात हमारे भले के लिए ही कह रहा है।
- नए प्रयोग करना
  - मैंने जीवन में जो व्यवहार नहीं किया वह मैं इस प्रयोगशाला में कर के देख सकता हूँ और जान सकता हूँ कि उसका असर क्या होता है।
- प्रयासरत रहना
  - कहते हैं, हलवे में जितना गुड़ डालेंगे, वह उतना ही मीठा होगा। मैं जितना जोखिम उठाऊँगा, जितना स्वयं को प्रस्तुत करूँगा, जितना फीडबैक दूँगा और जितने फीडबैक को गंभीरता से लूँगा मैं उतना ही स्व: विकास कर पाऊँगा और उतना ही अपने साथियों की मदद कर पाऊँगा।

यह ऊपर लिखित शर्तें आपस में जुड़ी हुई हैं। मैं जितना ही अपने को प्रस्तुत करता हूँ लोग मुझे उतना ही फीडबैक देते हैं। और जितना मैं अपने बारे फीडबैक पर मनन करता हूँ उतना ही मैं अपने बारे सोच बदलता हूँ। सोच बदलने पर विचार आता है कि मैं अमुक व्यवहार क्यों नहीं करता, तो मैं लैब में एक नया प्रयोग कर के देख लेता हूँ। इस चक्र को हम इस चित्र में दर्शाते हैं:





## प्रक्रियात्मक संवेदनशीलता क्या है

तेजिन्दर सिंह भोगल

प्रक्रिया वह वस्तु है जो हमारे व्यक्तिगत व सामूहिक व्यवहार में प्रकट होती है पर जिसपर साधारणतः कोई टिप्पणी नहीं करता। इसके विपरीत इस पर अगर कोई टिप्पणी कस ही देता है तो उसे अभद्र माना जाता है।

सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में प्रक्रिया का खास अर्थ होता है। इस अर्थ को हम कुछ उदाहरणों से स्पष्ट कर सकते हैं।

मान लीजिए आप कलेक्टर के कमरे में जाते हैं। वहाँ देखते हैं कि जहाँ एक तरफ गाँव से आए लोग खड़े हैं, वहाँ शहरी लोगों को कुर्सी पर बैठाया गया है। या गाँव से आए ज़्यादा लोग खड़े हैं, पर वहाँ के उच्च वर्गिय सरपंच को जगह दी गई है। तो इसका मतलब है कि कलेक्टर के मन में कुछ चल रहा है जिसके आधार पर वह कुछ लोगों को तो बैठने का संकेत देता है और कुछ को नहीं। और या हम कह सकते हैं कि उन्हें मिलने वाले लोगों के मन में भी चल रहा है कि उनके लिए उपयुक्त स्थान क्या है। तो यह प्रक्रिया लोगों के मन में भी चल रही है।

हम इसे सामाजिक प्रक्रिया भी कह सकते हैं जिसमें सभी लोग इस ऊँच नीच के व्यवहार को शह देते हैं। हो सकता है कि कलेक्टर का बाबू या गार्ड कुछ लोगों को तो कहता है कि बैठ जाइए और कुछ को कुछ नहीं कहता।

जैसा कि हमने कहा यह व्यवहार वैसे तो स्पष्ट हमारी आँखों के सामने हो रहा होता है पर हम प्रायः इस व्यवहार को देखते देखते इतने आदि हो चुके होते हैं कि हमें यह व्यवहार दिखता ही नहीं। इसे देखने का मतलब है मुखौटा उतारना। यही कारण है कि इस सामने हो रही चीज़ को समझने की क्षमता को हम प्रक्रियात्मक संवेदनशीलता कहते हैं।

प्रक्रिया वैसे तो बहुत प्रकार की होती हैं पर हम अभी चार प्रक्रियाओं की तरफ इशारा कर सकते हैं:

- खुद के स्तर पर प्रक्रियाएँ
- दो व्यक्तियों के रिश्तों के स्तर पर प्रक्रियाएँ
- ग्रुप या समूह स्तर की प्रक्रियाएँ
- समाज के स्तर पर प्रक्रियाएँ

जब हम प्रक्रियात्मक संवेदनशीलता की बात करते हैं तो हमारा इशारा उपरोक्त दरशाई गई चारों प्रक्रियाओं की तरफ होता है।

### खुद के स्तर पर प्रक्रियाओं की तरफ संवेदनशीलता

इस संवेदनशीलता का अर्थ है

- जागरूकता खुद की भावनाओं, इच्छाओं, तमन्नाओं व आवेगों के प्रति।

- जागरूकता खुद के विचारों और विचारों व भावनाओं के रिश्ते के प्रति।
- इस बात की जागरूकता कि दूसरे के व्यवहार का हमारी भावनाओं व विचारों पर क्या असर पड़ा है।
- मन के अंदर हो रहे द्वंद्व प्रति जागरूकता।
- अपने मनोवैज्ञानिक सुरक्षा कवच के उपयोग प्रति जागरूकता।

## दो व्यक्तियों के रिश्तों के स्तर पर प्रक्रियाओं की तरफ संवेदनशीलता

इस संवेदनशीलता का अर्थ है:

- एक व्यक्ति के व्यवहार का दूसरे पर असर को समझ पाना।
- पारस्परिक व्यवहार से रिश्ता कैसे बदल रहा है इसे समझ पाना।

## ग्रुप या समूह स्तर की प्रक्रियाओं की तरफ संवेदनशीलता

इस संवेदनशीलता का अर्थ है:

- समूह में माहौल को समझ पाना।
- यह समझ पाना कि समूह कैसे बदल रहा है।
- यह देख पाना कि समूह कितना प्रभावी या अप्रभावी हो चला है।
- समूह में नेतृत्व की प्रक्रिया को देख पाना।
- यह देख पाना कि समूह अपने अनलिखित नियम या मानक (norms) कैसा तैयार करता है।
- यह देख पाना कि समूह निर्णय कैसे लेता है।

## समाज के स्तर पर प्रक्रियाएँ की तरफ संवेदनशीलता

इस संवेदनशीलता का अर्थ है:

- समाज में माहौल को समझ पाना।
- समाज में हो रहे बदलाव को भांप लेना।
- समाज में नेतृत्व, निर्णय लेने की और नियम बनाने की प्रक्रिया को देख पाना।
- समाज में वर्ग, जाति, समुदाय, लिंग व अन्य मुद्दों आधारित भेद भाव को देख पाना।

प्रक्रियात्मक संवेदनशीलता उन लोगों में पनप पाता है जो प्रायः निम्न गुणों का अपने अंदर पनपने देते हैं:

- वह फीडबैक लेने के लिए तैयार होते हैं।

- वह नए विचार व दृष्टिकोण समझने के लिए तैयार होते हैं।
- वह दूसरों को समझने में समानभूति का प्रयोग करते हैं।
- वह मुखौटों के पीछे की असलियत को भांपने में सक्षम होते हैं।
- वह सत्य से नहीं डरते।
- वह संवेदनशील होते हैं।
- वह शब्दों के पीछे छुपी भावनाओं को भांप लेते हैं।

## फीडबैक

मान लीजिये कि आप कहीं भाषण देने गए हैं | जैसे ही आपने बोलना शुरू किया तो माइक पर जोर से आवाज़ आई 'कूँकूँकूँकूँ' | इसे ही फीडबैक कहते हैं | अब आप क्या करेंगे ?

आपने देखा होगा कि कुछ वक्ता ऐसे में झल्ला जाते हैं, माइक को या माइक वाले को बुरा भला कहते हैं | पर क्या यह माइक की गलती है ?

तकनीकी दृष्टि से देखा जाये तो माइक आपसे कह रहा है कि कोई गड़बड़ हो रही है - या तो आप माइक के ज्यादा पास हैं, या उसका वॉल्यूम ज्यादा है या फिर आपने माइक के माउथपीस को पकड़ रखा है जिससे उसका सिग्नल डिस्टर्ब हो रहा है | बस, इनको ठीक कर दीजिये, समस्या सुलझ जाएगी |

फीडबैक सिर्फ यही करता है | आप जो हांसिल करना चाहते हैं और आपको जो मिल रहा है - इन दोनों के बीच में जो फर्क है - फीडबैक उसीके बारे में आपको जानकारी देता है | अब ये आपके ऊपर है कि आप उसपर अम्ल करें या उसको अनसुनी करके उसी पर दोषारोप करें

|

हमारा सामान्य अनुभव है कि हम फीडबैक पर झल्ला जाते हैं, जैसा कि हमने माइक पर गुस्सा किया | पर ठन्डे दिमाग से सोचें तो देखेंगे कि माइक तो सिर्फ अपना काम कर रहा है | कोई सुधार अगर करना है तो वो हमें ही करना है | हाँ, कुछ माइक ऐसे भी होते हैं जो किसी अंदरूनी खराबी के कारण हमेशा ही कूँ कूँ करते रहते हैं | तब उनको बदलने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता |

इसी दृष्टान्त को हम साधारण जीवन में देखें | मान लीजिये कि आप सभीकी दिल खोल कर तारीफ करते हैं, और वो भी आपकी तारीफ से खुश होते हैं | पर एक ऐसा आदमी मिला जिसकी तारीफ की तो वो नाराज़ हो गया | आप उम्मीद कर रहे थे कि थैंक यू बोलेगा, पर वो तो चिल्लाने लगा, "हाँ, मेरी शर्ट अच्छी लग रही है तो आपको क्या? जाओ न अपना काम करो"| आप अचम्भे में पड गए कि बात क्या हुई ? आपका मूड खराब हो गया | पर अगर आप इसे सिर्फ फीडबैक मानें कि इस आदमी को तारीफ़ पसंद नहीं है, या फिर इस वक्त वो तारीफ सुनने के मूड में नहीं है, तो आप अपना मानसिक शांति नहीं खोएंगे | वही माइक वाली बात याद करें | जो अन्दर से बिगड़ा हुआ है, उसको उस समय सुधारना मुश्किल है | उसको काफी धीरज के साथ, मौका देखकर ठीक करना पड़ेगा | अगर हम उस समय उससे

उलझ जाएँ जब कि उसका खुद का मानसिक संतुलन ठीक नहीं है तो बात और अधिक बिगड़ने की संभावना है ।

मुझे किसी फैसिलिटेटर ने कहा था कि ज़िन्दगी में हम जो भी कहते या सुनते हैं, वो सब फीडबैक ही है । शुरू में लगा कि यह बहुत ज्यादा खींचना हुआ । पर मैं जितना सोचता हूँ उतना ही लगता है कि यह बात वाकई में बहुत सही है । और जितना यह सही है, उतना ही हमारे सारे बातचीत में फीडबैक के नियम लागू होंगे ।

पहले हम देखें कि फीडबैक कैसे दिया जाये ।

अब मान लीजिये कि आप माइक पर बोलते रहे, और माइक चुपचाप रहा, पर उधर श्रोताओं को कुछ सुनाई नहीं दिया, तो सारा मामला ही तो गड़बड़ हो गया न ? इससे क्या यह अच्छा नहीं कि तभी, हाथ के हाथ ही माइक आपको बताये कि बोलना ठीक नहीं हो रहा ? यही फीडबैक का पहला नियम है । जहां तक हो सके, फीडबैक तभी के तभी देना ही अच्छा है ।

अब मान लीजिये कि आपने भाषण के बाद किसीसे पूछा कि उनको कैसा लगा । आपको जवाब मिला कि बहुत अच्छा । उससे आपको क्या पता चलेगा ? आपके भाषण का वक्तव्य अच्छा था या आपके

कहने का ढंग ? वक्तव्य में शुरुआत अच्छी रही या उसका आखिरी हिस्सा ? ऐसे ही कितने ही पहलू हैं जिनपर आप जानना चाहेंगे । परन्तु सिर्फ अच्छा या बुरा कहने से कुछ पता नहीं चलता । जब पता ही नहीं चला तो सुधार कैसे करेंगे ? परन्तु यदि कहा जाए कि आवाज़ साफ़ थी, सुनाई अच्छा पड़ रहा था, परन्तु शुरुआत थोड़ी और दमदार हो सकती थी, तो हम उस पर अम्ल कर सकते हैं । इसलिए जब भी फीडबैक दिया जाये तो ये ध्यान रहे कि हम विशेषणात्मक (judgemental) फीडबैक के बजाय (data based) फीडबैक दें ।

इसमें भी एक और बात ध्यान में रखने की है । याद रहे कि सबकी पसंद अलग अलग होती है । जैसे एक फिल्म किसीको बोरिंग लगती है क्योंकि उसमें कोई मारपीट नहीं है, और वही दूसरे को अच्छी लगती क्योंकि उसे सीरियस, साफ-सुथरी फिल्म पसंद है । अब इसपर फीडबैक देना हो तो कैसे दिया जाये ? अगर फिल्म बोरिंग है कहें तो उस पर विवाद हो सकता है क्योंकि हो सकता है कि दूसरे को वो बोरिंग न लगी हो । पर अगर ये कहा जाये कि 'मुझे बोरिंग लगी' तो शायद ज्यादा ठीक रहेगा न ? मुझे नमक थोड़ा कम लगा, मुझे तुम्हारे कमीज का रंग नहीं जंचा - ऐसा कहने से हम अपनी प्रतिक्रिया बता रहे हैं, यह जरूरी नहीं कि वो सब पर बराबर लागू हो

| किसी वस्तु विषय को हमने किस प्रकार अनुभव किया, उसको यदि ठीक वैसे ही प्रकट किया जाये तो फीडबैक सही बैठता है |

फीडबैक देने में कुछ और बातें भी हैं जो सोने पे सुहागा की तरह हैं | इसमें पहले आता है फीडबैक देने के पीछे की भावना - यानि हम किसलिए फीडबैक दे रहे हैं | क्या हम किसीकी गलतियाँ, खामियां निकल रहे हैं ? किसीकी निंदा कर रहे हैं ? किसी पर दोषारोपण कर रहे हैं ? यदि कोई इस भाव से आपको फीडबैक दे तो आपको कैसा लगेगा ? ज्यादातर लोगों को इससे तकलीफ होगी और शायद वे अपने बचाव में लग जायेंगे | परन्तु यदि फीडबैक सुनकर लगे कि ये मेरी निंदा नहीं कर रहे बल्कि मेरी भलाई के लिए कह रहे हैं जिससे मैं और बेहतर हो सकूँ तो शायद हम उस फीडबैक को ध्यान से सुनेंगे, उसपर गौर करेंगे और उसपर अम्ल भी करेंगे | इसलिए फीडबैक देते समय हम हमेशा याद रखें कि वह आलोचनात्मक न होकर रचनात्मक हो, उसमें दूसरे व्यक्ति के प्रति हमारी शुभचिन्ता झलके | तब वो खुद ही फीडबैक को दिल से स्वीकारेगा | यदि फीडबैक में शुभाकांक्षा का आभास न हो तो समझ लीजिये कि वो व्यक्ति अवश्य ही उसको ठुकरा देगा |



सोने पर और सुहागा लगेगा यदि हम ये ध्यान रखें कि फीडबैक के दोनों पहलू जरूरी हैं - अच्छाई और कमी - दोनों ही नाव के दो पतवार की तरह हैं, दोनों में संतुलन (बैलेंस) रखना जरूरी है, वरना नाव डांवाडोल हो जाएगी | इसमें भी अच्छा ये रहता है कि पहले अच्छाई की बात कही जाये और फिर कमियाँ | अच्छाई की बात सबके सामने की जाए और कमियों की बात जहाँ तक हो सके अलग से, अकेले में | इससे सुनने वाले को लगेगा कि आप सच में उनके शुभचिंतक हैं, आप उनके मान सम्मान का, उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हैं | इस प्रकार वो आपके फीडबैक को अधिक तूल देंगे |

ध्यान रहे कि फीडबैक हमेशा उसी व्यक्ति को देनी चाहिए जिसके लिए वह दी जा रही है | मान लो आपको पता चले कि मैं आपके पीठ पीछे आपके किसी मित्र से आपके कमियों के विषय में चर्चा कर रहा था तो आपको कैसा लगेगा ? क्या आपको लगेगा कि मैं आपकी भलाई के लिए ऐसा कर रहा था या ये लगेगा कि आपको बदनाम कर रहा था ? इसलिए ऐसे फीडबैक देने से बचें | किसीसे जो कहना हो, उसे स्वयं कहें, किसी और के ज़रिये नहीं | हाँ, ऊपर कही हुई बातों का अवश्य ध्यान रखें |

चलिए, एक बार फिर से दोहरा लें - फीडबैक लेने और देने के नियम

-

1. फीडबैक एक प्रतिक्रिया है जो हमें ये बताता है कि हम जो कर रहे हैं और जो चाहते हैं उनमें कुछ अंतर है ।
2. ये हमें यह भी बताता है कि वो अंतर क्या है जिससे हम उसपर सुधारा कर सकें ।
3. फीडबैक हमारी भलाई के लिए ही है जिससे हम अपनी कमियां दूर कर सकें ।
4. फीडबैक देने वाले पर नाराज़ न होकर इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि फीडबैक की वजह क्या है ।
5. जरूरी नहीं कि सभी फीडबैक हमारी कमियों के कारण ही हैं । कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिसके मूल में दूसरे व्यक्ति की पसंद नापसंद हो । हम उनसे नाहक परेशान न हों ।
6. फीडबैक देना हो तो जहाँ तक हो सके हाथ के हाथ देना ही अच्छा है जिससे बात तभी साफ हो जाये ।
7. केवल अच्छा बुरा आदि विशेषणों का प्रयोग न कर मूल पहलुओं पर फीडबैक दी जाये तो उसको समझना और उसपर अम्ल करना आसान होता है ।

8. आपकी पसंद और दूसरों की पसंद अलग अलग हो सकती है | फीडबैक में यह कहा जाये कि मुझे ये ऐसा लगा तो उसमें तर्क की सम्भावना कम रहती है |
9. फीडबैक देने में दूसरे व्यक्ति के प्रति शुभचिन्ता झलके तो उसको दिल से ग्रहण करना आसान होता है |
10. फीडबैक में अच्छाईयां और कमियां - दोनों का संतुलन रहे |
11. पहले अच्छाईयों की बात कही जाये और फिर कमियों की |
12. प्रशंसा सबके सामने और आलोचना अलग से, अकेले में करना अच्छा रहता है |
13. जिसको फीडबैक देना है, उसीसे सीधे कहें, पीठ पीछे नहीं, किसी और के ज़रिये नहीं |

बस, और क्या ? इन पर अम्ल कीजिये और देखिए क्या होता है ।  
हमारी शुभकामनायें आपके साथ हैं ।